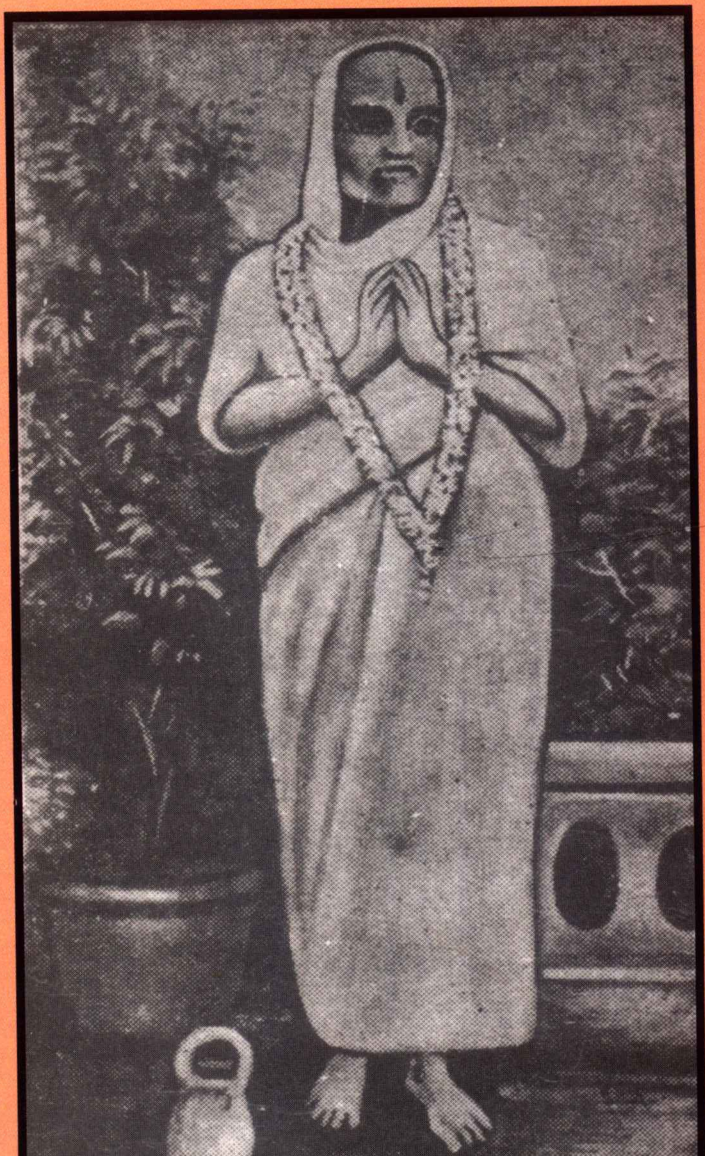
श्रीभक्तमाल

भाषा



श्रीः



भक्तमाल

अर्थात्

भक्तकल्पद्रुम

लेखक--

श्री प्रताप सिंह

सम्पादक—

स्वर्गीय पंडित कालीचरण चौरसिया गौड़

(संशोधित संस्करण)

—:०:—

प्रकाशक—

तेजकुमार बुकडिपो (प्रा०) लिमिटेड, लखनऊ

उत्तराधिकारी—

नवलकिशोर बुकडिपो, लखनऊ

सन् २०१२ ई०

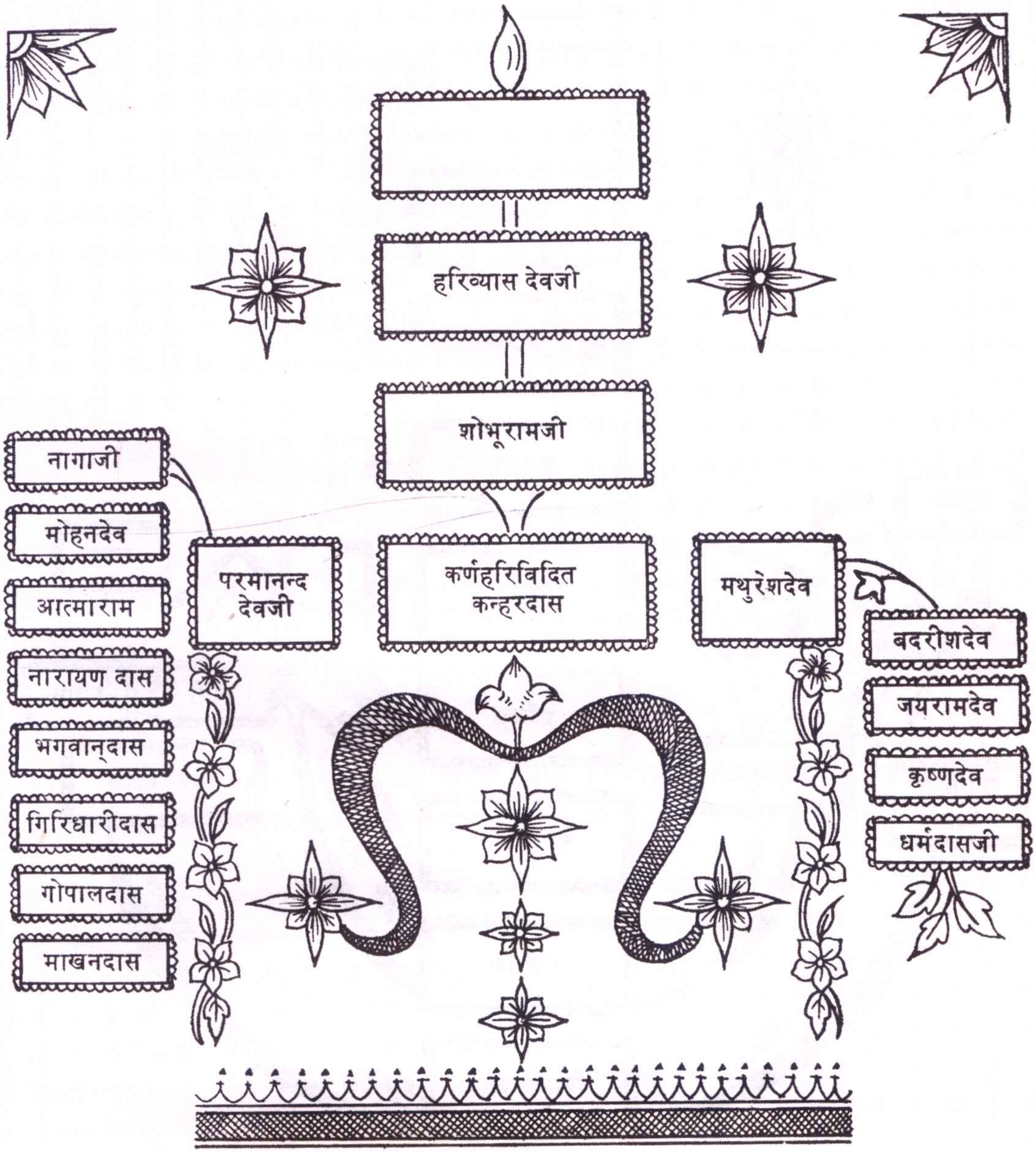
पन्द्रहवीं बार]
३०००

[मूल्य १५०)

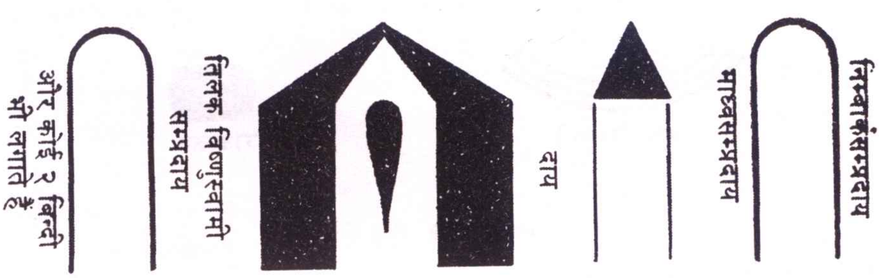
भक्तमाल का सूचीपत्र।

इति ॥

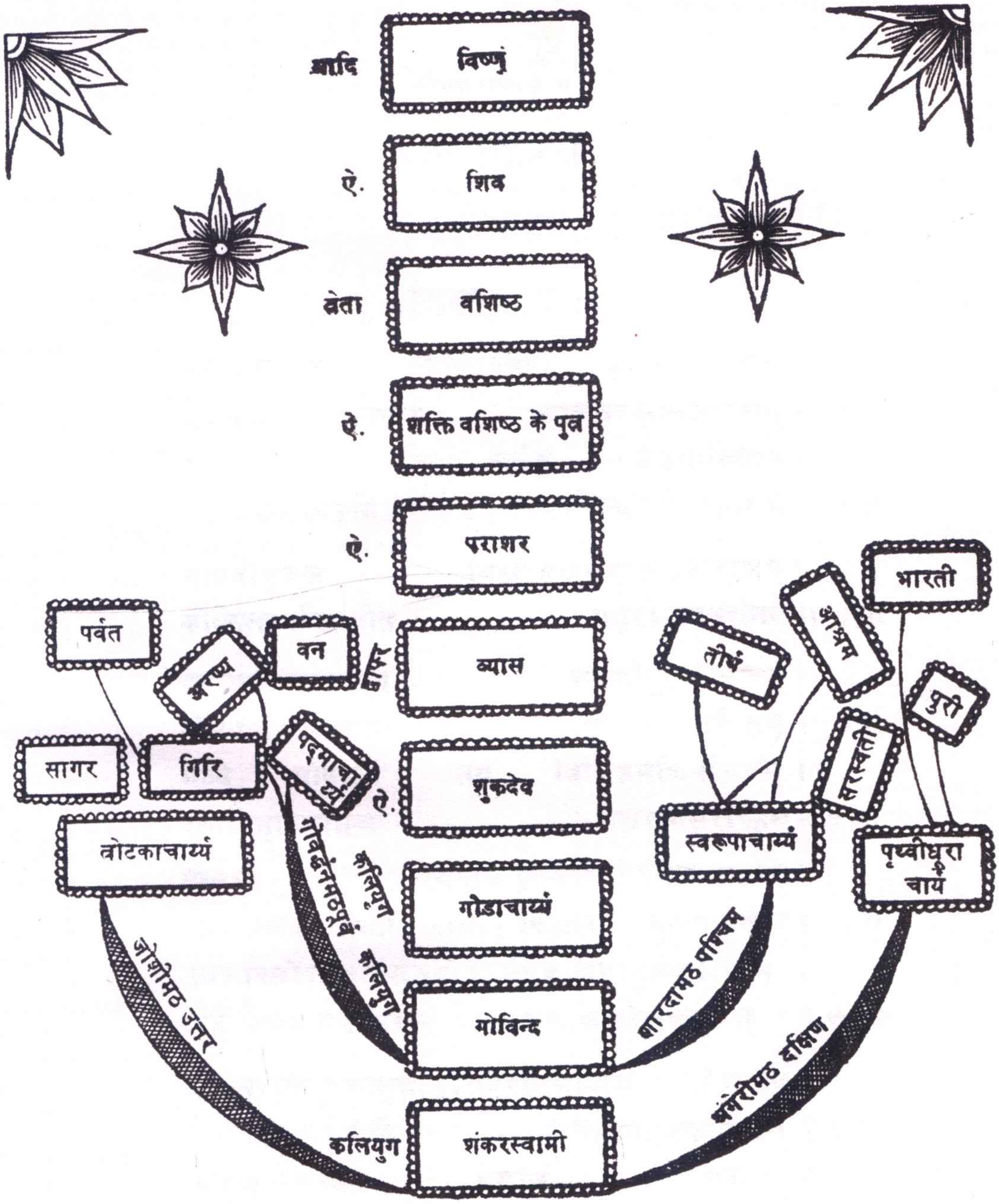
अथ गुरुपम्परा हरिव्यासदेवजी की ॥



पृष्ठ संख्या ५४



पृष्ठ ६६



पृष्ठ संख्या ५८



वटाकार



त्रिपुण्डतिलक

पृष्ठ संख्या १००

श्रीगणेशायनमः ॥

भक्तमाल।

मंगलाचरण ॥

श्रीमद्वृन्दावनं ध्यायेद्वैष्णवो हृदये सदा।
महापद्मं योगपीठं काञ्चनस्थलनिर्मलम् ॥ १ ॥
पूर्णचन्द्रोदयं नित्यं सर्वत्र कुसुमान्वितम्।
कदम्बपादपच्छायं कालिन्दीपुलिनोत्तमम् ॥ २ ॥
माधवीकुञ्ज विश्रामभ्रमद्भ्रमरविभ्रमम्।
कोकिलध्वनिसंवीतं मयूरोद्दामनर्त्तनम् ॥ ३ ॥
कृष्णसारसमाकीर्णं कामधेनुसुखास्पदम्।
गोपगोपीप्रियस्थानं कल्पपादपशोभितम् ॥ ४ ॥
मध्ये गोवर्द्धनं तत्र विचित्रमणिमन्दिरम्।
रत्नसिंहासनासक्तं पद्मरागसरोरुहम् ॥ ५ ॥
तन्मध्ये चिन्तयेत्कृष्णं किशोरंनन्दनन्दनम्।
वामे तस्य प्रियां राधां किशोरीं वृषभानवीम् ॥ ६ ॥
स्वभावतोपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाजिनंब्रह्मपरंवरेण्यंध्यायेमकृष्णंकमलेक्षणंहरिम् ॥ ७ ॥
अङ्केतुवामेवृषभानुजांमुदाविराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्त्रैःपरिसेवितांसदास्मरेमदेवींसकलेष्टकामदाम् ॥ ८ ॥
सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥ ९ ॥
गोपीगोपगवावीतं सुरद्रुमलताश्रयम्।
दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥ १० ॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम्।
चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥११॥

इति श्रीमङ्गलाचरणध्यानश्लोकाः शुभदा सुयासुः ॥
श्रीराधाकृष्णौ जयताम् ॥

श्रीराधावल्लभो जयतु ॥ श्रीराधाकान्त वृन्दावनविहारी के चरणकमलों को कोटानुकोटि दण्डवत् हैं जिनकी अपार महिमा को शेष व शारदा, ब्रह्मा, शिव, वेद, पुराण, देवता व दैत्य वर्णन नहीं कर सकते व स्वरूप जिनका मन बुद्धि आदि इन्द्रियन के विचार व समझ से बाहर है प्राप्त रहने ऐसी प्रभुता व ईश्वरता के भी करुणा व दयालुता इस भांति पर है कि जब कबहीं भक्तन को दुःख हुआ तब अनेक प्रकार के अवतार धारण करने में विलम्ब व लज्जा न करी व तुरन्त दुःख दूर किये व ऐसे परम पवित्र चरित्र जगत् में फैलाये कि जिनका कीर्त्तन करके कैसा ही अधम व पातकी होवे वह भी संसारसमुद्र से उतर जाता है और यह विशेषता उनहीं के नहीं कि जो उत्तम कुल व विद्या कला करके युक्त होयँ किन्तु ऐसे असाधुकुल व नीच राक्षस दैत्यादि जो सर्व प्रकार लोक वेद की रीति से बाहर व सब विद्या कला आदि से शून्य व अनधिकारी थे उन चरित्रों को गायकर ऐसे स्थान को पहुँचे कि जहाँ योगियों का मन भी न जाय सके पशु पक्षी जैसे ऋक्ष, वानर गज, ग्राह, गीध आदि को वह उत्तम गति प्राप्त हुई जिसको ऋषि मुनि नहीं पहुँचते भगवन्नाम जन्ममरण के दुःख दूर करने को परम औषध है और नहीं कहा जाता है कि नाम ईश्वर का बड़ा कि ईश्वर बड़ा है परन्तु ध्यान करना चाहिये कि यद्यपि किसी के स्वरूप का ज्ञान है और नाम याद नहीं तो किसी प्रकार बिना नामनिर्देश उसका ज्ञान नहीं कर सकता और यद्यपि किसी वस्तु के रूप का ज्ञान नहीं है व नाम जानता है तो नाम से मिलसकती है जैसे यह कि किसी को बुलाना है तो यद्यपि वह समीप भी है तथापि बेनाम नहीं बुला सकता व नाम का ज्ञान है तो दूर भी है तो पुकारने से तुरन्त आ सकता है अब विचार लेना चाहिये कि बड़ाई किसको है व सिवाय इसके ब्रह्म के दो स्वरूप हैं एक सगुण दूसरा निर्गुण सो यह नाम दोनों से बड़ा है क्योंकि ब्रह्म एक अविनाशी और व्यापकसत्चित्आनन्दघन है सो यद्यपि ऐसा ईश्वर निर्गुण निर्विकार सबके शरीर में प्राप्त है तथापि संपूर्ण जीव दीन व दुःखी हैं और जब उसी जीव ने नाम को जपा व नाम का ध्यान किया तो वह निर्गुण ब्रह्म आपसे आप साक्षात्कार हो जाता है किन्तु अपने स्वरूप को जीव जान लेता है अब विचार करना चाहिये कि ब्रह्म बड़ा है कि नाम और सगुण ब्रह्म से इस कारण बड़ा है कि जब भक्तों को दुःख हुआ तब ईश्वर ने आप अपने ऊपर परिश्रम अङ्गीकार करके अनेक प्रकार के अवतार धारण किये और दुःखों को दूर किया व नाम कैसा है ? कि जब भक्तों ने जपा बिना क्लेश व परिश्रम दुःख दूर हो गये अर्थात् यह नाम अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों के देने को आप समर्थ है और किसी साधन का प्रयोजन नहीं और इस कलियुग में तो सिवाय कृष्णनाम के और कोई युक्ति व कारण उद्धार का नहीं । वामनपुराण में लिखा है कि जिसने भगवन्नाम जपा उसने अश्वमेध यज्ञ आदि सब किया । भागवत में कहा कि जो बहुत

दुःखी हैं वे संसार के दुःख से डरते हैं सो धोखे से भी भगवत् का नाम लेते हैं तो शीघ्र ही दुःखों से छूट जाते हैं। स्कन्दपुराण में वर्णन है कि गोविन्दनाम ऐसा एक कोई धरती पर है कि जिसका जपना पापों के हजार टुकड़े कर देता है। नारदपुराण में कहा है कि नारायण नाम को नित्य नवीन जानकर कहते और सुनते हैं वे अमृत जानकर जपते हैं वे जीव जीवन्मुक्त हैं। तात्पर्य यह कि हजारों श्लोक व वेद श्रुति नाम की महिमा में हैं सो उसी नाम को जपकर व दण्डवत् करके प्रारम्भ लिखना भाषान्तर भक्तमालप्रदीपन जो तुलसीराम ने उर्दू में किया है सूक्ष्म करके करता हूँ॥

श्रीगुरु की महिमा॥

प्रथम श्रीगुरु के चरणकमलों को दण्डवत् है कि जिनकी कृपा हृदय के अन्धकार के दूर करने के निमित्त सूर्य से अधिक प्रकाश करती है व वेद श्रुति कहती हैं कि अज्ञान अन्धकार करके जो अन्धे हैं तिनको गुरु का वचन ज्ञानाञ्जन की सलाई है वह भगवत् कि जिसकी महिमा ब्रह्मा और शिव भी नहीं कह सकते सो गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है। वेद व सब शास्त्रों ने बिना गुरुउपदेश दूसरा कोई उपाय जन्म-मरण के दुःख से छूटने के निमित्त नहीं लिखा॥

भगवद्भक्ति की महिमा॥

पश्चात् श्रीभगवद्भक्ति को करोड़ों दण्डवत् हैं यद्यपि भगवत् में व भक्ति में कुछ अन्तर नहीं परन्तु एक विशेष विचार स्मरण हो आया जिस करके भगवद्भक्ति को बड़ाई प्राप्त हुई, किन्तु सो भगवत् कर्म के अनुसार सबको सुख-दुःख दोनों देता है व भक्ति महारानी दुःखों को दूर करके सुख ही देती हैं व दुःख को समीप नहीं आने देतीं। भक्ति की महिमा वेद व शास्त्रों ने इस प्रकार लिखी है जैसी भगवत् की बरु अधिक भगवत् सो पद्मपुराण में लिखा है कि जैसे प्रज्वलित अग्नि सब प्रकार की लकड़ी को भस्म कर देती है इसी प्रकार भगवद्भक्ति इस जन्म व जन्मान्तर के पापों को भस्म कर देती है व उसी पुराण में लिखा है कि देवता भगवत् से प्रार्थना करते हैं कि जो हमने जप तप किया है उसके फल से हमारा जन्म भरतखण्ड में हो कि तुम्हारी भक्ति करें। नारदपुराण में लिखा है कि भगवत् केवल भक्ति से प्राप्त होता है, धन आदिक से नहीं, जो भक्ति से पूजन उसका करते हैं सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त होता है और गुण यह है कि केवल पानी से पूजा हुआ सब दुःख दूर कर देता है। वामनपुराण में कहा है कि जिनकी अनन्य भक्ति शङ्खचक्रधारी नारायण में है वे लोग निश्चय करके नारायण को पहुँचते हैं। महाभारत में लिखा है कि हजारों जन्मों में जो तप व ध्यान करके पाप दूर हुए हैं उसीकी भगवत् में भक्ति होती है। वैशाख-माहात्म्य में वर्णन है कि प्रथम तो भरतखण्ड में जन्म होना दुर्घट है तिसपर मनुष्य फिर मनुष्य में भी स्वधर्म करनेवाला तिसमें भक्त होना बहुत दुर्लभ है। पद्मपुराण

में लिखा है कि जिसके हृदय में प्रेम भक्ति का निवास है तिसको यमराज स्वप्न में भी नहीं देखता और जिसको प्रेत व पिशाच व राक्षस व देवताभी विघ्न नहीं कर सकते, नारदपुराण में लिखा है कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों के निमित्त लोग परिश्रम करते हैं सो यह सब भगवद्भक्ति से अनायास प्राप्त हो जाते हैं। फिर पद्मपुराण में कहा है कि भगवद्भक्तों को मुक्ति का द्वार खुला है और यह निस्संदेह निश्चय किया गया कि भक्ति से अधिक अन्य कुछ साधन नहीं है। ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि जो भगवत् के भक्त नहीं हैं उनके निमित्त करोड़ों कल्प तक मुक्ति व ज्ञान प्राप्त न होगा। भागवत में लिखा है कि नारायण की भक्ति के वास्ते ब्राह्मणकुल में जन्म अथवा देवता होने का प्रयोजन नहीं व न ऋषीश्वर होने का न व्रत, न दान, न यज्ञ, केवल भक्ति से नारायण प्रसन्न होते हैं और सब स्वाँग हैं। भागवत में उद्धव से श्रीकृष्ण कहते हैं कि योग और सांख्य और वेद का पढ़ना और वैराग्य हमको वश नहीं कर सकते एक भक्ति वश करती है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि भगवद्भक्ति करने से और कोई उत्तम पन्थ नहीं है। भगवत् का वाक्य है कि भक्ति के अवलम्ब से गोपी और गऊ और वृक्ष और पशु और साँप आदिक पवित्र होकर हमको प्राप्त हुये। भागवत में कहा है कि जो कर्मों से और तप से और योग व ज्ञान वैराग्य और दानादिक सब धर्मों से फल होता है सो केवल भक्ति से होजाता है। नारदपुराण में लिखा है कि विशेषकरके मुक्ति की प्राप्ति ज्ञान से कहते हैं सो वह ज्ञान भक्तिही के अधीन है उसीमें फिर कहा है कि बिना भगवद्भक्ति के जो सहस्र अश्वमेधयज्ञ और वेद के अनुसार कर्म किये सब निष्फल हैं। स्कन्दपुराण में कहा है जहाँ भगवत् का भक्त रहता है तहाँ ब्रह्मा विष्णु महेश और सब सिद्ध निवास करते हैं। भगवद्गीता में कहा है कि केवल भक्ति से जानाजाता है जैसा मैं हूँ फिर उसी में लिखा है अनन्य भक्ति से प्राप्त होता है फिर लिखा है अर्जुन ने भगवत् से पूछा कि ज्ञान और भक्ति इसमें अधिक कौन है भगवत् ने आज्ञा की कि मेरे भक्त योग्यतम हैं, नाम सबसे अति अधिक हैं यद्यपि ज्ञान से भी मेरी प्राप्ति है परन्तु उस में क्लेश अधिक है। इसी प्रकार से हजारों श्लोक पुराणों के और वेदकी श्रुति है विस्तार के भयसे नहीं लिखा फिर जब कि शास्त्रों का और बेदों का प्रत्यक्ष यह अर्थ है कि भगवत् के प्राप्त होनेके निमित्त व अन्य फल के हेतु एक भगवद्भक्ति ही समर्थ है तो बड़ी दुर्भाग्यता है कि ऐसी भक्ति को त्याग करके इधर-उधर दौड़ता फिरे॥

भगवद्भक्ति का स्वरूप कि भक्ति किसको कहते हैं॥

अब यह वर्णन उचित हुआ कि जिस भक्ति की यह महिमा है सो क्या वस्तु है और क्या उसका वृत्तान्त है? सोई वर्णन होता है कि वेद और सूत्रों के सिद्धान्त के अनुसार यहबात स्थिर व दृढ़ हुई है कि भगवत् में परम अनुराग का होना यही भक्ति है सो शाण्डिल्यऋषीश्वर ने अपने सूत्र में लिखा है और सूत्र उसको

कहते हैं कि कई जगह के वेद की आज्ञा को ऋषीश्वरों ने संग्रह करके थोड़े अक्षरों में एक जगह रचि दिया (सापरानुरक्तिरीश्वरे) यही सूत्र है अर्थ इसका यह कि ईश्वर में दृढ़स्नेह होना भक्ति है और विशेष स्पष्ट वर्णन इस सूत्र का प्रेमनिष्ठा में होगा। इस सूत्र में यह शङ्का प्रकट हुई कि गीताजी में भगवत् ने भक्ति उसको कहा कि जो अनन्य भजन और ध्यान करते हैं दूसरी जगह सेवा को भक्ति वर्णन किया तीसरी जगह लिखा है कि मन और प्राण का लगाना और भगवत् ही को समझना व भगवत् ही का वर्णन करना उसका नाम भक्ति है और रामानुज और माध्व और निम्बार्क और विष्णु-स्वामी इत्यादि आचार्यों ने यह निर्णय व निश्चय किया है कि दिन रात निश्चल जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अनुक्षण प्रवर्त्त है और एक जगह भगवद्वाक्य है कि जो कोई जिस प्रकार के भाव करके मेरे शरण होते हैं उसी प्रकार उनको मिलता है और एक जगह भगवत् के प्रसन्नता को भक्ति लिखा है और लिङ्गपुराण में लिखा है मन, वच, कर्म से भगवत् सेवा जो है उसी का नाम भक्ति है। तन्त्रशास्त्र का वचन है कि भक्ति के तीन अक्षर हैं प्रथम अक्षर (भ) यह अक्षर भव जो संसार तिसके दुःख को दूर करता है, दूसरा अक्षर (क) कल्याण करता है, तीसरा अक्षर (ति) तीव्र ज्ञान को देता है, इसी हेतु भक्ति नाम हुआ और सनत्कुमारसंहिता का वचन है कि जो सब दुःख दूर करे उसको भक्ति कहते हैं और एक जगह लिखा है कि भगवत् को स्वामी और अपने को दास भृत्य जानना इसी का नाम भक्ति है, भगवत् का वचन है कि भक्तों के अनेक भाँति के भाव के हेतु भक्ति अनेकभाँति की है सो भावही को भक्ति जानना चाहिए, विष्णु-पुराण में लिखा है कि शास्त्र की आज्ञाके अनुसार कर्म करना और जो कर्म त्यागने योग्य हैं तिनका छोड़देना व भगवत् आज्ञा के बन्धन में रहना इसका नाम भक्ति है कि उसी के कारण से भगवत्की कृपा होगी और साहित्यशास्त्र कि जिस शास्त्रमें स्नेह व काव्य व रस इत्यादि को वर्णन किया है उसमें लिखा है कि सात्त्विकभाव से जो ज्ञान शुद्ध होय तिसको भक्ति कहते हैं अर्थात् इन सब वचनों से भक्तिस्वरूप के निर्णय में बहुत विरोध पायागया सिद्धान्त एक बात क्या है? तहाँ कहते हैं कि सिद्धान्त उसी अनुराग तात्पर्य भगवत् में दृढ़ स्नेह होने को भक्ति कहते हैं। यह सब विरोध ऊपर कहनेमात्र को है विचार करने में उन सबका परिणाम भगवत् की प्रीति है जिस रीति भाँति से मन का रोकना भगवत् में लगाना शास्त्रों में लिखा है अथवा जिस भाँति भाँति की रीति से भक्तलोग भगवत् को प्राप्त हुए उसको भक्ति लिखा। इस हेतु से विरोध दिखलाई देने लगे नहीं तो वास्तव करके कुछ विरोध नहीं और विशेष निर्णय उस अनुराग का यह है कि जिस उपासक के सम्पूर्ण अन्तर्बाह्य की वृत्ति मित्र शत्रु, सुख दुःख से अलग होकर वेद व स्मृति व पुराण व नारदपञ्चरात्र इत्यादि शास्त्रोंकी आज्ञा के अनुसार श्रवण, कीर्त्तन, पूजादिक में बिना चाहना कोई

वस्तु के लगी हुई ऐसे उपासक की वृत्ति शास्त्र व नरकादिक के भय को छोड़कर व स्वर्गादिक के सम्पूर्ण सुख भोगसे उदासीन होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की शोभा व सुन्दरता का सार जो भगवत् का रूप तिसमें स्वभाव करके आपसे आप अखण्ड निश्चल अनुक्षण लगीरहे इसका नाम भक्ति है सो दो प्रकार की है एक विहित दूसरी अविहित सो विहित उसको कहते हैं कि जिस प्रकार शास्त्र में रीति व आज्ञा है उसीके अनुसार होय सो विहित है सो चार प्रकार की है एक काम अर्थात् चाहनासे जैसे गोपिका व ध्रुव इत्यादि की, दूसरी द्वेष अर्थात् शत्रुतासे जैसे रावण शिशुपालादिक की, तीसरी भय अर्थात् डरसे जैसे कंस व मारीचादि की, चौथी स्नेह अर्थात् केवल प्रीति से जैसे नारद व सनकादिक इत्यादि की सो इन चारोंप्रकार में से दो प्रकार की एक शत्रुता एक भय से उपासना की रीति से त्याज्य हैं और दूसरी अविहित उसको कहते हैं कि जो स्वभाव करके आपसे आप बुद्धि के विचारसे बिना शास्त्र की आज्ञा के भगवत् में प्रीति हो और यह गति फलरूप अन्त का है, यद्यपि इसमें भिन्न भिन्न करके वर्णन करने का प्रयोजन नहीं तथापि कोई कोई इसमें दो भेद वर्णन करते हैं, एक ज्ञानाङ्ग जो ज्ञानको उत्पन्न करके मुक्ति देती है दूसरी स्वतन्त्रता जोकि आप मुक्ति देती है। ज्ञान उसका एक अङ्ग है इसमें भगवद्गीता का वचन है कि मेरे भक्त मेरी माया को तरते हैं फिर द्वितीयबार वर्णन किया है कि मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं। तृतीयबार गीताजी के अन्त में कहा कि जो संसार से छूटा चाहे तो केवल मेराही सेवन करे सो इसमें वेद श्रुति और सब स्मृति व पुराण इत्यादिक इस बात में युक्त हैं फिर उसी भक्ति के तीन प्रकार हैं उत्तम, मध्यम, प्राकृत सो प्रथम पदवी का नाम उत्तम है उसका स्वरूप यह है कि जो भगवत् को सब जगह व्यापक और वर्तमान देखता है और सबको भगवन्मय जानता है जल व तरङ्ग के सदृश सो उत्तम है और जिसकी भगवत् में प्रीति है परन्तु भगवद्भक्त को अपना मित्र जानता है और प्राकृतभक्तों पर दया व अनुग्रह करता है और द्वेषीजनों से अनमिल रहता है सो मध्यम है और जो भगवत् और भगवत् अर्चा मूर्त्ति इत्यादि को ईश्वर जानता है और भगवद्भक्तों में प्रीति नहीं सो प्राकृत है फिर वही भक्ति सात्त्विक राजस तामस के विवरण से भागवत के वचन के प्रमाण से तीन प्रकार की है किन्तु जो निष्काम है सो सात्त्विक है जैसे प्रह्लाद आदिक और जो किसी-प्रकार की कामनायुक्त है सो राजस है जैसे ध्रुव गज इत्यादिक और जो शत्रुके विजय के हेतु करके है सो तामस जैसे इन्द्रादिक कि वृत्रासुर के वध के निमित्त भगवत् का आराधन करा व फिर उस भक्ति के तीन प्रकार और भी भागवत में लिखे हैं एक मानस जो मन से होय दूसरा वाचक जो बोलने से होय तीसरा कायिक जो शरीर से होय फिर वही गीताजी में चार प्रकार की लिखी है। एक आर्त्त जो किसी दुःख के कारण से भगवत् का आराधन होय जैसे द्रौपदी व गज आदिक,

दूसरा जिज्ञासु मुक्ति की राह ढूँढ़नेवाले जैसे परीक्षित आदि तीसरा अर्थार्थी जैसे ध्रुव आदि चौथे ज्ञानी जैसे प्रह्लाद, नारद, सनकादिक इत्यादि। फिर उसी भक्ति के तीन प्रकार और लिखते हैं एक वह जो आप करे, दूसरा वह कि और लोगों से समझायके करावे, तीसरे वह कि और लोगों को भक्ति करतेहुये देखकर प्रसन्न होय फिर उसी भक्ति के नव प्रकार भागवत में लिखे हैं श्रवण १ कीर्त्तन २ स्मरण ३ सेवा ४ अर्चा ५ वन्दन ६ दास्य ७ सख्य ८ आत्मनिवेदन ९ व इन नव प्रकार में से कई एक इस भक्तमाल में निष्ठानाम धर के लिखा है फिर वही भक्ति भूमिका के निश्चय से ग्यारह प्रकार की है प्रथम भूमिका सत्संग दूसरी भक्तों की दया व प्रसन्नता के योग्य होजाना, तीसरी भक्तों के आचरण जो शान्ति व दया इत्यादि हैं सो उसमें श्रद्धा व विश्वास करना, चौथी भगवच्चरित्रों को श्रवण करना, पांचवीं श्रवण किया जो भगवत्स्वरूप जिसमें प्रेम की उत्पत्ति होना, छठवीं यह कि भगवत् के स्वरूप और अपने स्वरूप को यथार्थ जानलेना जैसा है व इस अवस्था को अद्वैतवादी ज्ञान कहते हैं सातवीं उस भगवत् के स्वरूप में प्रेम अधिक होना, आठवीं उस भगवत् का प्रकाश दिन-दिन हृदय में होना नवीं दया और सब ओर से निर्मल इत्यादि जो भगवत् में धर्म हैं उन धर्मों का आना प्रारम्भ होना, दशवीं ईश्वरता और दयालुता और सर्वज्ञता इत्यादि ईश्वर के धर्म से पूर्ण इस पुरुष में आजाना, ग्यारहवीं यह कि इस पुरुष को जितनी प्रीति अपने शरीर में है तैसीही प्रीति भगवत् में निश्चल कि कोई क्षण उस श्यामसुन्दर रूप चितवन से चले नहीं है जानो फिर वही भक्तिदान इत्यादि के विभाग से क्रम २ अधिक होती हुई तीस प्रकार की है सो यह सब भेद भक्ति में केवल इस हेतु है कि जिस २ भाँति से भक्तों के मन लगें वह एक प्रकार की हो गई जैसे भगवत् से उद्धव ने पूछा कि हे महाराज! तत्त्व को कोई चौबीस, कोई सत्रह, कोई सोलह, कोई तीन, कोई पाँच, कोई आठ, कोई सात कहते हैं सो विरोध का हेतु क्या है ? भगवत् ने कहा कि वास्तव में कुछ विरोध नहीं कारण यह बात है जिसने एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में मिला समझा तो उसकी गणना में तो कम और जिस किसी ने अलग समझा उसकी गणना में अधिक है। जैसे जिस किसी ने ईश्वर और माया और जीवको अलग जाना उस गणना में तीन हैं और जिसने माया को भगवत् की इच्छा जाना उसकी गिनती में दो हैं और जिस किसी ने तीनों तत्त्व परमहितू तत्त्व व अहंकार व पञ्चमहाभूत को अधिक किया तिसकी गिनती में दश हैं इसी प्रकार छत्तीसतक संयोग पहुँचा है। कारणमूल एक भगवत् है दूसरा दृष्टान्त और है कि किसी ने बरगद के वृक्ष को देखकर कहा कि दो शाखावाला है किसी ने चारशाखा का देखा था उसने चारश-खावाला बतलाया वास्तव करके वह बरगद एक है। इसी प्रकार यह भक्ति एक है भक्तों के मन को लगन के अनुसार कई प्रकार की दिखाई पड़ती है और तात्पर्य

सबका यह है कि कोई हो किसी प्रकार से कोई लाभ के निमित्त किसी विधान से करो परन्तु अनुराग का होना अति ही प्रयोजन है, जब तक वह प्रीति सिद्धपद को नहीं पहुँचती तब तक साधनरूप है और जब स्थायीभाव को पहुँच गई वही फल-रूप है और वह दृढ़ भाव जो किसी और पदार्थ का साधन नहीं जीवन्मुक्त उसी को कहते हैं और मुक्ति का स्पष्ट वर्णन ग्रन्थ के अन्त में होगा।

भगवद्भक्तों की महिमा ॥

अब उन भगवद्भक्तों को कि उस भक्ति के जो ऊपर कही हैं तिसके अभ्यास व साधना करनेवाले हुये और आगे होंगे और अब हैं भगवद्रूप जानकर दण्डवत् करता हूँ यद्यपि साधुसेवानिष्ठा में कुछ वर्णन उनका होगा तथापि यहाँ भी इस पोथी के मङ्गलाचरण के हेतु उनका प्रताप थोड़ासा लिखता हूँ, भागवत में लिखा है कि जिनके स्मरण करने से लोग अपने परिवार सहित पवित्र हो जाते हैं उनके दर्शन और स्पर्शन व सेवन करने का क्याही कहना है फिर भागवत के "एकादश-स्कन्ध" में लिखा है कि संसारसमुद्र में जो डूबते-उछलते हैं तिनको भगवद्भक्ति नौका के सदृश है फिर भागवत में भगवत् ने आप कहा है कि मैं भक्तों के आधीन हूँ और भक्त आप स्वतन्त्र हैं "पद्मपुराण" में भगवत् का वचन है कि जो मेरे भक्तों के भक्त हैं सो मेरे ही भक्त हैं गोसाईं तुलसीदासजी ने जो यह चौपाई लिखी है कि (विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी) उसके अर्थ बहुत प्रकार के हैं तिसमें से एक यह भी है कि मनुष्य को भक्तों के सत्संग से ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पदवी प्राप्त होती है इस हेतु उनकी वाणी सकुचती है कि हम और हमारे स्वामी भगवद्भक्तों के सँवारे हुए हैं हम उनकी क्या महिमा वर्णन करें अच्छे प्रकार मनन करने से अवलोकन करी जाती है तो जिस किसी को जो पदवी लाभ हुई सो भगवद्भक्तों के सत्संग से हुई। एक समय विश्वामित्र और पर्वत ऋषीश्वर से वाद हुआ—विश्वामित्रजी तप को बड़ा कहते थे और पर्वत ऋषीश्वर सत्संग को बड़ा कहते थे। पञ्चशेषजी ने इस विवाद के तोड़ने के समय कहा कि एक मुहूर्त्त तुम दोनों में से कोई धरती को अपने शिर पर रख लेव। विश्वामित्रजी ने कई लाख वर्ष का बरु अपने जन्मभर के तप का फल लगाया धरती न ठहरी, पर्वत ऋषीश्वर ने एक मुहूर्त्त के सत्संग का फल लगा दिया कि धरती ठहर गई और इसी में न्याय हो गया (सत्संगति मुदमङ्गल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला) अर्थ इसका यह है कि सत्संग आनन्द व सुख का मूल अर्थात् जड़ है और वही सिद्धफल है और सब साधन फूल हैं। अब मन में विचार करना चाहिए कि भगवद्भक्तों को कितनी बड़ाई होगी कि जिनके सत्संग की यह महिमा है और ध्यान करके देखना चाहिये कि भगवत् को सब कोई देहधारी अपना स्वामी जानकर पूजन करते हैं और भक्त कैसे हैं कि वही भगवत् उनके में होकर आप उनकी सेवा

करता है और एक दूसरा प्रसंग है कि एक कवि ने चाहा कि जो सबसे बड़ा हो उसका महत्त्व वर्णन करूँ धरती को सबसे बड़ा जाना, उससे बड़ा शेषजी को और शेषजी से बड़ा शिवजी को और शिवजी से बड़ा ब्रह्माजी को और ब्रह्मा से बड़ा भगवत् को। फिर जब अच्छी प्रकार सोचा तब भगवत् से अधिक भगवद्भक्त को जाना कि जिन्होंने भगवत् को भी बल से अपने वश कर लिया है और अपने हृदय से बाहर नहीं जाने देते। तात्पर्य यह कि भगवद्भक्तों की जो कुछ पदवी व बड़ाई है सो लिखने व वर्णन करने के प्रमाण से बाहर है और उनमें और भगवत् में कुछ भिन्नता नहीं।

देवनागरी में भाषान्तर होने का कारण ॥

अब यह पोथी भक्तमाल कल्पद्रुम जिस प्रकार देवनागरी में भाषान्तर हुई सो लिखा जाता है। इसका वृत्तान्त यह है कि प्रथम मेरे चित्त को यह चाह हुई कि भक्तिमार्ग के सिद्धान्त के वचन भागवत व गीता व नारदपञ्चरात्र व गोपालतापिनी इत्यादि ग्रन्थों का संग्रह करिके पोथी बनावें सो बहुतसे श्लोक भागवत इत्यादि के व भक्ति के पांचों रसों को सामग्री अर्थात् विभाव व अनुभाव व सात्त्विक व व्यभिचारी व स्थायीभाव इत्यादि के संग्रह करके एकत्र किये व इस परिश्रम में प्रवृत्त रहे तब तक संवत् उन्नीससौ सत्रह १९१७ श्रावण के शुक्लपक्ष में पड़रौना ग्राम में जो श्यामधाम में मुख्य भगवद्धाम है तहां श्रीराधाराजवल्लभलालजी ठाकुर हिंडोला झूल रहे थे, उसी समय उमेदभारती नामक संन्यासी रहनेवाले ज्वालामुखी के जो कोटकांगड़े के पास है भक्तमालप्रदीपन नाम पोथी जो पञ्जाब देश में अम्बाले शहर के रहनेवाले लाला तुलसीराम ने जो पारसी में तर्जुमा करके भक्तमालप्रदीपन नाम ख्यात कियाहै तिसको लिये हुये आये उनके सत्कार व प्रेमभाव से पोथी हम ईश्वरीप्रतापराय को मिली। जब सब अवलोकन कर गये तो ऐसा हर्ष व आनन्द चित्त को प्राप्त हुआ कि वर्णन नहीं होसकता, साक्षात् भगवत्प्रेरणा करके मनोवाञ्छित पदार्थ को प्राप्त कर दिया व लाला तुलसीराम के प्रेम व परिश्रम की बड़ाई सहस्रों मुख से नहीं होसकती। कुछ काल उसके श्रवण व अवलोकन का सुख लिया तब मन में यह अभिलाषा हुई कि इस पोथी को देवनागरी में भाषान्तर अर्थात् तर्जुमा करें कि जो फारसी नहीं पढ़े हैं उन सब भगवद्भक्तों को आनन्द-दायक हो, सो थोड़ा २ लिखते २ तीसरे वर्ष संवत् उन्नीससौ तेईस १९२३ अधिक ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिमा को श्रीगुरुस्वामी व भगवद्भक्तों की कृपा से यह भक्तमाल नाम ग्रन्थ संपूर्ण व समाप्त हुआ व चौबीस निष्ठा में सत्रह निष्ठातक तो ज्यों का त्यों क्रमपूर्वक लिखागया परन्तु अठारहवीं निष्ठा से भक्तिरस के तारतम्य से क्रम न लगाकर इस ग्रन्थ में लिखा है। कोई पारसीवाले ग्रन्थ पढ़नेवाले हमारी भूल चूक न समझें। हमने विचार से यह क्रम इस प्रकार से लगाया है कि प्रथम धर्मनिष्ठा

जिसमें सात उपासकों का वर्णन और दूसरी भागवतधर्मप्रचारकनिष्ठा तिसमें बीस भक्तों का वर्णन, तीसरी साधुसेवानिष्ठा व सत्संग तिसमें पन्द्रह भक्तों की कथा, छठई भेषनिष्ठा तिसमें आठ भक्तों की कथा, सातईं गुरुनिष्ठा तिसमें ग्यारह भक्तों की कथा, आठईं प्रतिमा व अर्चानिष्ठा तिसमें पन्द्रह भक्तों की कथा, नवईं लीला-अनुकरण जैसे "रासलीला, रामलीला" इत्यादि तिसमें छवों भक्तोंकी कथा, दशवीं दया व अहिंसा तिसमें छवों भक्तों की कथा, ग्यारहवीं व्रतनिष्ठा तिसमें दो भक्तों की कथा, बारहवीं प्रसादनिष्ठा तिसमें चार भक्तों की कथा, तेरहवीं धामनिष्ठा तिसमें आठ भक्तों की कथा, चौदहवीं नामनिष्ठा तिसमें पाँच भक्तों की कथा, पन्द्रहवीं ज्ञान व ध्याननिष्ठा तिसमें बारह भक्तों की कथा, सोलहवीं वैराग्य व शान्त-निष्ठा तिसमें चौदह भक्तोंकी कथा, सत्रहवीं सेवानिष्ठा तिसमें दश भक्तों की कथा, अठारहवीं दासनिष्ठा तिसमें सोलह भक्तोंकी कथा उन्नीसवीं वात्सल्यनिष्ठा तिसमें नव भक्तों की कथा, बीसवीं सौहार्दनिष्ठा तिसमें छवों भक्तों की कथा, इक्कीसवीं शरणागती व आत्मनिवेदननिष्ठा तिसमें दस भक्तों की कथा, बाईसवीं सख्यभावनिष्ठा तिसमें पाँच भक्तों की कथा, तेईसवीं शृङ्गार व माधुर्यनिष्ठा तिसमें बीस भक्तों की कथा, चौबीसवीं प्रेमनिष्ठा तिसमें सोलह भक्तों की कथा का वर्णन लिखा गया। अब भगवद्भक्तों से मेरी यह प्रार्थना है कि यह भक्तमाल नाम ग्रन्थ परमानन्द का देनेवाला पढ़ने व सुनने पर तुम्हारे विचार में सत्य करके यह मेरा परिश्रम तुम्हारे प्रसन्नता के योग्य होय तो इस अपने किङ्कर को यह प्रसन्नता दान देव कि जो ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में ध्यान लिखि आया हूँ सो सदा अनुक्षण निश्चल मेरे हृदय में बसा रहे कदाचित् इसमें कोई दो बात की शङ्का व प्रश्न करे—एक यह कि जो चरित्र तुमने वर्णन किया है सो सब चरित्र भगवत् व भगवद्भक्तों के किये हुये हैं सो सब प्रसिद्ध हैं नई कोई नहीं है व दूसरी यह कि पारसी में जो रचा है तिसको तुमने देवनागरी में भाषान्तर अर्थात् तर्जुमा कर दिया है तो इन दोनों बातों में तुम्हारी कौन नवीन उक्ति व विशेष परिश्रम सूचित है कि जिस करके तुमको भगवद्भक्त लोग प्रसन्नता दान अर्थात् इनआम देंगे, सो पहले प्रश्न का उत्तर तो यह है कि जैसे राजा लोगों के किये हुये चरित्रों को गायक व दसौंधी व कवि लोग गद्यपद्य व छन्दप्रबन्ध में बांधकर उसी राजा को सुनाते हैं व मालाकार लोग राजा ही की पुष्पवाटिका के फूलों के स्तवक व हार आदि आभूषण रचिकर उसी राजा के आगे धरते हैं तो यद्यपि उनके ही किये हुये चरित्र व उनके ही फुलवारी के फूल हैं तथापि रचना पर प्रसन्न होकर वह राजा इनआम देता है इसी प्रकार यद्यपि उन्हीं के चरित्र हैं परन्तु मैं रचिके आगे निवेदन करता हूँ तो क्या नहीं वाञ्छितरूप अनूप का चिन्तवनरूप धन प्रसन्नदान मैं पाऊँगा और दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस प्रकार किसी ऊँचे आम्रादि के वृक्ष

पर अति मीठे-मीठे फल पके-पके लटक रहे हैं और किसी प्रकार हाथ नहीं आते और उसके स्वाद लेने को जी तरस रहा है और जो किसी ने बड़े श्रम से वृक्ष पर चढ़कर उन फलों को लाकर आगे धर दिया तो यद्यपि वह वृक्ष व फल उसका लगाया व बनाया नहीं है परन्तु निश्चय करके उस फल के स्वाद प्राप्त होने पर उस पुरुष के परिश्रम पर प्रसन्नता होती है उसी प्रकार यद्यपि यह ग्रन्थ पारसी में रचना और का किया है मैंने केवल देवनागरी में भाषान्तर कर दिया है तो भी इसके स्वाद को लेकर भगवद्भक्त लोग क्यों न प्रसन्न होकर मेरे वाञ्छित को पूर्ण करेंगे। कदाचित् कोई यह कहे कि जो भगवद्भक्त पारसी नहीं पढ़े हैं सोई प्रसन्न होंगे व जो पढ़े हैं सो नहीं सो यह बात कदापि नहीं बरु पारसी पढ़नेवाले भगवद्भक्त दो बातों से अधिक प्रसन्न होंगे एक तो पारसी के पदों के अर्थ व भाव भाषा में यथार्थ बूझ करके दूसरे परोपकार पर दृष्टि करके सो सब प्रकार से दृढ़ विश्वास है कि मेरे वाञ्छित को भगवद्भक्त लोग प्रसन्नहोकर निश्चय कृपा करेंगे।

मुख्यकर्ता भक्तमाल और भाषान्तरकर्ताओं का नाम वर्णन ॥

नारायणदास नाम प्रसिद्ध नाभाजी मुख्यकर्त्ता भक्तमाल के हुये हनुमान्वंश में उनका जन्म हुआ। वृत्तान्त यह है कि दक्षिण में तैलङ्ग देश गोदावरी के समीप उत्तर में रामभद्राचल एक पहाड़ है, श्रीरामचन्द्रजी ने वनवास के समय कुछ दिन उसपर निवास किया। वहीं रामदास नाम ब्राह्मण महाराष्ट्र हनुमान्जी के अंश अवतार हुये, रामचन्द्रजी की उपासना में बहुत लोगों को प्राप्त किया बड़े पण्डित थे उनके परिवारी हनुमान् अवतार होने से हनुमान्वंश करके प्रसिद्ध हैं। गानविद्या के अधिकारी हैं राजा लोगों के यहाँ नौकरी गाने पर करते हैं। नाभाजी जन्म से सूर थे पिता के मरने पर अकाल का समय था कि उनकी माता ने जङ्गल में छोड़ दिया। कील्हदास व अग्रदासजी ने देखा उनके नेत्रों पर जल का छीटा दिया नेत्र खुल गये, वृत्तान्त पूछकर गलताजी में ले आये, चेला करके नारायणदास नाम रक्खा। सब साधुओं की प्रसादी खाते खाते दिव्यज्ञान हो गया, अग्रदासजी के मानसी पूजा के समय जो साहूकार के जहाज अटकने की दुचिताई मन में उत्पन्न हुई सो बतलाय दिया कि महाराज जहाज निकल गया, सेवा में सावधान हूजिये। तब प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि जिन भक्तों की प्रसादी से यह ज्ञान तुमको हुआ तिनका यश वर्णन करो। तब छप्पय छन्द में नाभाजी ने भक्तमाल बनाया। यह माला भक्तजन मणिगण से भरा है जिसने हृदय में धारण किया तिसने भगवत् को पहिचाना, ऐसी यह माला है। श्रीप्रियादासजी माध्वसंप्रदाय के वैष्णव श्रीवृन्दावन में रहते थे उन्होंने कवित्व में इस भक्तमाल की टीका बनाई उनके पश्चात् लाला लालजीदास ने सन् ११५८ हिजरी में पारसी में प्रियादासजी के पोते वैष्णवदास के मत से तर्जुमा किया व तर्जुमे का नाम भक्तोर्वशी धरा। यह रहनेवाले कांधले के थे, लक्ष्मणदास नाम था,

मथुरा की चकलेदारी में सत्संग प्राप्त हुआ। हितहरिवंशजी की गद्दी के सेवक हुये, लालजीदास नाम मिला, राधावल्लभलालजी के उपासक हुये। दूसरा तर्जुमा एक और किसी ने किया है नाम याद नहीं है, तीसरा तर्जुमा लाला गुमानीलाल कायस्थ रहनेवाले रत्थक के संवत् १६०८ में समाप्त किया। चौथा तर्जुमा लाला तुलसीराम रामोपासक लाला रामप्रसाद के पुत्र अगरवाले रहनेवाले मीरापुर अम्बाले के इलाके के कलक्टरी के सरिश्तेदार उस मूल भक्तमाल और टीका को संवत् १६१३ में बहुत प्रेम व परिश्रम करके शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार बहुत विशेष वाक्यों-सहित अति ललित पारसी में उर्दू वाणी लिये हुए तर्जुमा करके चौबीस निष्ठा में रचके समाप्त किया।

भक्तमाल की महिमा का वर्णन ॥

महिमा व बड़ाई श्रीभक्तमाल की कोई वर्णन नहीं कर सकता, अपार है और इस लोक व परलोक की कामना पूर्ण करने को जैसे कल्पवृक्ष व कामधेनु है, जो कोई सर्वदा पढ़ते हैं निश्चय करके तिनको भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, जो कोई संसारी कामना के सिद्ध होने के निमित्त पढ़ते हैं तो वह भी बहुत शीघ्र सिद्ध हो जाती है। बहुत लोगों को परीक्षा मिली है जितना तीर्थों के स्नान दानादिक से पुण्य होता है उससे दशागुणा अधिक इस भक्तमाल के पढ़ने से मिलता है। संसार में तीन प्रकार के मनुष्य हैं एक विमुक्त, दूसरे साधक, तीसरे विषयी, सो विमुक्त व साधक को तो यह पोथी प्राण से भी अधिक प्यारी है कि उनका अभिप्राय अच्छी भाँति से निकलता है और विषयी को इस निमित्त लाभ देनेवाली है कि संसारी कामना इसके पढ़ने से प्राप्त होती है और भगवत् की ओर मन लगजावे तो आश्चर्य नहीं व इसके सिवाय यह कि अद्भुत-अद्भुत वार्ता व ब्योरा खोलकर मर्यादा, प्रेम और वियोग ऐसे योग व रस और शृङ्गार के लिखे हुये है, यद्यपि वह सब सम्बन्ध किये गये भगवत् के प्रेम के हैं तथापि रीति प्रेम वास्तवी और मनमुखी को एक ही भांति की है, इस हेतु वे लोग उन मर्यादाओं को मनमुखी प्रेम के सम्बन्धी समझकर प्रेम की रीति व मर्याद से ज्ञानयुक्त होंगे और सुख आनन्द पावेंगे। तात्पर्य यही है कि तीनों भांति के लोगों को लाभ व प्रसन्नता देनेवाला है और क्यों न ऐसा होय कि भगवत् को अपने भक्तों के सदृश प्यारा है कि आप सुनते हैं; एक वैष्णव गुरु धन दास नाम व्रजमण्डल में कामा का रहनेवाला नगर जयपुर में गया श्रीगोविन्ददेवजी के मन्दिर के पुजारीने कि नाम उनका राधारमण था उस वैष्णव से भक्तमाल की कथा का श्रवण प्रारम्भ किया। कथा समाप्त नहीं हुई थी कि वैष्णव साम्हर के दिशा चले गये जब फिरआये तब पूछा कि कथा कहांतक होचुकी थी ? कोई न वतला सका और श्रीगोविन्दजी ने बतलाया कि फलाने भक्त तक कथा हो चुकी थी इससे निश्चय होगया कि भगवत् आप इस भक्तमाल को सुनते हैं।

दूसरा यह वृत्तान्त है कि प्रियादासजी कि जिसने मूल भक्तमाल की टीका को किया है सो होडल गांव में व्रज से बीस कोस है तहां गये और लालदास महन्तठाकुरद्वारे में कथा सुनाई। संयोगवश मन्दिर में चोरी होगई और मूर्खों ने कारण चोरी होने का कथा को समझा, परन्तु महन्तजी को कुछ दुचिताई न हुई और स्वामी प्रियादासजी से कथा कहने को कहा। स्वामीजी बोले कि श्रोता इस कथा के आप भगवत् हैं जबतक सिंहासन भगवत् का फिर न आवेगा तबतक कथा बन्द रही और सब लोग ठाकुरद्वारे के ठाकुरजी के वियोग से उस दिन बेअन्नजल रहे जब रात्रि हुई तो भगवत् ने उन चोरों को ऐसा भय दिया कि प्रातही सिंहासन भगवत् का शिरपर रखकर सब सामग्रीसहित महन्तजी की सेवा में प्रकट हुये। सबको श्रीभक्तमाल पर विश्वास हुआ और मूर्ख लोगों के मुँह में धूल पड़ी और कथा प्रारम्भ हुई। यह बात कुछ औघट नहीं है क्योंकि आप अपने भक्तों को सहाय के हेतु निजधाम को छोड़कर चले आते हैं और अनेक प्रकार के अवतार धारण करते हैं जो कथा उनकी सुनी तो क्या अनुचित है? अब दो एक बातें वह लिखी जाती हैं कि जिनके मनोरथ केवल पोथी के विश्वास से प्राप्त हुये। सुमेरुदेव ब्राह्मण नर्मदा के किनारे कोड़बने के रहनेवाले ने गलताजी में अतिप्रेम से भक्तमाल की कथा सुनी और पोथी की प्रति एक लिखाय लेकर घर को चले। राह में ठगों ने मारा व उनकी पोथी सब वस्तुसहित ले गये और यह पोथी जहां रहती है मन के मैल को दूर कर देती है इसहेतु चोरों को अपने पापकर्म का पश्चात्ताप हुआ और श्रीभक्तमाल ने स्वप्न में भयङ्कर स्वरूप से दर्शन देकर यह आज्ञा की कि सुमेरुदेव के शरीर को उसके घर पहुँचा दे और पोथी उसके शीश पर रख दे कि वह जी जायगा। ठगों ने उसी भांति किया और तुरन्त सुमेरुदेव जी गया मानो सोते से उठ बैठा, इस चरित्र को देखकर सबको अचम्भा हुआ और भक्तमाल में विश्वास हो गया व भगवत्शरण हो गये और वैष्णव होकर कृतार्थ हो गये। इसी प्रकार एक वणिक् ने इस कथा को श्रीप्रियादासजी से सुना और विश्वास करके पोथी की प्रति लेगया। कुछ काल पीछे उसकी मृत्यु आन पहुँची तब यमदूतों के डर से अपने लड़कों से कहा कि पोथी हमारी छाती पर रख देव, जबतक पोथी आवे तबतक उसका प्राण निकलगया, घरके सबने मरे पर पोथी उसके शिर पर रख दी, उस प्रताप से यमदूत तो भाग गये और वणिक् उठ बैठा। कहने लगा कि यमदूत तो यमलोक को लिये जाते थे भगवद्भक्तों ने छोड़ाया अब मैं वैकुण्ठ को जाता हूँ और उपदेश किये जाता हूँ कि जो कोई मेरे वंश में हो सो इस पोथी को पढ़ता सुनता रहे और अन्त समय अपनी छाती पर राखे। यह कहकर परमधाम को गया और उसके वंश में अबतक वह परम्परा वर्त्तमान है व लाला गुमानीलाल भाषान्तरकर्ता तीसरा अपना वृत्तान्त लिखते हैं कि एक पुत्र उनको बड़ी प्रार्थना से प्राप्त हुआ, उसको दुःख मृगी का रहता था। एक दिन

लाला गुमानीलाल भाषान्तर लिख रहे थे कि रोने की ध्वनि अपने घर में सुनी, उठकर भीतर गये देखा कि लड़का ज्ञानचेष्टारहित धरती पर पड़ा है और माता उसकी रोती है। उसने शोक की पीड़ा से क्रोधभरी बातें कहीं और पोथी के ऊपर भी एक बात कठोर मुख से निकल गई। लाला इस कठोर वचन को नहीं सह सके और भक्तमाल की पोथी लड़के के शिर पर रख दी जिससे वह लड़का तुरन्त उठ बैठा और फेर वह दुःख उसको न हुआ।



अथ भक्तमाल ॥

रस के भेद का वर्णन ॥

मङ्गलाचरण समाप्त होगया—परन्तु जो चौबीस निष्ठा लिखी जायँगी उनका सम्बन्ध रसों से है और मूल भक्तमाल में पाँच रस भगवद्भक्ति के संयोगी लिखे हैं, परन्तु किसी तिलक मूल में स्वरूप रसों का और जड़ लिखी नहीं थी सो निर्णय करके लिखता हूँ। जानलो जड़ रसों की वेद (श्रुति) है "रसो वैसः" यही श्रुति है, अर्थ इसका यह है कि ईश्वर परमात्मास्वरूप और अर्थ रस के यह हैं कि एकाग्र-चित्त की वृत्ति जिस आनन्द के स्वाद को चखकर सुख में डूबके बेसुध हो जाय, तात्पर्य यह कि सच्चिदानन्दघन परब्रह्म अपने स्वामी का जो स्वरूप ध्यान में साक्षात्कार हुआ उसमें वह चित्त की वृत्ति दृढ़ हो जाय वह रस है, फिर उसी का दूसरा अर्थ है कि जो स्वरूप भगवत् का शृङ्गार वात्सल्य अथवा सखा इत्यादि रसों की सामग्री से कि वह सामग्री सब अपनी जगह पर लिखी जायँगी भक्तों के हृदय में प्रत्यक्ष हुआ और उस स्वरूप में चित्त की वृत्ति दृढ़ हो जाय उसको रस कहते हैं और कोई कोई रसभेद के वर्णन करनेवालों ने वह स्वरूप जो हृदय में साक्षात्कार हुआ उसका नाम भाव लिखा और उस भाव में मन की वृत्ति दृढ़ हो जाने को रस निश्चय किया, सो वह रस एक और व्यापक पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द-घन है उपकरण जो उसके प्रकट होने के अलग २ हैं, इसहेतु पृथक् २ नाम हुये। वास्तव में वह रस एक और व्यापक है जिस प्रकार एक मिट्टी से बहुत प्रकार के

घट अलग २ नाम और स्वरूप के होते हैं परन्तु मिट्टी सबमें एक ही और व्यापक है जैसे पानी में जैसा रङ्ग मिलाया जावे वैसा ही दिखलाई देने लगता है परन्तु पानी का रङ्ग कई प्रकार का नहीं। इसी भाँति वह रस जिस जगह सौन्दर्यता और आभूषण और सुकुमारता और कटाक्ष इत्यादिक के अनुकरण सहित प्रत्यक्ष हुआ उसको शृङ्गार कहते हैं और जहाँ शूरता व बल व शास्त्र व उत्साह इत्यादिक के अनुकरण सहित प्रकट हुआ उसको वीररस कहते हैं। इसी प्रकार दूसरा अनुकरण वात्सल्य और सख्य इत्यादिक के पृथक् २ हैं अर्थात् रस एक है अनुकरण के विरोध के कारण से अनेक नाम हुए। अब एक शङ्का यह प्रकट हुई कि प्रथम तो चित्त की दृढ़वृत्ति को रस लिखा और फिर रस को व्यापक सच्चिदानन्द ईश्वर वर्णन किया दोनों में ठीक क्या है ? सो बात यह है कि रस भगवद्रूप व्यापक है चित्त की दृढ़ वृत्ति को जो रस लिखा तो हेतु यह है कि जैसे कहने में आता है कि जीव का आहार जीवन ही है सो वास्तव में आहार जीवन नहीं परन्तु जीवन का अनुकरण बली है, इसी प्रकार वह दृढ़ वृत्ति अनुकरण दृढ़ रस का है और उसी को रस कहा जाता है। रसों की संख्या में आपस में शास्त्रों में विरोध है, शृङ्गार के उपासक कहते हैं कि आनन्दस्वरूप केवल शृङ्गार से प्राप्त होता है, दूसरे रस व्यर्थ हैं। उत्तर यह है कि जो आनन्द का मूल शृङ्गार होवे तो व्याघ्र व मेढ़ा व गज आदि की लड़ाई देखने और दूसरा ही ऐसे कार्यों से जीवन का शृङ्गार से सम्बन्ध नहीं आनन्द होना चाहिये। कोषशास्त्रवाले आठ रस कहते हैं शान्तरस वर्णन नहीं करते हैं उपनिषद् शास्त्रवाले शान्तरस को मूल वर्णन करते हैं व दूसरे रसों को उसकी शाखा बतलाते हैं। साहित्य शास्त्रवाले कि वह शास्त्र प्रेम व काव्य व रस भेद आदिक का है सो नव रस इस विवरण से कि शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त कहते हैं। भगवत् उपासक किसी की हानि नहीं करते परन्तु उपासना के योग्य संपूर्ण उन नवरसों में से दो रस एक शृङ्गार दूसरा शान्त व तीसरा अधिक उसमें एक सख्य, दूसरा दास्य, तीसरा वात्सल्य सब लेकर पाँचरस अङ्गीकार करते हैं। यद्यपि सब रसों के अवलम्ब से भगवत् का चिन्तन हो सकता है क्योंकि भगवत् सब रसों में व्यापक है परन्तु उपासना व लाने योग्य केवल पांच रस अङ्गीकार करे तो कारण यह है कि उन पांचों रसों को भगवत् के शीघ्र और निश्चय प्राप्त होजाने में विशेषता है। दूसरे रसों से ऐसी शीघ्र भगवत् की प्राप्ति नहीं और कोई कोई उन नव रसों में जैसे भयङ्कर और बीभत्स कई एक ऐसे हैं कि कोई उपासक उन रसों के अवलम्ब से उपासना नहीं करता। हिरण्यकशिपु और रावण और कंस इत्यादिक को जो उस रूप से भगवत् ने उद्धार करके मुक्ति दी इस हेतु रसों में उनकी भी गिनती हुई। सिद्धान्त उपासना के सम्बन्धी पांच रस हैं और इस ग्रन्थ में वह पाँचों रस निष्ठा

नाम करके लिखे जावेंगे व दूसरी निष्ठा सब उन रसों के अङ्गभूत हैं—कोई पुरुष किसी भाव और किसी प्रकार और किसी विश्वास और किसी रीति और निष्ठा से भगवत् आराधन करे रस व्यतिरिक्त नहीं, अब जो बातें कि संयुक्तसम्बन्धी सब रसों की हैं वह तो वहाँ लिखी जाती हैं और जो निज रस की सम्बन्धी हैं सो अपने प्रयोजन के स्थान पर लिखी जावेंगी, परन्तु अच्छे प्रकार समझने के हेतु दृष्टान्त सब शृङ्गार रस के सम्बन्ध के यहाँ लिखे जावेंगे । अब जानना चाहिये कि वह रस जिसका ऊपर वर्णन हुआ सो चार सामग्री से प्रकट होता है—एक तो विभाव, दूसरा अनुभाव, तीसरा सात्त्विक, चौथा व्यभिचारी अर्थात् प्रियबल्लभादि रूप। विभाव उसको कहते हैं जो कारण और मूल उस रस के प्रकट होने का हो सो उसके दो प्रकार हैं, एक आलम्बनविभाव, दूसरा उद्दीपनविभाव, सो आलम्बनविभाव दो प्रकार का है एक आश्रयालम्बन जो रस के रहने का स्थान अथवा रस की उत्पत्ति का स्थान सो वह ध्यान करनेवाला अर्थात् भगवद्भक्त और स्नेहासक्त अर्थात् आश्रित है । दूसरा विषयालम्बन अर्थात् मूर्त्ति शृङ्गार रस कि जिसका ध्यान किया जाय, तात्पर्य भगवत्स्वरूप व जिस पर स्नेह होय व दूसरा उद्दीपन सो चार प्रकार का है; प्रथम गुण यह कि सौन्दर्य व स्वरूप की लावण्यता व नवयौवन व मनमोहन किशोर अथवा बालकस्वरूप व सुन्दर बोल व प्रीति इत्यादि, दूसरा चेष्टा यह कि क्रान्ति व झलक व सुकुमारता का गर्व व हावभाव कटाक्ष व सुकुमारता इत्यादि, तीसरा अलंकार यह कि वस्त्र व आभूषण की सजावट इत्यादि, चौथा तटस्थ यह कि अतर पान फूल इत्यादि । यह विभाव का वर्णन हो चुका दूसरी सामग्री अनुभाव यह कि स्नेह करनेवाला व जिस पर स्नेह है दोनों के एकत्र होने से जो बात प्रकट में आवे और उस कारण से वह रस प्रत्यक्ष होवे वह अनुभाव है, यह कि परस्पर मिलना, गलबाहीं बैठना और खेलना एक शय्या पर लेटना, हँसी ठट्ठा चुम्बन व आलिङ्गन इत्यादि यह अनुभाव है । अब रही सामग्री तीसरी व चौथी जो सात्त्विक व व्यभिचारी उनका वृत्तान्त यह है, प्राचीन लोगों ने उन दोनों की प्रीति करनेवाले की चञ्चलदशा समझकर केवल व्यभिचारी एक नाम लिखा सो उनका निर्मूल कुछ वर्णन नहीं है, जैसे भरतरि ऋषीश्वर ने अपने सूत्रों में लिखा है परन्तु नवीन लोगों ने यह सूक्ष्मता निकाली कि जो एक दशा सब रसों में व्यापकता रखती होय उसका नाम सात्त्विक है और जो दशा ऐसी है कि एक रस में तो व्यापक होती और दूसरे रस में व्यापक नहीं होती वह व्यभिचारी है कि दशरूपक इत्यादि रसभेद के शास्त्र में सात्त्विक व व्यभिचारी पृथक् २ लिखे हैं, सो सात्त्विक उसको कहते हैं कि अपने प्रियवल्लभ को देखकर अथवा उसकी ओर से दुःख सुख के पहुँचने से जो मनकी वृत्तिको एकदशा प्राप्त हो और वह दशा आठ हैं और जिस प्रकार सामग्री प्रथम व द्वितीय जैसे विभाव और अनुभाव सब रसों के अलग २ हैं तिस प्रकार यह

सात्त्विक जो सामग्री तीसरी सब रसोंको भिन्न नहीं एकही भाँति व्याप्त सब रसों में है, प्रथम दशाकानाम स्तम्भ है ज्यों का त्यों रह जाना, दूसरी दशा प्रलय नाम मूर्च्छा, तीसरी रोमाञ्च अर्थात् शरीर पर रोम खड़े होजाने, चौथी दशा स्वेद पसीना हो आना, पाँचईं विवर्ण मुख का रङ्ग और होजाना, छठईं कम्प शरीर कांपना, सतईं अश्रु आँसू बहना, आठईं स्वरभङ्ग शब्द में भेद पड़जाना और यह भी ज्ञातरहे कि यह आठों दशा और एक दशा मरण कि वह व्यभिचारी के वर्णन में लिखी जायगी सो अत्यन्त हर्ष व अत्यन्त शोक अथवा वियोग व संयोग दोनों अवस्था में एक ही भाँति बराबर होती हैं और जो मृत्युदशा सब रसों में बराबर व्यापक नहीं होती है इस हेतु से उसको व्यभिचारी की सम्बन्धिनीं में ज्ञाता लोगों ने गिनती करी है और सामग्री चौथी व्यभिचारी उसको कहते हैं कि जो दशों रस के दृढ़ होने के पहले अथवा पीछे प्रकट होकर फिर जाती रहे सो दशा तेंतीस हैं और सब रसों में बराबर उन सबकी व्यापकता नहीं है ।। प्रथम निर्वेद ।। उसको कहते हैं कि प्यारे का वियोग अथवा दूसरे के साथ अपने प्यारे की प्रीति अथवा कोई बात विपरीत समझ लेने का दुःख १ ।। ग्लानि ।। उसको कहते हैं कि बल घट जाना और उमंग का न रहना २ ।। शङ्का ।। यह कि प्यारे के मिलने में किसी विघ्न के संदेह का ध्यान होना ३ ।। श्रम ।। यह कि पन्थ चलने से अथवा संभोग के पीछे थक जाना ४ ।। धृति ।। मन की संतुष्टता ५ ।। जड़ता ।। यह कि वियोग इत्यादिक की व्यथा के दुःख से ज्यों का त्यों रह जाना ६ ।। हर्ष ।। यह कि प्यारे को देखकर अथवा उससे वार्त्तालाप होने से या कोई दूसरे हेतु से हर्षित होना ७ ।। दीनता ।। यह कि बेचैनी से मन छोटा होजाना और वियोग होने को न सह-सकना ८ ।। उग्रता ।। यह कि अवज्ञा जो प्यारे से हुई इस कारण क्रोध का आ जाना ९ ।। चिन्ता ।। यह कि प्यारे के मिलने के निमित्त शोचना १० ।। त्रास ।। यह कि अचानक किसी भय का आ जाना ११ ।। ईर्षा ।। अपने प्यारे में दूसरे की प्रीति का साजीपना न सहसकना १२ ।। अमर्ष ।। यह कि प्यारे में अवज्ञा जो किया उसका दुःख होना और न सहारना इस दशा में और नम्रता दशा में भेद बहुत है १३ ।। गर्व ।। यह कि अपने से दूसरे को अधिक न जानना १४ ।। स्मृति ।। यह कि अपने प्यारे को अथवा उसके गुणोंको स्मरण करना १५ ।। मरण ।। यह कि मरने का उपाय करना अथवा मर जाना ९६ ।। मद ।। यह कि हर्ष व गर्व के एकत्र होने से जो दशा होती हो अर्थात् कार्याकार्य का विवेक न करना १७ ।। निद्रा ।। यह कि बाहर के अनुसंधान से अन्तर की वृत्ति में एकाग्रचित्त का होना जैसे स्वप्न १८ ।। सुषुप्ति ।। यह कि घोर निद्रा १९ ।। अवबोध ।। यह कि अवधानता बेसुधि भये पीछे सुधि होनी २० ।। व्रीडा ।। यह किं लज्जा २१ ।। अपस्मार ।। यह कि दुःख और आशा और अन्य से मन को ताप होनी २२ ।। मोह ।। यह कि

मन के डगमग और दुःख व भय से जो अनवधानता होय २३ ।। मति ।। यह कि आदि सिद्धान्त जो पथ है विचार करके निश्चय कर लेना २४ ।। आलस ।। यह कि कार्यों में उपाय की अनवधानता २५ ।। आवेश ।। यह कि मन की रुचि अथवा अनरुचि का अचानक प्रगट हो जाना और इस हेतु मन का डगमग होना २६ ।। वितर्क ।। यह कि संदेह से नाना प्रकार का ध्यान होना २७ ।। अवहित्था ।। यह कि हर्ष अथवा शोक के कारण करके अपने जाने हुये को छिपाना २८ ।। व्याधि ।। यह कि वियोग में शरीर से दुःखी हो जाना २९ ।। उन्माद ।। यह कि जड़ चैतन्य को बराबर जान लेना अर्थात् मतवारा जैसे ३० ।। विषाद ।। यह कि जो अपने मन के विरुद्ध है उसके दूर करने का उपाय दिखाई न पड़ना ३१ ।। औत्सुक्य ।। अपने प्यारे के मिलन में विलम्ब का न सराहना ३२ ।। चपलता ।। यह कि मित्र और शत्रु के कारण से मन का स्थिर न होना ३३ ।। इति ।।

वर्णन चारों सामग्री का हो चुका अब स्थायी भाव उसको कहते हैं कि जो रस अपने सजातीय व विजातीय से दूर न हो सके और बराबर अपनी दशा पर बना रहे वह स्थायी भाव है रसों के वर्णन के आरम्भ में जिसकी चर्चा हुई सजातीय यह कि रस से रस का मिट जाना जैसे लड़के हँसी और ठट्ठा अर्थात् हास्यरस में मग्न हैं कि किसी बड़े ने क्रोध अर्थात् रौद्ररस से रस हँसी को निवृत्त कर दिया और विजातीय यह कि जैसे लड़के हास्यरस में मग्न हैं फिर रोटी खाने चले गये और वह रस निवृत्त हो गया तात्पर्य यह कि रस से रस निवृत्त न हुआ। दूसरी वस्तु से निवृत्त हुआ अभिप्राय यह कि किसी अभिघात और किसी प्रकार पर मन भगवत्-स्वरूप के ध्यान और चिन्तन से न हटे वह पदवी अन्त की और दृढ़भाव है ।। इति ।।

अब तुलसीराम की प्रार्थना ।। हे रघुनन्दन स्वामी, कृपासिन्धु, दीनवत्सल, हे करुणाकर ! हे पतितपावन, अधमउधारण, महाराज ! मै कैसा अधम और मतिमन्द हूँ कि आप तो अनुक्षण व सर्वकाल स्पर्द्धा व कपट व क्रोध व अभिमान व मिथ्या बोलना व हिंसादिक सहस्त्रों अपराधों में प्रवृत्त रहता हूँ भूलकर भी आपकी ओर सावधान नहीं होता और दूसरे लोगों के कर्म व आचरण पर व्यंग व दंश करके उनके निमित्त शिक्षा लिखता हूँ मेरा वही हाल हैं ३६ ।। आप पाप के नगर बसा-वत सहि न सकत परखेरो ।। जो यह बिनती करूँ कि कुछ मेरे ऊपर भी कृपा की दृष्टि हो तो कौन मुख लेकर निवेदन करूँ कि एक बात भी अच्छी नहीं है जो बिनती करूँ तो दूसरा उपाय नहीं सूझता सो अब एक बात दृष्टि में आई हैं कि सब पापियों में अनुपमान व अद्वितीय हूँ सो राजसभा में सब प्रकार के कला के बड़े प्रवीणों का प्रयोजन होता है, इस निमित्त जो यह गुण मनोवृत्त्यनुकूल होय तो संक्षेप में यह प्रार्थना अंगीकार होवे कि कोई देह में मेरा जन्म हो और नरक में

जाऊँ अथवा स्वर्ग में परन्तु यह स्वरूप आपका मेरे मन में बसा रहे—सरयू के निकट अयोध्या निजधाम में जो राजद्वारी और उसमें निज सभा का मन्दिर बना हुआ है जिसका द्वार और प्राकार व भूमि भाँति-भाँति के मणिगण से जटित हैं और तहाँ एक ऐसा मण्डप स्वर्णसूत्र का है कि जिसकी झालरों में दिव्य स्वर्णसूत्रों के गुच्छे और मोती टँके हुए हैं उसके नीचे रत्न सिंहासन है कि जिसके जड़ाऊ मणिगण को देखकर नेत्र को चकचौंधी होती है उस सिंहासन के ऊपर आप इस शोभा से कि किशोर अवस्था है और मुख की सुन्दरता से सुन्दरता भी सुन्दरता पाती है कि किरीट मुकुट धारण किये हुये कानों में कुण्डल और उसमें श्रीमहारानीजी ने फूलों के गुच्छे गूँधकर डाले हैं बड़े सजावट के साथ दिव्य वस्त्राभरण जगर मगर की पहिरे हुए और उस पर माला मणिगण और फूलों की पड़ी हुई मोतियों के कण्ठे गले में हाथों में कड़े और पहुँची अँगुलियों में अँगूठी और चरण कमलों में घुंघुरू और कड़े विराजमान और शोभित हैं और ऐसी ही शोभा के साथ श्रीजनकनन्दिनी अखिल-ब्रह्माण्डेश्वरी वाम अङ्ग शोभायमान हैं और झलक मुख और आभूषण की परस्पर आभूषण व मुखपर जो पड़ती है तो ऐसी एक धार व शोभा की छटा है कि जो वहाँ प्राप्त हैं सो अपने को भूलकर सुख में मग्न होरहे हैं, वशिष्ठजी राजतिलक करते हैं भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नजी छत्र, चँवर, धनुष बाण इत्यादिक लिये हुये और हनुमान्‌जी सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं और शिव ब्रह्मादिक देवता और सब देश देश के भेंट लिए हुए प्राप्त हैं और दूसरी सामग्री व साज राजतिलक का जो भक्तों के मन में समाया है और सो प्राप्त है और यह दास भी अपने ओहदे उपानत् की सेवा पर प्राप्त था।

दो० कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
ऐसे ह्वै कै लागहू, तुलसी के मन राम ॥

आत्मनिष्ठों की प्रथम धर्मनिष्ठा ॥

प्रथम श्रीकृष्ण स्वामी के चरणकमलों की अंकुश रेखा को दण्डवत् है कि जिसका ध्यान करने से मन जो मतङ्ग (गज) के समान है तुरन्त वश में हो जाता है और भगवत् के मीन अवतार को दण्डवत् है कि जगत् की शिक्षा के निमित्त राजा श्रुतदेव को धर्म उपदेश किया और अपनी माया उसको दिखलाकर रक्षा करी। वेद और सूत्रों के अनुकूल जो आचरण शुभकर्म लिखे हैं वह धर्म है और उसके प्रतिकूल अधर्म है तो अङ्गीकार करना आचरण शुभ और छोड़ना कर्म निन्दित वेद की आज्ञा के अनुरोध अत्यन्त उचित है और जो कोई वेदआज्ञा विरुद्ध कर्म करते हैं सो नरकगामी होकर अतिकठिन यातना का दुःख भोगते हैं। इसके ऊपर चौरासी लक्ष शरीर में जन्म होने का ऐसा कठिन दण्ड है कि वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि नरक से उद्धार होने का तो काल का प्रबन्ध है परन्तु आवा-

गमन जन्ममरण के दुःख से छूटने का कोई प्रबन्ध निबन्ध नहीं। इस हेतु कि आवागमन रहँट के चक्र की भाँति है कि इस योगवश मनुष्य का शरीर मिलता है वह संसारसमुद्र तरने के निमित्त नौका के सदृश है जो इस शरीर को पाकर अपने छूटने का उपाय किया तो बेड़ा पार है नहीं तो फिर उसी दुःख में बद्ध होता है। कर्मशास्त्र की आज्ञा में युक्त रहना सीढ़ी के सदृश है कि शीघ्र व बिना परिश्रम उत्तम पद को पहुँच जाता है और जो कोई इससे निराश हैं सो सदा उद्धार से निराश हैं। कोई कोई मनुष्य ऐसे देखे कि कर्म करने में तो प्रीति नहीं और उत्तम पद की बातें बनाते हैं, ऐसे लोग कदापि सिद्धपद को नहीं पहुँचेंगे। विचार करना चाहिये कि आप भगवत् वेदआज्ञा व कर्मशास्त्र के प्रकाश व प्रवृत्ति कारण के निमित्त अवतार लेता है जो कोई बिना कर्म करने के उद्धार चाहे कब हो सकता है व जब आप भगवत् ने अपने आपको कर्म करने से निवृत्त न किया और श्रीगीताजी में भगवत् का वचन है कि मैं आप कर्म करता हूँ जो कर्म न करूँ तो दूसरे लोग भी छोड़ देवें तो मैं ही जगत् का वर्णसंकर व नाश करनेवाला हो जाऊँ। श्रीरघुनन्दन स्वामी को रावण के विजय किये पीछे यह ज्ञात हुआ कि रावण का जन्म ब्राह्मणवंश में था पाप दूर होने के निमित्त एक अश्वमेध-यज्ञ किया व कर्मशास्त्र की मर्यादा से चरण बाहर न रक्खा तो इस मनुष्य की क्या बात है कि बिना कर्म करने के आवागमन के दुःख से छुट्टी पावे। जो यह शङ्का होय कि कर्म तो आप जड़ है इस मनुष्य चैतन्य को किस प्रकार छुड़ावेंगे सो उत्तर यह है कि जिस प्रकार नौका जड़ है कैवर्त्त के हाथ के सहारे से सहस्रों को पार उतार देती है अथवा सीढ़ी जड़ है परन्तु बिना उसके कदापि अटारी पर न जा सका। इसी प्रकार कर्म हैं संसारसागर से पार उतारने के निमित्त सहाय होते हैं व उत्तम पद को पहुँचाय देते हैं। जो यह शङ्का होय कि जो शुभकर्म करेंगे तो उनके भोगने के निमित्त शरीर अवश्य होगा व जब कि शरीर हुआ उसको एक दिन मृत्यु आवेगी और इसी प्रकार जन्म मरण में रहेंगे, शुभकर्म से छूटने के प्रकार की रचना क्या होगी सो वृत्तान्त यह है कि शुभकर्म दो प्रकार के हैं—एक सकाम कि जो किसी कामना की सिद्धि के निमित्त करेजावें वे तो अवश्य आवागमन के कारण होते हैं काहेसे कि जब उस कर्म का फल इतिश्री होगया तब स्वर्गादिक से पृथ्वीपर जन्म लेता है, दूसरा निष्काम कि वह उद्धार व छूटने का कारण है निष्काम के अर्थ यह कि बिना किसी कामना के करने में आवे तात्पर्य यह कि जो कर्म करे तो फल उसका कदापि न चाहे भगवत् के अर्पण कर देवे क्योंकि भगवत् अच्युत व अनन्त व अविनाशी है इस कारण से वह फल जो भगवत् को अर्पण किया गया सो भी अनन्त अच्युत व अविनाशी हो जाता है और उसी प्रसन्नता से भगवत् अपना स्वरूप उस मनुष्य के हृदय में प्रकाश करता है अर्थात्

भगवत् चरणों में प्रीति हो जाती है, जिस प्रकार कोई कंगाल मनुष्य कि महाराजाधिराज की सेवा में कोई वस्तु दो चार पैसेकी लेजावे तो राजा उसको उस वस्तु का मोल विचारके अथवा उस मनुष्य की मर्याद के योग्य का द्रव्य नहीं देता है किन्तु अपनी ओर देखकर देता है और उसका दरिद्र दूर कर देता है। उसके अलग लोगों की रीति है किसी ने किसीको कोई वस्तु बिना मोल दी तो उसके कृत को मानिके कार्य कर देते हैं इसी प्रकार वह भगवत् कि सब कृतज्ञता की मिति के जाननेवालों का मुकुटमणि है सब कार्य करदेता है अभिप्राय यह कि जब इस मनुष्य की भगवत् में प्रीति हुई और नित्य के कर्म सहायक हुये दिन २ भगवत् की प्रीति बढ़ाते हुये ऐसे अनन्त होजाते हैं कि हृदय निर्मल होकर भगवत् की भक्ति दृढ़ होजाती है और उस भक्ति की कृपा से कृतार्थ होकर भगवत्पद को पहुँच जाता है और जन्म नहीं होता है और फिर यह कर्मशास्त्र भगवत् की आज्ञा है और रीति है कि जो कोई सेवक अपने प्रभु की आज्ञापालन में तत्पर रहता है तो वह प्रभु उस भृत्यपर प्रसन्न होकर सब मनोरथ सिद्ध कर देता है तो भगवत् कि जो सब प्रभुलोगों का प्रभु है जो सेवक उसकी आज्ञा को पालन करेगा उसपर प्रसन्न होकर क्यों नहीं कार्य सिद्ध करदेगा और क्यों नहीं आवागमन की पीड़ा से छुड़ावेगा और चमत्कार यह कि निष्काम कर्मों के कारण से संसारी कामना भी आप भगवत् कर देते हैं कि प्रह्लाद, अर्जुन, युधिष्ठिर, ध्रुव इत्यादि भक्तों की कथासे प्रकट है। अब शङ्का यह भारी हुई कि भला शुभकर्म तो इस हेतु न रहे कि भगवत् में जा मिले परन्तु अशुभकर्म भी तो इस मनुष्य से होजाते हैं वे किस प्रकार जावेंगे सो बात यह है कि कर्म दो प्रकार के हैं—एक अज्ञात दूसरा ज्ञात, सो अज्ञात कर्म तो नित्य के सन्ध्या व बलिवैश्वदेव व श्राद्ध व अभ्यागतपूजन इत्यादिक से दूर होजाते हैं और वही भगवत् को पहुँचकर अनन्त फल के देनेवाले होते हैं और ज्ञातकर्म रहा सो उनका हाल यह है कि जिसकी निष्ठा शुभकर्मों में है उससे महापातक होताही नहीं और जो कोई दैवयोग से होभी गया तो जो भगवत् शुभकर्म का स्वामी होता है वह ही अशुभकर्मों के पातक को मार्जन करदेता है सो वेद श्रुति प्रकट लिखती है और न्याय से भी जानने योग्य है कि जिसने शुभकर्मों का तो फल भगवत् को दिया, अशुभ कर्म उसके निमित्त क्यों रहेंगे ? इस व्यवहार से काम और निष्काम में एक दृष्टान्त स्मरण हो आया कि जो कोई चाकर या ठेकेदार किसी का होता है और उससे कुछ वस्तुकी हानि होजावे तो उसीके ऊपर देन उतरता है और जो घर के दासीपुत्र से हानि होजावे तो स्वामीपर उतरता है, दास से कुछ सम्बन्ध नहीं तात्पर्य यह कि सकाम कर्म करनेवाला चाकर ठेकेदार के सदृश है और निष्काम कर्म करनेवाला जैसे दासीपुत्र सिद्धान्त यह कि निष्कामकर्मों का करना वेद की आज्ञा के अनुसार उचित है। जो ज्ञानी और भक्त अगले समय में हुये और जो कि अब हैं व जो आगे होंगे केवल कर्मों के प्रभाव

से वह पद उत्तम उनको प्राप्त हुआ और होगा जैसा कि भगवद्गीता में लिखा है कि कर्मोंही के प्रभाव से जनक इत्यादि को मन की स्थिरता सिद्ध भई, फिर लिखा है कि बिना कर्म करने के कदापि नहीं छूटते। सर्वशास्त्र इस बात में युक्त हैं कि बिना कर्म उद्धार नहीं और वेदआज्ञा में बुद्धि से तर्क करके कहना कि यह वेदआज्ञा है सो इस लाल के हेतु होगी यह बात वर्जित है और यह बात स्मृति में भी लिखी है परन्तु प्रयोजनपाय करके लिखा जाता है कि विधिनिषेध जो हैं वेदाज्ञा सो यद्यपि परलोक के हेतु हैं तथापि संसार के लाभ को भी विशेष हैं जैसे प्रभात का उठना व स्नान करना, माता, पिता, गुरु की वन्दना, सत्य बोलना, सुहृदता, मीठे वचन, विवेकी जनों का सङ्ग करना, विद्या पढ़ना, और किसी को बुरा न कहना, जिसका लोन खाइये तिस पालन करनेवाले की सेवा निश्चल धर्म से करना, मित्र से कपट न रखना व जो कोई कुछ विद्या सिखलावे व शिक्षा करके भगवत् की ओर लगावे इसको गुरु जानना व भगवद्भजन इत्यादि सहस्रों प्रकार के शुभकर्म का अङ्गीकार करना व मिथ्या बोलना, चोरी, परस्त्रीगमन, हिंसा, जुवा का खेलना, मद्यपान, असाधुजन का सङ्ग, मिथ्या उत्पात, कपट, मिताई, मूर्खता, अकृतज्ञता, इत्यादि का त्याग करना व नदी में नहाते हुये, पानी बरसते में, चलते हुये, बार बनवाते हुये दूसरी ओर चित्त न करना, बासी अथवा गरिष्ठ किसी का जूठा व तीक्ष्ण व खट्टा व क्षार इत्यादिक का न खाना, स्निग्ध सुस्वादु मिष्ट कोमलरङ्ग आहार का भोजन करना, रात को पहाड़ पर न चलना ऐसी २ सहस्रों आज्ञा धारण करने के योग्य हैं कि इस संसार में कैसे लाभ के देनेवाली हैं ॥ इति ॥ कोई कर्म ऐसे हैं कि जो नित्य उस कर्म को न करे तो मनुष्य अपनी ज्ञाति से पतित होजाते हैं परन्तु ऐसी दुर्भाग्यता ने बल बाँध रक्खा है कि कदापि उस ओर चित्त की वृत्ति नहीं होती बरु बहुत लोग यह कहते हैं कि अजी साहब! शास्त्र के अनुसार किससे कर्म हो सकता है? पायँ धरने का भी ठिकाना नहीं कहो न कहो का व्यवहार है सो समझ में आता है कि उन लोगों को उस आज्ञा का पालन तो अलग रहा सुनने का भी संयोग न हुआ। काहेको जो आज्ञा विधि निषेध हैं ऐसी सहज है कि सब कोई उस पर चल सके और जहाँ कोई ऐसी भी विधि की गति लिखी है कि वह अतिकष्ट से साध्य होय तो उसी के समीप ही दूसरी रीति की आज्ञा ऐसी लिख दी है कि सब कष्ट सुलझ जावें जैसे दीपक व तेल हाथ में लग जाय तो इतनी मिट्टी लगाकर धोने को लिखा है कि बड़ा कष्ट है तहाँ ही यह बात लिख दी है धरती से हाथ रगड़ के धो डाले। बहुत जगह कि पाप के प्रायश्चित्त के निमित्त चन्द्रायणव्रत लिखते हैं और उसी जगह यह भी लिखा है कि जो न हो सके तो कृच्छ् नहीं तो तीन दिन अथवा एक दिन का व्रत करे तात्पर्य यह है कि शास्त्राज्ञा सब ऐसी हैं कि सहज से हो सकें परन्तु प्रथम तो समझना और फिर करने पर फेंट बाँधना कठिन हो रहा है और यह भी तो अनुमान करना

योग्य है कि जो अङ्गीकार उन आज्ञाओं का न हो सकने के योग्य होता तो शास्त्र में लिखी ही काहे को जातीं। बहुतसी जाति जो नास्तिक और म्लेच्छ कहे जाते हैं तो कारण यह है कि वे लोग वेद की आज्ञा को नहीं मानते और विरुद्ध आचरण हैं तो जो कोई वेद शास्त्र की आज्ञा पर प्रवृत्ति न करे सो नास्तिक और म्लेच्छ हैं और जो कोई वेद शास्त्रकोमिथ्या कहते हैं अथवा अन्य सामान्य विद्या के सदृश समझते हैं उनकी दुर्गति होने में तो कुछसंदेह ही नहीं है और जो नरक स्वर्ग को मिथ्या कहते हैं वे भी निस्संदेह दुर्गति हैं यह सब वचन स्मृतिके वार्ता करके लिखे गये हैं अब कथा व नाम उन महात्मालोगों के संक्षेप से लिखे जाते हैं कि जो इस निष्ठा में दृढ़ होकर और भगवद्भक्तों को पाकर भगवत्परायण हुये।

दो० रूपराशि आनन्दघन, गौरश्याम कमनीय।
युगलकिशोर बसो सदा, जन प्रतापके हीय॥१॥

कथा राजाहरिश्चन्द्र की॥

ये राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी अयोध्या के राजा बड़े प्रतापी हुये जिनकी कथा शास्त्र व पुराण में प्रसिद्ध है। विश्वामित्र को यज्ञ की दक्षिणा में राज्यादिक सब देकर तीन भार सुवर्ण के हेतु राजा, रानी व कुँवर रोहिताश्व किसी नगर में बिकने को गये वह भी नगर राजा का था विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी की शत्रुता से व धर्म की परीक्षा के अर्थ न अंगीकार किया, राज्य के अन्तर्गत वह राजा से कल्पित ठहराया। वशिष्ठजी ने राजा को सैन से जनाया कि काशी राज्य में नहीं है वहाँ जावो। राजा काशीजी में चाण्डाल के यहाँ बिके उसने मृतकघटिया पर वस्त्र व कर लेने की सेवा सौंपी, रानी व कुँवर एक ब्राह्मण के यहाँ बिके। विश्वामित्र ने तब साँप होकर कुँवर रोहिताश्व को काटा, रानी रोदन करती हुई मृतक को जलाने के हेतु घाट पर गई राजा ने वहाँ कर के निमित्त रोका। रानी बहुत करुणा वचन सुनाया पर राजा धर्म में दृढ़ था, ऐसी दशा में भी धर्म न छोड़ा, रानी के पास कुछ नहीं था कि कर दे; रात को गङ्गाकिनारे बैठी रही तब विश्वामित्र काशीराज के लड़के को मारकर रानी के पास रख के प्रभात को काशीराज से जनाया कि गङ्गा के किनारे एक स्त्री रहती है, लड़कों को खाती है उसी ने यह कर्म किया होगा। लोगों ने उस लड़के को मृतक स्त्री के पास पाया, काशीराज ने बिना बिचारे उस चाण्डाल को स्त्री के बध करने की आज्ञा दी। उसने राजा हरिश्चन्द्र के पास वध करने के हेतु भेज दिया। राजा की आज्ञा सुनते ही तुरन्त तरवार खींचकर उठा चाहा कि रानी के गले पर मारे कि धरती कँपने लगी व आकाश से हाय २ शब्द हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सब देवताओं ने राजा का हाथ पकड़ लिया, भगवत् ने प्रसन्न होकर कहा वर माँग, राजा ने कहा भक्ति छोड़ दूसरे की चाह नहीं। भगवत् ने भक्ति

वरदान देकर कुँवर रोहिताश्व व काशीराज के लड़के को जिलाकर अयोध्या के राज्य करने की आज्ञा दी। संपूर्ण वयक्रम न्याय अरु भक्ति में व्यतीत कर और भगवद्भक्ति की रीति में प्रजा लोगों को प्रवृत्त करके अन्त समय कुँवर रोहिताश्व को राज्य देकर परमधाम को गया। अब विचारना चाहिये कि धर्म की दृढ़ता व निर्वाह कौन २ पदार्थ दुर्लभ को नहीं देता है।

कथा राजा बलि की ॥

ये राजा बलि विरोचन के पुत्र व प्रह्लाद के पौत्र परम भगवद्भक्त व प्रतापी हुये, जिसके यहाँ आप भगवत् ने भीख मांगी व जिसने अपनी पीठ को नपाय दिया व अबतक जिसके द्वार पर आप भवगत् वामनरूप से खड़े रहते हैं, कथा लोक में उनके यश की प्रसिद्ध है। यहां ध्यान करके देखना चाहिये कि भगवत् ने अपने भक्त से छल व कपट किया तिसके हेतु अपने उस रूप को यह दण्ड दिया कि राजा के द्वारपाल हो गये तो भला और कोई भक्तों के साथ छल व कपट करेगा तिसको न जाने कैसा दण्ड करेगा।

कथा राजा दधीचि की ॥

राजा दधीचि ज्ञानी भक्त परोपकारी ऐसे हुये कि अपने अस्थि को देवता लोगों को दे डाला और इन्द्र ने वज्र बनवा कर उसी से वृत्रासुर का वध कर सुख पाया। कथा प्रसिद्ध है अब विचार कर लेना चाहिये कि जो लोग सिद्ध अवस्था को प्राप्त थे कर्म करने न करने का प्रयोजन कुछ न था तिनको भी कर्मशास्त्र की आज्ञापालन में कैसी निष्ठा थी। अब हमारी यह गति है कि शास्त्र आज्ञा को पालन करना तो अलग है यह भी नहीं जानते कि कर्मशास्त्र किसको कहते हैं, धन्य है।

कथा दशरथ महाराज की ॥

दशरथ महाराजाधिराज परम भागवत धर्मकर्मनिष्ठ हुए। इनकी बड़ाई व भाग्य का वर्णन किससे हो सकता है कि पूर्णब्रह्म भगवत् ने वश होकर जिसके पुत्र होकर बालचरित्र आदिक से आनन्द दिये। ये महाराज पहले जन्म में स्वायंभुव मनु थे और शतरूपा उनकी रानी थी। तप करके भगवत् से वरदान मांगा कि आपके सदृश हमारे पुत्र होय व हमारे जीवन का सम्बन्ध आपके दर्शन से रहे। वही दशरथ हुये व भगवत् आप उनके पुत्र होकर प्रकट हुए, अयोध्याजी में रामरूप से नाना प्रकार के चरित्र किये। बालमीकि ऋषीश्वर ने सौ कोटि श्लोक में वर्णन किये, रामचन्द्र महाराजाधिराज के चरित्र तीनों लोक में सूर्य के सदृश व्याप्त व प्रकाशित हैं। राजा ने कैकेयी रानी को पूर्व वरदान दिया था तिस कारण से श्रीरामचन्द्र ने चौदह वर्ष बनवास किया। रावणादिक दुष्टों का वध करके अपने

यश का सेतु संसारसमुद्र में बांधा व दशरथ महाराज ने रघुनाथजी के वनगमन होते ही तनु को त्याग करके स्वर्गवास किया।

कथा भीष्मपितामह की ॥

भीष्मजी परम भगवद्भक्त रहे और बारह महाभागवतों में उनकी गिनती है। इस कर्मनिष्ठा में उनको लिखा सो कारण यह कि प्राप्त होने भक्ति व ज्ञान के भी प्रवृत्ति आज्ञा कर्मशास्त्र का कर्तव्य समझते रहे कि श्राद्ध के समय उनके पिता का हाथ निकला परन्तु हाथ पर पिण्डा न दिया वेदी पर रख दिया और दुर्योधन के लोन से पालित अपने को जानकर युधिष्ठिर की ओर न गये गङ्गाजी के उदर से उत्पत्ति उनकी है, जब गङ्गा जी स्वर्ग चली गईं व शंतनु महाराज विकल हुये तब योजनसुगन्धा को आप राजा न होने का वाचा प्रबन्ध करके ले आये इसी हेतु अपना विवाह न किया। काशीराज की लड़की अम्बा नाम तिससे विवाह नहीं किया, परशुरामजी गुरु से लड़ाई का संयोग पहुँचा परन्तु न विवाह किया व दयालुता यहां तक रही कि युधिष्ठिर महाराज महाभारत में रातको जा कर रोये तब अपने वध का उपाय आप बतलाया, तब दूसरे दिन अर्जुन ने उसी रीति से शिखण्डी को बीच में खड़ा करके बाण मारे, तब शरशय्या पर शयन किया और भगवत् ने अपना प्रण छोड़कर भीष्मजी का प्रण रक्खा। रथ का चक्र लेकर उनपर दौड़े और अपने पिता के आशीर्वाद से मृत्यु उनकी उनके आधीन रही इसी कारण से बावन दिन तक शरशय्या पर रहे और तनु त्याग कर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज को आंखों के आगे देखते परमधाम को पधारे। इति।

कथा सुरथ सुधन्वा की ॥

ये दो दोनों भाई सगे राजा नीलध्वज के पुत्र परमभागवत रहे। राजा ने सुधन्वा को बिना विचारे आज्ञाभङ्ग के अपराध का दण्ड, मन्त्री की शत्रुता से दिया तेलके कड़ाह जलते में डलवा दिया, तेल ठंढा हो गया जैसे प्रह्लाद की गति हुई सोई हुआ, फिर सुधन्वाने अर्जुन से अश्वमेध के घोड़े रोंकने में अत्यन्त युद्ध किया। अन्त में दोनों भाई खेत आये, भगवत् को प्राप्त हुये व शिर उनका महादेव ने अपने मुण्डमाल में लिया। इति।

कथा हरिदास की ॥

राजा हरिदास परम भक्त हुये, धर्मशास्त्र की आज्ञा पर बहुत दृढ़ रहे, इस हेतु इस निष्ठा में लिखे गये। यह राजा पाटननगर के जाति राजपूत तोदर शरनपाल राजा शिबि के समान व दान देने में राजा दधीचि के सदृश अपने वचन के पालने में राजा बलि के समान व भगवद्भक्ति में प्रह्लाद के तुल्य व रिझवार राजा जगदेव के समान हुये कि वृत्तान्त उस का इस जगह लिखा जाता है कि राजा जगदेव बड़े शूरवीर व न्यायनिष्ठ व उदार रहे और रिझवारनिष्ठा इतनी रही कि एक नटिनी

ने तमाशा राजा के सम्मुख किया उसके राग व नाचपर कला इत्यादिक से प्रसन्न होकर कुछ प्रसन्नद्रव्य देने के हेतु चिन्ता करने लगे। परन्तु उसके गुण के सम्मुख कुछ ध्यान में न आया सिवाय इसके कि शीश अपना दे डालें। नटिनी ने निवेदन किया कि जब मुझको आपके सिर का प्रयोजन आन पड़ेगा तब ले जाऊँगी और राजासे निश्चय किया कि रिझवारता तुम्हारे ऊपर अन्त हो चुकी अब मेरा दहिना हाथ किसी के आगे कुछ लेने को नहीं फैलेगा। पीछे दूसरे राजाके यहाँ उसकी नृत्य कला हुई राजा रीझकर कुछ देने लगा, नटिनी ने बायाँ हाथ पसारा, राजा ने क्रोध करके कारण पूछा, नटिनी ने कहा कि मेरा दहिना हाथ राजा जगदेव के भेंट हो चुका है उसके सिवाय कौन दानी है जिसके आगे फैलाऊँ। राजा ने कहा मैं दशगुण अधिक उससे देसकता हूँ। कह उसने क्या दिया है? पीछे बहुत बातचीत होनेके राजाने प्रतिज्ञा की कि दशगुण अधिक देऊँगा। निश्चय जान तब नटिनी राजा जगदेव के पास आई उसका शिर लेकर राजा के पास आई कि राजा जगदेव ने यह सिर अपना हमको दान दिया रहा, यह कहकर शिर राजाके सम्मुख रख दिया व बोली कि तू भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर। राजा लज्जित होकर उठगया फिर मुख न दिखाया व नटिनी ने शिर राजा जगदेव का उसके धड़पर रखकर वही राग कि जिस पर राजा रीझा था गाया, तुरन्त जी उठा और यह रिझवारता की बात राजा जगदेव की संसार में फैली और एक प्रसंग राजा जगदेव का यह है कि कोई राजा की लड़की तसपर आसक्त हुई, विवाह का संवाद भेजा, राजा जगदेव ने अङ्गीकार न किया, लड़की की माता ने किसी बहाने से राजा को अपने नगर में बुलाया व राजा को मन्त्रियों के द्वारा बहुत समझाया, राजा ने न माना उस लड़की ने भी अपने प्रेम व आसक्तता के दुःखको प्रकट किया परन्तु उस जगदेव ने न अङ्गीकार किया। यहाँतक हुआ कि उस लड़की दुष्टाने राजा जगदेव का शिर देखने के निमित्त कटवा मँगाया परन्तु इस दशा में भी भगवत् ने राजाकी ऐसी प्रतिज्ञा पूरीकी कि मृतकशिर ने उस लड़की के मुख को न देखा। कई बार वह शिर के सम्मुख गई परन्तु जब सम्मुख आवे तब शीश उसके दूसरी ओर फिर जाय, तात्पर्य यह निकला कि स्त्री से पराङ्मुख होय तो इस प्रकार होय व निश्चय करके स्त्रियों का संग मुमुक्षु को ऐसा दुःखदायी है कि कभी भगवत् प्राप्ति के आनन्द को समीप आने नहीं देता। अभिप्राय इस प्रसंग कहने का यह कि यह राजा हरिदास भी रिझवारनिष्ठा में ऐसेही रहे मानो तोदरकुल में सूर्य के समान हुये, कलियुग में धर्मात्मा रहे, तिलकमाला से प्रीति रही कि वर्णन नहीं होसकता। बात यह है कि एक वैरागी दुष्ट उसकी लड़की के साथ रात को सोता था आंख से देखा परन्तु क्षमा करगये। वह दुष्ट डरकर भागनेलगा तब यह बोले कि ऐसे कर्मों से वेषकी निन्दा होती है इतनाही कहने से उस वैरागी को ज्ञान हो गया वनमें निवासकर भगवद्भजन करने लगा। इति।

निष्ठा दूसरी धर्मप्रचारक ॥

श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के व्यास अवतार को दण्डवत् है कि जगत् के उद्धार के हेतु वेदों को विशेष प्रकाशित और ब्रह्मसूत्र और महाभारत और अठारह पुराण व स्मृति को बनाकर भागवत धर्म की प्रवृत्ति की और चरणकमल की कुलिशरेखा को दण्डवत् है कि महाघोररूप वृत्रासुर और पाप के पहाड़ों को नाश करने वाला है भागवतधर्म उसको कहते हैं कि भगवद्भक्ति के सम्बन्ध से जो कुछ किया जाय सेवा, पूजा, भजन, स्मरण, कीर्त्तन इत्यादि जो किसी को संदेह होय कि धर्मनिष्ठा और भागवत्धर्म में क्या अन्तर है ? सो बात यह है कि धर्मनिष्ठा का अभिप्राय कर्म से है चाहे वह कर्म सकाम हो अथवा निष्काम और भागवत् धर्म उसको कहते हैं कि जो निष्काम कर्म इस जन्म में चाहे अगिले जन्मों में किये हैं और उनको भगवत् अर्पण करके भगवद्भक्ति प्राप्त हुई होय, उस भक्ति के सम्बन्ध से जो कुछ करना योग्य है वह भागवतधर्म है जब कि भागवतधर्म में सावधान होकर भक्त का मन लगा और प्रतिक्षण उसी ओर बाहर भीतर के चित्त की वृत्ति हुई तो और कर्म करने न करने को स्वाधीन व बहुत आचार्यों का मत इस बात पर है कि कर्मों के प्रभाव से भगवद्भक्ति प्राप्त हुई है। जबतक देहानुसंधान को भूलके मग्न न होजाय तब तक संध्या इत्यादिक जो आवश्यक कर्म उनको करता रहे और समझना चाहिये कि यद्यपि देखने में यह बात विरुद्धसी समझने में आती है परन्तु सिद्धान्त में कुछ विरुद्ध नहीं, काहेसे कि जो कोई भागवतधर्म में एकाग्रचित्त है वह जो कर्म करता है सो सब भगवद्भक्ति के सम्बन्ध के हैं उनको कर्म न समझना चाहिये सो उस भागवतधर्म के कि जिसका वर्णन हुआ प्रचारक उसकी नौका के समान हैं कि आपभी पार जावे और दूसरों को उतार देवे। तरणतारण को पद विख्यात हैं सो ऐसे ही भक्तों के निमित्त है, यद्यपि भागवतधर्म के प्रचारक आप भगवत् हैं कि ब्रह्माजी को वेद का उपदेश किया और वेद के अनुकूल भागवतधर्म ने प्रवृत्त को पाया परन्तु विशेष कृपालुता के हेतु उस धर्म की प्रवृत्त में इतनी निरन्तर कृपादृष्टि की कि वेद और ब्रह्मा पर भी प्रबन्ध उसका न रक्खा और कई युक्ति और प्रकट कर दीं। यह कि भक्तों और ऋषीश्वरों के मुख से सूत्र और तन्त्र और स्मृति और वेदान्त, पातञ्जलि मीमांसा इत्यादि छओं-शास्त्र व बाल्मीकीय रामायण व महाभारत इत्यादि इतिहास व पुराण वर्णन व रचना कराया कि उसके अनुकूल प्रवृत्ति उसकी हुई और लोग उनका श्रवण व कीर्त्तन करके कृतार्थ हुये और होते हैं । पश्चात् जब भगवत् ने देखा कि लोगों के चित्त की चाह काव्य के पद पदार्थ की है तो नाटक व चम्पू व काव्य व साहित्यशास्त्रों के योगसे शिक्षा को किया और उनके बोधसे भी लोगों की बुद्धि श्रमित व भ्रमित देखी तो टीका करने का प्रचार चलाया और जब उनको भी लोग अच्छे प्रकार न समझ सके तो सूरदास व तुलसीदास व नाभा व अग्रदास व नन्ददास व कृष्णदास

इत्यादि को कलियुग में प्रगट करके भाषा में चरित्र व भागवतधर्मों की रचना कराया व जगत् में प्रवृत्त किया। उसके अलग उस भागवतधर्म के प्रवृत्त होने के निमित्त दूसरा उपाय यह किया कि आप अपने मुखारविन्द से उन धर्मों को स्पष्ट करके समझाया और लक्ष्मीजी व अपने पार्षद व ब्रह्मा व शिव व सनकादिक व नारद व शुक्राचार्य व बृहस्पति व वशिष्ठ व व्यास इत्यादि सहस्रों को गुरु बनाकर उपदेश व विशेषता उन भागवतधर्मों की करी और कलियुग में शङ्कराचार्य और रामानुज स्वामी व निम्बार्कस्वामी व माधवाचार्य व विष्णुस्वामी व वल्लभाचार्य व हित हरिवंशजी इत्यादिक सैकड़ों आचार्य अपनी विभूति और कला व अंश व आवेश अवतार से प्रकट करके अब तक जिनकी कृपा से करोड़ों जीव महापापात्मा सबोंका उद्धार होता है फिर तीसरा विचार यह किया कि अपना मन्दिर व मूर्ति और भजन व तप का स्थान जैसे बदरिकाश्रम आदि और अपने धाम जैसे मथुरा अयोध्या आदि और तीर्थ जैसे गङ्गा यमुना पुष्कर आदि प्रकट किये कि उनके प्रभाव से भक्ति का प्रचार हुआ। तात्पर्य इस लिखने का यह कि भगवत् को प्रवृत्त करना अपने भागवत-धर्म का और दृढ़ रखना उसका इतना अंगीकार है कि जब कभी थोड़ा भी उसमें विघ्न आय पड़ता है अथवा कोई विघ्न करने को उद्यत होता है तो आप भगवत् अवतार लेकर उन विघ्न करने वालों का वध कर देते हैं और अपने धर्म को स्थिर रखते हैं। गीताजी में भगवत् का वचन है कि हे अर्जुन! जब धर्म में हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तो मैं आप अपने भक्तों के सहाय के हेतु और नाश करने दुष्टों के और स्थिर करने अपने धर्म के अवतार लेता हूँ तो आवश्यक व बहुत प्रयोजन है कि जहां तक होसके भगवद्धर्म के प्रचार करने में परिश्रम व यत्न करे कि उससे प्रसन्नता भगवत् को होती है और प्रचार करनेवाला इस धर्म का भगवत् की विभूति अवतार में विचार किया जाता है। एक जगह शास्त्र में लिखा है कि जो कोई एक जीव विमुख को भगवत् सम्मुख कर देता है उसको दशहजार अश्वमेधयज्ञ का फल होता है। भगवत्कथा कराना, ठाकुरद्वारा, भजन, कुटी, धर्मशाला, वाटिका, कूप, तड़ाग, पाठशाला इत्यादि और ऐसे मन्दिर कि जिससे भगवद्भजन करनेवालों और संसार को आराम हो रचना करवाना और भगवत् चरित्रों को बनवाना और प्राचीन पोथियों की टीका बनवाना, अधर्म से हटाकर भगवद्धर्म में लगाना, सदावर्त्त इत्यादि सब जगह और विशेष करके जैसे बदरिकाश्रम व अयोध्या व हरिद्वार आदिक स्थान में प्रवृत्त करना व एकादशी आदि भगवत् के व्रत के दिन में जागरण करना व भगवत्कीर्त्तन का समाज होना और जिस दिन भगवत् के अवतार हुये हैं उस दिन और दूसरे त्योहार जो भगवत् के हैं तिनको भगवत् का त्योहार जान-कर अति आनन्द और स्नेह और धूमधाम के साथ उत्साह कराना और विद्याके पढ़ने पढ़ाने में परिश्रम व उपाय करना। ऐसे ही और काम कि जिनके कारण करके

लोगों को भगवत् की ओर मन सम्मुख करना। यह सब सामग्री बढ़ाने भागवतधर्म की हैं जो कोई कि भगवद्भक्त हैं और केवल लोगों के उद्धार व उपकार के निमित्त जिनकी मनोवृत्ति है उनकी बड़ाई व वर्णन तो किससे हो सकता है कि वे कृतार्थरूप हैं और जो कोई अपने यश व संसार के दिखाने के हेतु इस भगवद्धर्म का प्रचार करता है वह भी भगवत् को प्यारा है कि उसके प्रभाव से सहस्रों को शुभगति हुई व उस धर्म के पुण्य से अथवा किसी भक्त के आशीर्वाद से उसका मन भी भगवत् में लग जायगा, महिमा भागवतधर्मप्रचारकों की शास्त्रों में इस आधिक्य से लिखी है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता और एक कथा अनन्ताचार्य की जो पोथी प्रपन्नामृत में लिखी है स्मरण हुई कि उससे महिमा ऐसे भक्तों की प्रकट होती है। ठाकुरद्वारे व नगर के मार्ग जाने आनेके बीच में एक गड़हा पड़गया व रास्ता क्लिष्ट होगया अनन्ताचार्यजी आप टोकरी और फावड़ा लेकर उस गड़हे को भरनेलगे। इस हेतु कि लोगों को आनेजाने का क्लेश न होवे और स्त्री उनकी कि वह गर्भवती रही उसको भी इस धन्धे में शामिल किया जब प्रसवकाल समीप आया और उस स्त्री को टोकरी के ढोने से क्लेश होने लगा तो भगवत् ने पनिहारे का रूप बनाकर उसकी स्त्री को आज्ञा की कि तुम्हारे बदले मैं टोकरी ढोता हूँ तुम विश्राम करो पश्चात् थोड़ेही विलम्ब में अनन्ताचार्य ने देखा कि स्त्री के धन्धे पर कोई पनिहार टोकरी ढोता है सोंटा लेकर दौड़े और कहा कि तू कौन है जो हमारे भाग में बलात्कार साझी होता है जब समीप पहुँचे तो भगवत् को एक भागने बिना दूसरा उपाय न सूझा और मन्दिर में जा घुसे व अनन्ताचार्यजी सोंटा लिए पीछे रहे जो मन्दिर में पहुँचे तो भगवत् का श्रीअङ्ग मिट्टी और धूलि में भरा हुआ देखकर बूझा गया कि आप भगवत् स्त्री पर दया करके टोकरी ढोते रहे। अनन्ताचार्यजी ने हाथ जोड़कर प्रेम में मग्न होके विनय किया कि महाराज, कृपा करके किङ्करों को उचित है न कि स्वामी को। ऐसे विचार से सब लोगों को उचित व योग्य है कि अपने २ अभिलाष व विश्वास के अनुसार इस परमधर्म के प्रवृत्त करने में सब तन मन प्राण से उपाय व परिश्रम करें जिस किसी को जिस बोली में विद्या प्राप्त हुई है और काव्यरचना में चित्त की वृत्ति है तो भगवच्चरित्रों ही की रचना करें परन्तु सैकड़ों काव्यकर्त्ता देखने में आये कि विना अनाप शनाप बकवाद के भगवच्चरित्रों की ओर तनक भी एकाग्रचित्त नहीं होते और कोई कोई से बात कहने में आई कि तुम भगवत्यश वर्णन करके अपनी वाणी व अन्तःकरण को क्यों नहीं पवित्र करते हो तो उत्तर देते हैं कि महाराज हम अभेद का वर्णन करते हैं और कोई कहते हैं कि समय का जैसा चलन है वैसे ही पद पदार्थ की रचना का करना अच्छा होता है और कोई कहते हैं कि कविलोगों का मन पद व अर्थ की रचना चिन्तन के व्यतिरिक्त दूसरी ओर नहीं जाता। यह भी तो भगवद्भजन है बस, ऐसे ही ऐसे उत्तर

अयोग्य निरर्थक देते हैं। उनका वर्णन करना व्यर्थ है। तात्पर्य सब कहने का यह कि जिस काव्य व रचना व चित्रपद में भगवच्चरित्रों का वर्णन नहीं वह काव्य निराला निष्फल व अधम है, जैसे कोई परमसुन्दरी चन्द्रवदनी स्त्री है और बिना वस्त्र नङ्गी होवे व और अधिक व्यवहार संसार का वैभव व धन पर निबन्ध है सो धनवान् लोगों को अच्छे प्रकार ज्ञात व प्रकट है कि धन किसी के घर न पहिले रहा न अब रहेगा, शून्य हाथ आये और इसी प्रकार चले जावेंगे। इस धन का नाम माया है और लक्ष्मी अर्थात् भगवत् की पतिव्रता स्त्री है, जहाँ उसका स्वामी रहेगा वहीं वह रहेगी नहीं तो तुरन्त चली जायगी। अभिप्राय यह है कि जो धन को सदा स्थिर करने को चाहे तो भगवत्पन्थ में उसको लगाके सदा सेवा व भजन में काल व्यतीत करे सहस्रों साहूकार और ऐश्वर्यवान होगये किसी का नाम भी कोई नहीं जानता और जिन लोगों ने ठाकुरद्वारा तड़ाग भजनकुटी इत्यादि बनवाया अबतक उनका नाम प्रकाशित है और रहेगा अब बड़े शोच व मसोस की बात है कि धन को पाइकै भगवद्धर्म का प्रचार न करे ईश्वर और जीव और संसार और स्वर्ग और नरक और भक्ति और ज्ञान और वैराग्य और सब रीति सम्प्रदाय व मत का जानना विद्या के आधीन है जब से चारोंवर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से शास्त्र का पढ़ना उठ गया तब से सब धर्मों का नाश हो गया। दक्षिण देश चीनापट्टन व तैलङ्ग व द्राविड़ व बारह मल्हार में रीति है कि जो किसी का लड़का शास्त्र पढ़ने में मन न लगा के क्रूरता करता है तो उसके बड़े लोग वहाँ के देशाधिपति से आज्ञा लेकर पैरों में बेड़ी डालकर पाठशाला में भेज देते हैं और जबतक शास्त्र न पढ़ लेवे बेड़ी नहीं निकालते। इस कारण से उस देश के सब लोग धर्मों में स्थिर हैं और ब्राह्मण से लेकर नीचजातिपर्यन्त कोई मनुष्य ईष्ट उपासना से शून्य और अज्ञ नहीं और विरुद्धधर्मी लोगों के वचनफांस में थोड़े फँसते हैं, इस हेतु जहां तक हो सके और अपने व बिराने को शास्त्र पढ़ने की सहायता करे, जो संस्कृत न पढ़ सके तो भाषा का पढ़ लेना मनोरथ को पहुँचा देता है। सूरसागर, तुलसीकृत रामायण को भगवत् ने ऐसा प्रताप दिया है कि जो नियम करके पढ़ते हैं वह निश्चय भगवत् के प्यारे हो जाते हैं और इसी प्रकार नन्ददास व कृष्णदास व अग्रदास व छीतस्वामी इत्यादि की वाणी को प्रताप है और भक्तमाल का वाक्य तो प्रारम्भ ही में लिखा गया भगवत् कथा कहलाना और उसके सुनने की शिक्षा देना और अपने अनुगामी व पुत्र पौत्रादि को जिस प्रकार व्यवहार सांसारिक के सिद्धि के हेतु प्रवृत्त माना, विद्या को पढ़ाते हैं व शौच करते हैं; इसी प्रकार भगवत् की ओर लगाना और भगवत्सहस्रनाम व गीता व स्तवराज इत्यादिक स्तोत्रों का पढ़ा देना अति प्रयोजन से है और जो कोई अपने वंश को और अनुगामी लोगों को भागवतधर्म में नहीं लगा देते व भगवत्धर्म के सम्बन्ध की विद्या नहीं पढ़ाते तो जो पाप जीवनपर्यन्त उनसे होते हैं उनके बड़ों के शिर हैं,

क्योंकि पढ़ा देना उन विद्याओं का उन पर अवश्य था सो न किया व जिनके वंश में भगद्भक्त होते हैं तो अपने पुरुषों को भी नरक से उद्धार करके मुक्त कर देते हैं, इसमें प्रह्लाद आदिक भक्तों की साक्षी है। हे कृपासिन्धु ! हे दीनबन्धु ! हे श्रीव्रज चन्द्र, महाराज ! कुछ इस घरजाये किंकर की ओर भी निगाह है कि बिन आपके चरणकमलों के और कोई शरण और रक्षक मेरे नहीं जो मेरे कर्मों की ओर दृष्टि करोगे तो अगणित जन्मों तक मेरा ठिकाना नहीं लगेगा, इस हेतु केवल कृपा व दया का आसरा है। यद्यपि यह बात जानता हूँ कि जितना विमुख व संसारी लोगों की स्तुति व आराधना व मुखजोहन व मनरञ्जन करता हूँ व भय से उनसे कम्पमान रहता हूँ जो उसके सहस्रवें भाग में एक भाग भी आपका भय करके भजन स्मरण में व्यतीत करूँ तो एक क्षण में बेड़ा पार होता है, परन्तु यह मन ऐसा भाग्यहीन व दुष्ट पापी है कि भूल के भी उस ओर नहीं लगता। जो अब भी मूर्ख मतिमन्द मन ऐसा चिन्तवन आप का करता रहै तो शीघ्र अपने परम मनोरथ को प्राप्त हो सकता है। श्रीयमुनाजी के किनारे एक वाटिका परम मनोहर है कि जिसमें सुन्दर मार्ग व क्यारियों में जल चल रहा है और सब प्रकार के फल व फूलों के वृक्षों पर हरी लहलही डहडही बेल छाय रही हैं व बीच में फुलवारी नानारङ्ग के फूलों की छवि देती है, मयूर, कोकिल, शुक, सारिका, कपोत, सारस, हंस आदि अपने मधुर शब्द व चहचहाहट से बरबस मन को मोहित करते हैं। उस वाटिका में श्रीनंदनन्दन शोभाधाम अपने सखन के संग भांति भांति के आनन्द व खेल कर रहे हैं। मुखारविन्द की शोभा की उपमा सूर्य चन्द्रमा मणिगण अथवा कोई फूल कमल व गुलाब आदि की दी जाय तो उनमें एक ही एक प्रकार की शोभा है व इस मुखारविन्द मनोहर में उन सबकी शोभा एक ही जगह संपूर्ण है। मुकुट जड़ाऊ मोरपक्ष का शीश पर, कानों में कुण्डल कि उनमें फूलों के गुच्छे गुँथे हैं विराजमान हैं, गले में मोतियों की कण्ठी व मणिगण की माला, उस पर फूलों की माला है। कड़े और पहुँची हाथों में सुवर्णतारी दुपट्टा जैसा कि खेलने के समय बांधना चाहिये बँधा हुआ व पीताम्बर की धोती पहिने हुए चरणकमलों में कड़े व झाँझ शोभित हैं और खेल की दौड़धूप में जो पसीना आ गया है तिसकी छोटी छोटी बूँदें मुख पर झलकती हैं और अलकैं घूँघुरवारी जो पवन के लगने व दौड़ने से बिथुरि के कपोलों पर आई हुई हैं ऐसी शोभा व आनन्द प्रकट करती हैं कि देखनेवालों का मन बरबस हाथ से जाता है।

कथा ब्रह्माजी की ॥

ब्रह्माजी जगत् के पिता व भगवद्भक्तों व सब धर्मप्रचारकों में श्रेष्ठ हैं व भगवद्विभूतिस्वरूप हैं। जब नाभिकमल से उनका जन्म हुआ व तप करने के पश्चात् अपनी व संसार की उत्पत्ति करने का ज्ञान व सामर्थ्य पाई तो भगवद्धर्मों को संसार में प्रवृत्ति किया और अब तक ब्रह्माजी का उपदेश चला जाता है। जिस

प्रकार कि ब्रह्मलोक में नारद सनकादिकों को उपदेश करते हैं और जो कोई उत्तम कर्म करके उनके लोक में जाता है उसको उपदेश भक्ति व ज्ञान का करते हैं कि उस प्रभाव से मुक्ति होजाती है, यह बात सब पुराणों से व्यवस्थित है। जब कभी उस भगवद्धर्म में बाधा पड़ती है व उस कारण से देवता व भगवद्भक्तों को क्लेश होता है तब ब्रह्माजी भगवत् के अवतार होने का उपाय करते हैं और दुष्टों का नाश होकर भगवद्भक्ति की प्रवृत्ति होती है। ब्रह्माजी की कथा पुराणों में सब प्रसिद्ध लिखी है इसी हेतु यहां संक्षेप से लिखा गया। इति।

कथा शिवजी की ॥

शिवजी की पदवी भक्तराज है व भगवद्धर्मप्रचारकों में राजा हैं। भक्ति के प्रचार करने में यहांतक उद्यत हैं कि आप आचार्य होकर संसार को उपदेश करते हैं। विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य शिवजी हैं व जब सेवड़े बढ़े तब स्मार्त्तसम्प्रदाय में शंकराचार्य का अवतार लेकर स्मार्त्तमत प्रवृत्त किया व क्षीरसागर से हलाहल निकला सब देवता भस्म होने लगे तब दया करके आप पान कर गये। ऐसी कृपालुता है व रसिक भक्तराज ऐसे कि सती ने वन में रामचन्द्र की परीक्षा लेने को जानकीजी का स्वरूप धारण किया, तिस हेतु त्याग किया। जब सती ने उस तनु को छोड़कर हिमाचल के यहां जन्म लिया तब बड़ी तपस्या करने से अंगीकार किया। पार्वतीजी से कहा कि रामनाम लेने से हजार नाम का फल है। पार्वतीजी ने विश्वास दृढ़ कर लिया व सहस्रनाम के पाठ के पूर्णता को एक नाम लेकर शिवजी के बुलाने पर चली आईं। आपने अतिप्रसन्न होकर अंग में बायें ओर रखलिया। एक समय भगवत्प्रसाद सनकादिक ने दिया आनन्द से बेसुध होकर भोजन कर गये, पार्वती को भूल गये, पार्वती ने शाप दिया तुम्हारा निर्मल्य आज से जो खायेगा नरक में जायेगा, इस हेतु शिवनिर्माल्य त्याज्य है। एक समय शिवजी पार्वती के सहित चले जाते रहे दो जगह उजाड़ में वाहन से उतर २ साष्टांग दण्डवत् किया। पार्वतीजी ने कारण पूछा तब शिवजी ने कहा कि एक जगह तो एक सहस्रवर्ष व्यतीत हुआ कि एक भगवद्भक्त यहां हुआ रहा दूसरी जगह यह हेतु है कि सहस्रवर्ष व्यतीत होजायगा तब एक भगवद्भक्त यहां होगा, इस हेतु ये दोनों खेरे दण्डवत् व पूजन के योग्य हैं। ऐसे अनेक चरित्र हैं कोई कहते हैं शिवजी रामचन्द्रजी के बालस्वरूप के उपासक हैं सो ठीक है परन्तु जो दूसरी निष्ठाएँ हैं उन सबमें भी वैसी ही प्रीति है कि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के रासविलास के समय सखीरूप होकर पहुँचे व वीररस की शोभा बड़े उत्साह से जायके देखी इससे शिवजी महाराज ज्ञानी भगवत् के भक्त हैं।

कथा अगस्त्यजी की ॥

अगस्त्यजी ऋषीश्वर परमभक्त रामोपासक व बहुत विद्या के आचार्य हैं।

अगस्त्यसंहिता जिनकी बनाई हुई विख्यात है। घट से जन्म है समुद्र को गण्डूष में धरकें पान करगये, देवता दानव के बोझसे धरती उत्तर ओर नीची व दक्षिण ऊंची हो गई तब अगस्त्यजी दक्षिण जा रहे, तब उनके प्रभावसे उत्तर ऊँची दक्षिण नीची होगई, मन्दराचल पहाड़ पड़ा है खड़ा नहीं होता। अगस्त्यजी ने मांगा कि जब तक हम न आवें तब तक तू पड़ा रह, इसी कारण से उत्तर को अगस्त्यजी नहीं आते हैं व मन्दराचल ज्यों का त्यों पड़ा है। इति।

कथा रामानुजस्वामी की ॥

जिस प्रकार भगवत् ने संसार के उद्धार के हेतु चौबिस अवतार धारण किये इसी प्रकार कलियुग में चार अवतार धारण करके भागवतधर्म को प्रकाश व प्रवृत्त किया व चार सम्प्रदाय को स्थापित किया। एक सनकादिक सम्प्रदाय उसके आचार्य निम्बार्कस्वामी हैं, दूसरा श्रीसम्प्रदाय कि उसके आचार्य रामानुजस्वामी हैं, तीसरा शिव सम्प्रदाय उसके आचार्य विष्णुस्वामी हैं, चौथा ब्रह्म सम्प्रदाय उसके आचार्य माधवाचार्य हैं। सबका वृत्तान्त संक्षेपसे लिखाजायगा। रामानन्द व्यास हितहरिवंशआदि ने जिन सम्प्रदायों को प्रकट किया तो अन्तर्गत चार सम्प्रदाय की हैं व चारों सम्प्रदाय भक्तिरूपी भूमि के स्थिर रखने को दिग्गजों के सदृश हैं। चारों सम्प्रदायों में श्रीसम्प्रदाय के आचार्य जो रामानुजस्वामी हुए कि जिनके प्रभाव करके कोटानुकोटि महापापी व पातकी संसारसमुद्र को तरगये व तरते हैं, भक्ति व प्रताप की महिमा उनकी सूर्य के समान प्रकट व विख्यात है व जन्म से लेकर परमधाम जाने के दिनतक का वृत्तान्त स्वामी रामानुजजी के प्रपन्नामृत-ग्रन्थ में सम्पूर्ण लिखा है व गुरुपरम्परा प्रारम्भ से रामानुज स्वामी तक यहां लिखी है और आगे केवल एक गादी कि रामानन्दजी की कथा में लिखी जायगी और चौहत्तर गादी की परम्परा मिलनी अत्यंत दुर्लभ है १ नारायण २ लक्ष्मीजी ३ विष्वक्सेन ४ शठकोप ५ श्रीनाथ ६ पुण्डरीकाक्ष ७ राममिश्र ८ यामुनाचार्य ९ पूर्णाचार्य १० रामानुजस्वामी।

कथा स्वामीरामानन्दजी की ॥

यह रामानन्द स्वामी परम भगवद्भक्त व सिद्ध व आचार्य भक्ति के प्रचार करनेवाले ऐसे हुए कि संसारसमुद्र के उतरने के हेतु अपनी कृपा व संप्रदाय का सेतु बांधा व अनन्तानन्द व सुरेश्वरानन्द व सुखानन्द व भावानन्द व पीपा व सेन व धनाजाट व रैदास व कबीर को उन्हीं की कृपा व प्रभाव और उपदेश से हुआ रहा। यह स्वामी दक्षिण देश में एक संन्यासी का उपदेश लेकर स्मार्त की रीति से भगवत् आराधन किया करते रहे। एक दिन फूलों के लेने को फुलवाड़ी में गये वहां राघवानन्द स्वामी जो रामानुज संप्रदाय के रहे उनका दर्शन हुआ। उन्होंने कहा कि तुमको कुछ अपना वृत्तान्त भी ज्ञात है कि तुम्हारी आयुर्बल

शेष नहीं रही, इस अन्तसमय में भगवच्छरण होजाना चाहिए। रामानन्दजी ने अपने गुरु संन्यासी के पास आयके सब बात कही, उन्होंने भी अपने ध्यान में देखा कि सच है। रामानन्दजी की आयु गत होगई परन्तु कुछ उपाय न होसका। दोनों राघवानन्दजी की सेवा में आयके शरण हुए, राघवानन्दजी ने उन पर दया करके मन्त्र उपदेश किया और रामानन्दजी के प्राण के योगाभ्यास से दशवेंद्वार ब्रह्माण्ड में पहुँचा दिया। जब मृत्यु की घड़ी टलगई तब फिर जिलाकर चैतन्य करदिया व बहुत जीने का वरदान दिया। रामानन्दजी ने बहुत काल गुरु की सेवा की फिर तीर्थाटन करते बदरिकाश्रम की ओर आये। कुछ काल काशीवास किया, पञ्चगङ्गाघाट पर निवास रहा, वहाँ खड़ाऊँ उनकी विराजमान हैं, फिर जब गुरु की सेवा में गये तब आचारीलोगों ने क्रिया व आचार का वृत्तान्त पूछा व जाना कि कभी जो निश्चय आचारधर्म में भेद पड़गया है तब अपने में से न्यारे कर दिया। राघवानन्द उनके गुरु ने आज्ञा दी कि तुम अपना पन्थ अलग चलाओ सो रामावतनाम करिके संप्रदाय चलाई। वह रामानन्दी भी कहलाते हैं। इस संप्रदाय में श्रीरघुनन्दन व जानकी महारानी का ध्यान उपासना है व आचारीलोगों की रीति आचार नहीं है। शास्त्र को मन से यह सिद्धान्त करलिया कि जो कोई भगवच्छरण हुआ उसको बन्धन वर्ण आश्रम का नहीं, सब अच्युतगोत्र होगये, सबका भोजन एक पंक्ति में होता है सो यह शास्त्र के अनुसार है। नारदपञ्चरात्र इत्यादिक में लिखा है कि जैसे चारों आश्रम हैं इसी प्रकार भगवद्भक्ति आश्रम है यह कि सब भगवद्भक्त एकवर्ण हैं। भागवतमें लिखा है कि जो ब्राह्मण अपने सब कर्मों में सावधान है परन्तु भक्त नहीं तो उससे कोई नीच वर्ण जो भगवद्भक्त होय सो वरिष्ठ है और एक यह भी प्रमाण प्रसिद्ध है कि भगवत् ने राजा युधिष्ठिर के यज्ञ होजाने के पीछे वाल्मीकि श्वपच को भगवद्भक्ति के कारण सब वर्णाश्रमवालों से अधिक प्रतिष्ठित किया। इस बात में बहुत प्रमाण हैं सो यह रीति जो वर्णआश्रम-धर्म में है तिनमें नहीं है जो कोई गृह त्याग के किसी संप्रदाय में भगवच्छरण होकर विरक्त होगये उनमें अब तक प्रवृत्ति है व कपिलजी का स्थान गङ्गासागर में लुप्त होगया रहा उसको रामानन्दजी ने निर्देश करके प्रकट किया। गुरुपरम्परा रामानुज से लेकर गोविन्ददास तक और दो गद्दी गलता व रामगढ़ की अब तक की लिखी जाती हैं १ रामानुज २ देवाचार्य ३ प्रधानानन्द ४ राघवानन्द ५ रामानन्द ६ अनन्तानन्द ७ कृष्णदास ८ कील्हदास ९ अग्रदास १० नारायणदास ११ गोविन्ददास।

कथा कृष्णदास पथ आहारी की ॥

कृष्णदासजी अनन्तानन्द के चेला व ब्राह्मणकुल में जन्म ले ऐसे परमभगवद्भक्त हुये कि लाखोंको संसार से उद्धार किया। कील्ह व अग्रदास केवल राम व

हठीनारायण व पद्मनाभ व गदाधर व देवा व कल्याण इत्यादि सैकड़ों चेले ऐसे सिद्ध व प्रेमभक्त हुये कि लाखों का उद्धार किया। पहले गलताजी में योगी रहते रहे कृष्णदासजी ने अपनी सिद्धता से निकालकर पृथ्वीराज राजा को चेताया व एक दरिद्री लड़के को राजा बना दिया ऐसे २ अनेक प्रभाव व प्रताप जिनके हैं।

कथा गोविन्द दास की।

गोविन्ददास नारायणदास जो नाभाजी का नाम है तिनके चेला रहे व बड़े भक्त हुये, नाभाजी ने प्रथम भक्तमाल उन्हीं को पढ़ाई पीछे इन्हीं ने भक्तमाल को जगत् में प्रकाश किया।

कथा विष्णुस्वामी की॥

विष्णुस्वामी महाराज परमभागवत और प्रवृत्ति करनेवाले भगवद्भक्ति के हुये। दक्षिणदेश ब्राह्मणवंश में हुये, चारों संप्रदाय में जो रुद्र संप्रदाय विख्यात है उसके आचार्य स्वामीजी हैं। यद्यपि यह संप्रदाय प्राचीन है परन्तु विशेष करके प्रकाश विष्णुस्वामी से है और शिवज के नाम से विख्यात होने का कारण यह है कि मुख्य आदि आचार्य इस संप्रदाय के शिवजी महाराज हैं। इस हेतु कि प्रथम इस उपासना का उपदेश शिवजी ने प्रेमानन्द मुनि को किया, इस संप्रदाय में ईश्वर को शुद्ध अद्वैत मानते हैं और वह ईश्वर नन्दनन्दन वृन्दावनचन्द्र गोलोकनिवासी सर्वदा सातवर्ष की अवस्था, अपने सखाओं के साथ खेल विहार करता है। व्रजभूमि और गोलोक में कुछ न्यून विशेष नहीं, तिलक व संन्यास का हाल वेषनिष्ठा में वर्णन होगा व जो रीति मुख्य इस संप्रदायवालोंकी है उसके वैष्णव व तदनुवर्ती गुजरातदेश में विशेष हैं परन्तु वल्लभाचार्य की प्रवृत्ति की हुई रीति के अनुसार अति अधिक प्रवृत्ति इस संप्रदाय की है यद्यपि रीतिप्राचीन व विष्णुस्वामी व वल्लभाचार्य में कुछ भेद नहीं कि सब बालस्वरूप के उपासक हुये परन्तु वल्लभाचार्यजी ने कोई २ भाव व रीति अपने अन्तःकरण के प्रेम की तरङ्ग के अनुसार ऐसी निकाली कि बरबस चित्त को खोजती है सो हाल उनका कुछ सूक्ष्म करके वल्लभाचार्य की कथा में व वात्सल्यनिष्ठा में लिखा जायगा और बाबालाल कि जिसका बड़ा विश्वास आलमगीर के भाई दाराशिकोह बादशाह को रहा सो वह भी इसी निष्ठा और संप्रदाय में रहे। कोई २ माध्वी संप्रदाय में कहते हैं परन्तु निश्चय करके इसी संप्रदाय के अनुगामी हुये, उन्होंने एक दो रीति में कुछ घट बढ़ करके अपनी रीतिपर प्रवृत्त इस संप्रदाय को किया व विष्णुस्वामी महाराज की संप्रदाय में करोड़ों भक्त इस उपासना के प्रताप से भगवत्पद को पहुँचे व मुख्य गुरुद्वारा विख्यात गोकुल में है और गुजरातदेश में है पर गोकुल का सा नहीं। गुरुपरंपरा १ शिवजी २ परमानन्दमुनि ३ आनन्दमुनि ४ प्रकाशमुनि ५ श्रीकृष्णमुनि ६ नारायणमुनि ७ जय-मुनि ८ श्रीमुनि ९ शङ्करभट्ट १० पद्मभट्ट ११ गोपालभट्ट १२ श्रीधरभट्ट १३ श्याम

भट्ट १४ रामभट्ट १५ सेतभट्ट १६ कृष्णभट्ट १७ दिवाकर भट्ट १८ कृपालभट्ट १६ विद्याधरभट्ट २० दिनकरभट्ट २१ मधुनिधानभट्ट २२ ज्ञानदेवभट्ट २३ सुखदेवभट्ट २४ शिवदेवभट्ट २५ शान्तभट्ट २६ दयालदेव २७ क्षमादेव २८ संतोषदेव २९ धीर-जलदेव ३० ध्यानदेव ३१ विज्ञानदेव ३२ महाचार्य ३३ तत्त्वाचार्य ३४ नृसिंहाचार्य ३५ सुआचार्य ३६ सुबुद्धाचार्य ३७ बुद्धाचार्य ३८ प्रबोधाचार्य ३६ असूयाचार्य ४० रुद्राचार्य ४१ भगवन्ताचार्य ४२ रामेश्वराचार्य ४३ ब्रह्मबिधिचर्याचार्य ४४ सुदया-चार्य ४५ लक्ष्मीनारायणाचार्य ४६ ज्ञानदेव ४७ नामदेव ४८ तिलोचनदेव ४९ श्रीविष्णुस्वामी ५० लक्ष्मणभट्ट।

कथा वल्लभाचार्यजी की ॥

वल्लभाचार्य परम भागवत व प्रेमी व संप्रदाय के आचार्य संसारसमुद्र से पार उतारनेवाले हुये, अपने स्थान जन्मभूमि को छोड़कर प्रथम गोकुल में और फिर वृन्दावन में आय भगवत् आराधन करने लगे। भगवत् से यह मनोरथ किया कि वात्सल्यनिष्ठा की रीति संसार में फैले, इस हेतु गोकुल में निवास करके भगवत्सेवा पूजा की ऐसी रीति व पद्धति वात्सल्यनिष्ठा की बांधी कि वर्णन उस भाव का नहीं होसकता। स्वप्न में भगवत् ने आज्ञा विवाह कर लेने की दी, हेतु यह है कि जो कोई भक्त जिस दृढ़ भाव से भगवत् आराधन करता है तो भगवत् उसके हृदय में सिद्धपद को पहुँचजाने पर प्रेमभक्ति के साक्षात् उसी भाव से दर्शन देते हैं, सो भगवत् ने एक ब्राह्मण को प्रेरणा करके लड़की उसकी भेंट करायदी, विवाह हुआ कुछ दिन पीछे विट्ठलनाथ महाराज ने जन्म लिया कि वात्सल्यनिष्ठा के भक्तों में उनकी कथा लिखी जायगी। उनके सात पुत्र हुये व सब पुत्रों के नाम से सात गद्दी अबतक गोकुल में विराजमान हैं। कोई गद्दी में सातबार कोई गद्दी में नवबार सेवाकी रीति है। श्रीराधिका महारानी को स्वकीयाभाव से भगवत्प्रिया जानकर आराधन करते हैं परन्तु पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण महाराज को मानते हैं। इस संप्रदाय के अलौ-किक भाव की कथा कुछ कही नहीं जाती जो बाबा नन्द और यशोदा महारानी लाड़ लड़ाते होंगे उसी प्रकार गोसाईं गोकुल का भाव है। आंगन से घर को बहुत ऊँचा नहीं रखते इसी विचार से कि ऐसा न हो कि लड़का घुटुवन चलते गिर पड़े शयन के समय ऊँचे शब्द से नहीं बोलते इसहेतु कि प्रेमसुकुमार लड़का कच्चीनींद से न जाग पड़े। ऐसे ऐसे सहस्रों अलौकिक भाव हैं और यहांतक पक्व और दृढ़ भाव अपनी निष्ठा में है कि जिस समय भगवत् शयन करते हैं अथवा बेसमय कोई मनुष्य सम्पूर्ण संसार का धन चढ़ाने वाला आजावे तो क्या बात कि मन्दिर खोलें, बरु जयपुर के राजा इस बात की परीक्षा भी ले चुके हैं और अब तक वही भाव व रीति वर्तमान है। किसी गद्दी में पचास हजार किसी में तीस हजार चालीस हजार रुपैया साल की आमदनी है, सब भगवत् आराधन और सजावट शोभा व सामग्री बाल स्वरूप व रागभोग

इत्यादिक में उठाय देते हैं, इस पर ऋणी रहते हैं यह गोसाईं गोकुलस्थ पदवी से विख्यात हैं। जैसा उत्तम भाव इन गोकुलस्थ गोसाईंयों का देखा और सुना सो लिखने में नहीं आ सकता और उनके चेलों को जैसी भावभक्ति गोसाईंयों में है वह भी वर्णन नहीं हो सकती। मारवाड़ और गुजरात में सेवक इस संप्रदाय के बहुत हैं, वल्लभाचार्य के कुल में बहुत लोग भक्त पहुँचे हुये और सिद्ध हुये और जो उनकी कृपा के अवलम्बन से भगवत्परायण हुये उनकी गिनती कौन कर सकता है और वल्लभाचार्य स्वामी के भाव को ध्यान करके देखना चाहिये। अपना नाम भी अपने भाव के अनुकूल विख्यात किया यह कि वल्लभ गोपजाति को कहते हैं जिस जाति में बाबा नन्दरायजी रहे सो अपने कुलको वल्लभकुल अर्थात् गोपकुल विख्यात किया। एक समय एक साधु व्रज में आया बटुआ शालग्राम का छोड़कर वृक्ष की डाल पर झुलाकर वल्लभाचार्यजी के दर्शनों को गया जब आया तब बटुआ न मिला तब आचार्यजी के आगे वृत्तान्त कहा तब उन्होंने आज्ञा की कि तुम कैसे सेवक हो स्वामी को छोड़कर इधर उधर फिरते हो। साधु ने विनय करके फिर आकर जो देखा तो सैकड़ों बटुआ एक भांतिके उस वृक्ष पर देखे, फिर आचार्यजी से जाकर वृत्तान्त निवेदन किया, आपने आज्ञा करी कि तुम कैसे सेवक जो अपने स्वामी को नहीं पहिचान सकते हो। साधु चुप रह अन्तःकरण का अभिप्राय वल्लभाचार्यजी का समझकर चरणों में पड़ा और अपना बटुआ शालग्रामजी का लेकर भगवत् आराधन में लगा। अभिप्राय यह कि उपासक को चाहिए कि जैसे मूर्ख को अपने शरीर में प्रीति और अहंकार होताहै वैसे ही भगवत् में निष्ठा व प्रीति रखे। यह नहीं कि स्वामी डार में आप बाजार में। अब वल्लभाचार्यजी की गुरुपरम्परा लिखी जाती है परन्तु सातगद्दी में कई गद्दी पुत्र के न होने से पुत्री के वंशके पास हैं दो तीन गद्दी निज बिट्ठलनाथजी के वंश के पास हैं समझकर उन में से एक गद्दी की परम्परा लिखना बहुत है सो लिखी जाती है। विष्णु स्वामी। लक्ष्मणभट्ट। वल्लभाचार्य। विट्ठलनाथ। गोकुलनाथ। रघुनाथ। यदुनाथ। घनश्याम। बालकृष्ण। गोबिन्दस्वरूप। गिरिधरराय। वृन्दावनदास। कृष्णदास। दामोदरदास। स्वामीशुकदेव। स्वामी हरिचरण स्वामी तुलसीदास। हरिशरणजीव। मोहनदास। सीताराम। मनसाराम आदि विद्यमान हैं।

कथा माधवाचार्य की ॥

माधवाचार्य स्वामी ब्रह्मसंप्रदाय में परम भागवत व भक्त आचार्य व प्रवृत्ति करनेवाले इस संप्रदाय के हुए, यद्यपि संप्रदाय प्राचीन है परन्तु माधवाचार्य स्वामी ने सम्पूर्ण संसार में प्रकाशित की। माधवी संप्रदाय करके विख्यात इसी हेतु हुई, ब्रह्मसंप्रदाय इस हेतु से कहते हैं कि प्रथम भगवत् ने इस संप्रदाय की रीति ब्रह्माजी से वर्णन की। ब्रह्माजी ने गुरु चेले की परम्परा करके जो भक्तलोग परम्परा में लिखे गये हैं तिनको उपदेश करके प्रवृत्त किया और कोई-कोई गौड़िये और

कोई महाप्रभु संप्रदाय वर्णन करते रहैं तिसका हेतु यह है कि श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभु गौड़देश के रहनेवाले इस संप्रदाय में आचार्य और भक्तनामी भगवत् अवतार हुए। सम्पूर्ण गौड़ बंगाले देश को शिक्षा करके भगवत् सम्मुख किया इस हेतु महाप्रभु गौड़िये नाम से भी विख्यात हुए। उड़पीमाधवा करके भगवत् माधवाचार्यजी ब्राह्मणवेश द्राविड़देश में उड़पी कृष्णगांव कांचीपुरी से पश्चिम दक्षिण कोने पर है तहां हुए शारीरकसूत्र और गीताजी पर भाष्यरचना किया, निश्चय इस उपासनावालों का यह है कि ईश्वर तटस्थ है उसकी प्रेरणा से माया जगत् को रचती है और यद्यपि इस निष्ठा में ध्यान और आराधन विष्णुनारायण का प्राचीन रीति से है परन्तु अब वह माधवाचार्य महाराज के समय से उपासना श्रीकृष्ण अवतार की इस संप्रदाय में वर्तमान हैं और ईश्वर पूर्ण सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण स्वामी गोलोकनिवासी को मानते हैं और माधुर्यनिष्ठा से कि उसका वर्णन उन्नीसवीं निष्ठा में होगा ध्यान और चिन्तवन करते हैं। यद्यपि माधुर्य-निष्ठा में युगल स्वरूप का ध्यान और चिन्तवन योग है और युगल स्वरूप ही का आराधन वा सेवा इस संप्रदाय में प्रवर्तमान है और राधिका महारानी में परकीया भाव रखते हैं परन्तु ईश्वरता और अद्वैतता और पूर्णब्रह्मता श्रीकृष्णस्वामी में चिन्तवन करते हैं कि उनके भाष्य और दूसरे ग्रन्थों से वह बात प्रकाशित है। इस संप्रदाय में लाखों भक्त और सिद्ध नामी होगये और होते हैं और आवागमन के दुःख को दूर करने के निमित्त भगवत् ने एक उपाय ऐसा विचार के किया है कि बिना परिश्रम इस संप्रदाय के अवलम्ब से करोड़ों महाअधम भगवत् को प्राप्त होते हैं। यद्यपि दक्षिणदेश में प्रकाश इस उपासना का बहुत है, गुरुद्वारे बड़े २ वहां हैं परन्तु इस समय व्रज में और बंगाले में भी यह संप्रदाय विशेष प्रकाशित है और वृन्दावन में कई गुरुद्वारे विख्यात व प्रसिद्ध हैं, जैसे मन्दिर गोविन्ददेव और मदनमोहन वा शृंगारवट इत्यादि हैं कि जिनका प्रभाव प्रसिद्ध है। जिनको भगवत् के दर्शन और दीक्षा लेनेका विचार होता है वह वहां दीक्षा लेता है। परीक्षा माधवाचार्य स्वामी की लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं इतनीही बहुत है कि जिनका नाम लेकर और उनकी पद्धति सिद्धान्त के अभ्यास से करोड़ों महापापी भगवद्भक्त होकर अपने वाञ्छितपद को पहुँचे, अब उनके घर की गुरुपरम्परा गुरु चेले की रीति की एक दो गुरुद्वारे की लिखी जाती है। इस संप्रदाय में सहस्रों गुरुद्वारे हैं सबकी परम्परा मिलना और लिखना कठिन है, एक लिपि से श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चेले स्वरूप दामोदर और उनके चेले गदाधर भट्ट और उनके चेले कृष्ण ब्रह्मचारी जाने जाते हैं। यह थोड़ा विरुद्ध है सो कुछ बात नहीं परम्परा में भक्तमाल के अनुसार जो निश्चय समझने में आया सो लिखा। श्रीनारायण। ब्रह्मा। नारद। वेदव्यास। सुबुद्धाचार्य। नरहराचार्य। माधवाचार्य। जाह्नवीतीर्थ।

विद्यामुनि । महानन्दतीर्थ । राजेन्द्रमुनि । जयधर्म मुनि । ईश्वरपुरी । वेणीमाधवपुरी ।

कथा नित्यानन्द जी की ॥

नित्यानन्दजी महाराज ऐसे परमभक्त और भगवद्धर्मप्रचारक हुए जिनकी महिमा और प्रताप सम्पूर्ण संसार में विख्यात है जिन्होंने गौड़देश बङ्गाले में पाखण्ड और अधर्म को दूर करके भगवद्भक्ति और उपासना का प्रचार चलाया। जन्म महाराज का नदियाशांतीपुर बङ्गाले देश में हुआ। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के भाई रहे। गौड़देश के लोगों को भागवतधर्म से विमुख देखकर दया आई। क्लिष्ट तप करके भगवत् को प्रसन्न किया, वरदान हुआ तब भगवद्भक्ति को सम्पूर्ण उस देश में नित्यानन्दजी ने गुरु और महन्तरूप होकर फैलाया। अब तक उस देश में इस प्रकार भक्ति का प्रचार है कि बहुत भगवत्परायण होते हैं व घर छोड़कर श्रीवृन्दावनवास करते हैं। जो भाव और प्रेम उस देश के रहनेवालों का श्रीवृन्दावन में देखा लिखा नहीं जा सकता। अब भी वृन्दावन में आधे वे ही लोग हैं भगवद्भजन और कीर्तन में रहते हैं।

कथा श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की ॥

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु नित्यानन्दजी के छोटे भाई श्रीकृष्ण महाराज के अंशावतार हुए। गीताजी में भगवत् का वचन है कि जब धर्म का नाश और अधर्म की प्रवृत्ति होती है, तब धर्म के स्थापन और अधर्म के नाश के हेतु मेरा अवतार होता है, सो गौड़देश बङ्गाले में भागवत धर्म व भगवद्भक्ति नहीं रही विपरीत धर्म प्रवृत्त हुआ रहा, इस हेतु भगवत् ने वेदमार्ग स्थित करने के लिये जैसे व्रज में अवतार लिया था उसीप्रकार बङ्गाले में शचीजी के उदरद्वारा प्रकाश किया। सातवर्ष के वयक्रम में केशवभट्ट काश्मीरी ब्राह्मण को वाद में क्षणमात्र में जीतकर कृपाकरके भगवद्भक्त करदिया कि स्पष्ट वृत्तान्त केशव की माधुर्यनिष्ठा में लिखा जायगा एक समय महाप्रभु जगन्नाथरायस्वामी के आगे कीर्त्तन में ऐसे बेसुध प्रेम में होके तन्मय होके चतुर्भुजीरूप हो गये तब सब लोग कहने लगे कि इस पुरी का प्रभाव है सिद्धता क्या है, तब महाप्रभु ने अनुजाई व सेवक आदि के विश्वास व भक्ति के दृढ़ता के हेतु छः भुजा धारण कीं अब सबको दृढ़ विश्वास हुआ सो पुरी में महाप्रभु के छः भुजा स्वरूप के अद्यापि दर्शन होते हैं।

कथा रूप सनातनजी की ॥

रूप और सनातनजी दोनों सगे भाई प्रेमभक्ति व भागवतधर्मप्रचारक हुए। ये दोनों भाई गौड़देश बङ्गाले के रहनेवाले और बादशाही अधिकार वाले रहे, धनवान् बड़े रहे। एक रात रुपैया गिनते गिनते प्रभात होगया तब दोनों भाइयों को ग्लानि आई व आपस में विचार किया कि देखो जो भगवद्भजन व समाज में बैठते तो घड़ी २ बूझते रहते कि कितनी रात गई, इस व्यर्थ झूठे कार्य में कुछ ज्ञान न रहा

कि कितनी रात गई यह विचारकर अपने गुरु नित्यानन्द महाप्रभु के पास आकर शिक्षा माँगी गुरु ने आज्ञादी कि व्रजभूमि में जाव वहाँ के वन और स्थान सब श्रीकृष्णस्वामी के विहार के जो काल पायके गुप्त होरहे हैं तिनको प्रकट करो और ग्रन्थचरित्र व लीला माधुर्य व रसविलास को फैलावो। उसी आज्ञा के अनुसार दोनों भाई आकर व्रजभूमि में पहुँचे। पहुँचते ही आपसे आप रम्यता उस भूमि की कियो, पवनसुखदाई व हरियाली आकर्षण करने वालों में रूपमाधुरी में श्रीप्रियाप्रियतम के उन्मत्त व बेसुध होगये और ऐसी गन्ध प्रेम प्रिया-प्रियतममहाराजकी प्राण के मस्तक में पहुँची कि दुःख सुख सबभूलके प्रेम आनन्द में मग्न होगये। जब सुध हुई तब व्रजगांव के लोगों से पूछा की व्रज कहां है ? एकने उत्तर दिया कि तेरा बाप अन्धा होगया है, यह व्रज नहीं और क्या है ? गोसाईं महाराज इस गाली से बड़े आनन्दित हुए, प्रेम आनन्द में छके हुए पहले श्रीमथुराजी फिर वृन्दावन में पहुँचे। देखा कि श्रीयमुनाजी प्रवाहवान हैं, वन सघन हरित ऐसा छाय रहा है कि सूर्य का उदय अस्त नहीं दिखाई देता बहुत ढूँढ़ने से दुइचार घरों की बस्ती मिली और रहनेवाले वहांके वृन्दादेवी की पूजा करनेको गये हैं। तब वहाँ से वृन्दादेवी को ढूँढ़ते चले, देखा कि वे लोग एक जगह भूमि पर दूध दही चढ़ाकर चले गये, उसी जगह टिके। रात को वृन्दादेवी ने दर्शन दिया कहा कि हमारा स्वरूप इसीजगह है निकालकर स्थापित करो। गोसाईंजीने स्थापित किया अबतक विराजमान है। गऊ बच्चा देती है तब पहले उनको दूध चढ़ाते हैं और गोविन्ददेवजी ने गोसाईं रूपजी को स्वप्न दिया तब गोसाईंजी ने उनको निकालकर स्थापित किया और पूजा करने के निमित्त अपने भतीजे जीवगोसाईं को की वे भी त्याग लेकर आय गये रहे आज्ञा दी। फिर पीछे राजा मानसिंह आमेर से राजमन्दिर बनवाया, उन्हीं दिनों अकबराबाद का किला बनता था पत्थर लाल कहीं नहीं जाने पाता रहा। राजाने बादशाह से आज्ञा लेकर मन्दिर लालसङ्गीन निर्मित किया। तेरहलाख रुपया केवल मसाले मँजूरी में लगा, अब तक वह मन्दिर वृन्दावन में प्रकट व विख्यात है और मुहम्मदशाह बादशाहके समय में राजा जयसिंह ने वाराहपुराण में सुना कि गोविन्ददेवके दर्शन करने से जीव का आवागमन छूटजाता है। बड़ी प्रीति व प्रार्थना से वह मूर्ति जयपुर लेगया वहां विराजमान है। वृन्दावन में दूसरी मूर्ति स्थापित हुई व गोसाईं रूपजी ने गुरु की आज्ञा व शिवजी के स्वप्न देने से बहुत ग्रन्थ भक्तिरसामृत के रस सिद्धान्त व भगवत् अमृत इत्यादि सब पांच लाख श्लोक में रचना किये। एक श्लोक में प्रियाजी की वेणी की उपमा लिखी की नागिनी के सदृश है। गोसाईं सनातनजी का यह विचार हुआ कि रूपजी की काव्य अधिक-मधुर है परन्तु प्रियाप्रियतम का भाव अच्छे प्रकार नहीं समझा, क्रूर जन्तुकी उपमा वेणीकी दी कि वे परमसुकुमारी चित्र के साँप को भी देखते भय करती हैं,

यही ध्यानपर खटकता रहा। एक दिन वनमें घूमते देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक लड़का परमसुन्दर व कई एक लड़कियाँ परम सुन्दरी तिसमें एक लड़की ऐसी सुन्दरी की कभी ऐसी सुन्दरी न देखी रही हिंडोरा झूलते हैं। यह लड़की परमसुन्दरी चुनरी ओढ़े है तिसमें वेणी श्याम नागिनीसी ऐसी लहलहाती है कि नागिनी में और उसमें तनक भेद नहीं। गोसाईं सनातनजी देखके घबराय पुकार मार मारकर कहा कि कोई दौड़कर नागिनी को इस सुन्दरी के शिरपर से उतारो, यह कहके बेसुध होगये जब सावधान भये तब श्लोक रूपगोसाईंजी का स्मरण हुआ और जाना कि लाड़िलीजी ने उस श्लोक के भाव के सन्देह दूरकरने के कारण यह चरित्र किया है। रूपजी के पास आये परिक्रमा करके सब बात कही, देखिये गोसाईं सनातनजी बड़े भाई रूपगोसाईंजी के थे परन्तु भक्ति में उनको बड़ा जानकर दण्डवत और परिक्रमा करी। गोसाईंरूपजी मोटे रहे और गोसाईं सनातनजी सुकुमार और नित्य परिक्रमा व्रज की किया करते थे। एकदिन परिक्रमा करे पीछे जो रूपगोसाईं के पास आये तो रूपगोसाईं को यह ध्यान चित्त पर आया कि सनातनजी अपने घर पर ऐसे पदार्थ भोजन दिव्य व मधुर खाते रहे कि सबको नहीं मिल सकता, अब सूखी रोटी मधुकरी वृत्ति से कैसे तृप्त होते होंगे ? यह ध्यान ही था कि श्रीलाड़िलीजी दूध व चावल व और सब सामग्रीसमेत व्रजवासी की लड़की का स्वरूप धरके ले आईं व अतिकोमल वचन से बोलीं कि हमारी गाय ने आज बच्चा जना है, मेरी माँ ने यह सामग्री तुम्हारे लिये भेजी है। दोनों गोसाइयों ने उस सामग्री का भोजन बनाकर भोग लगाया, वह स्वाद पाया कि कभी अपनी अवस्था भर में किसी वस्तु में न प्राप्त हुआ रहा। सनातनजी ने रूपजी से इसका कारण पूछा तब उन्होंने मन की सब बात कही, तब सनातनजी ने कहा कि सब ऐश्वर्य व सम्पत्ति के त्याग देने पर भी जिह्वा का स्वाद रह गया कि जिसके हेतु लाड़लीजी को परिश्रम हुआ, अब आगे को चेतरहे। एक दिन वृंदावन में समाज हुआ, सब भगवद्भक्त व साधु इकट्ठे हुये, ऐसे प्रेम व अनुराग के साथ कीर्तन व भजन हुआ कि जितने लोग रहे सो सब प्रिया-प्रियतम के प्रेममें छक के बेसुध होगये, परन्तु रूपजी गोसाईं अपने चित्त को दृढ़ करके खड़े रहे। गोसाईं करनपुरीजी ने देखा कि रूपजी महाराज सब प्रेमियों के अग्रणीय हैं, उनको जो प्रेम भगवत् का न आया तो औरों के निमित्त अच्छा नहीं। रूपजी के पास गये, समीप पहुँचे तो उनके श्वास की ऐसी तप्त पवन गोसाईं करनपुरी के शरीर में लगी कि फफोले उपटआये। गोसाईं रूपजी ने आज्ञा की कि जिनको कुछ शरीर का सम्बन्ध रहगया है असावधानता उनको है और जिन लोगों को शरीर से सम्बन्ध नहीं है उनका मन देखना चाहिये, शरीर नहीं, यहांतक कथा रूपगोसाईं की लिखीगई। सनातनजी सिवाय कमण्डलु कोपीन के और कुछ नहीं अपने पास रखते ; रहे विच-

रते हुये एक भाट के घर पहुँचे, उसके घर में स्वरूप मदनमोहनजी का विराजमान रहा, सनातनजी दर्शन करके आसक्त हो गये और नित्य उसके घर पर जाया करते और आंखों से आंसू का जल बहा करता। उस भाट ने कि पहले साहूकारी करता रहा अब दरिद्री होगया रहा समझा कि जैसा इस मूर्ति ने हमको दरिद्री व भिखारी किया क्या जाने इसको भी ऐसा ही भिखारी किया हो कि इस मूर्ति को देखकर रोया करता है। भाटने गोसाईंजी से पूछा कि महाराज क्या तुमको भी धन, सम्पत्ति, घरबार से इस मूर्ति ने बेचैन कर दिया है? गोसाईंजी विश्वास भाट का विचार के बोले कि भाई तेरे साथ इस मूर्ति ने कुछ भी नहीं किया जो मेरे साथ किया है। भाट ने कहा कि क्या उपाय करूँ ? गोसाईंजी ने कहा कि इस भगवान को शीघ्र अपने घर से बाहर निकाल नहीं तो न जाने अब क्या करै ? उसने कहा कि जो यह ऐसा क्रूरस्वभाव है तो कौन लेवेगा ? गोसाईंजी ने कहा कि मेरे साथ जो कुछ इसको करना रहा सो कर चुका, मैं ले जाऊँगा। सो ले आये और वृन्दावन में विराजमान करके पूजा सेवा प्रारम्भ किया, भिक्षा माँग के भगवत् को भोग लगाया करते। एक दिन भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा दी कि थोड़ासा लोन भी लाया करो जब लोन लाने लगे तब आज्ञा दी कि थोड़ासा घी भी लाया करो, तब घी भी भिक्षा मांगके लाया करें, तब बोले कि वन में से तरकारी ले आना सहज है वह भी लाया करो, तब सनातनजी ने प्रेमकी दृष्टि से ध्यान किया कि मदनमोहनजी चटोरे हो गये, मेरे वैराग्य को धूलमें लाकर मुझको भी चटोरा किया चाहते हैं। तब बिनती की कि जो ऐसाही स्वाद जीभ का है तो कोई धनाढय किंकर ढूंढ़ लीजिये और यह कहकर बाहर आय बैठे। संयोगवश किसी साहूकार की नाव माल भरी हुई अकबराबाद को जाती रही जब वृन्दावन में कालीदह के समीप पहुँची तो रुक गई साहूकार ने विकल होकर अपने आदमियों को चारों ओर भेजा कि देखो इस वन में कोई फकीर साधु है कि जिससे इसको निवेदन करें। आदमियों ने जाकर कहा एक साधु बैठा है, साहूकार आय के चरणों में पड़ा, गोसाईंजी ने उसको भगवत् के आगे ले जाकर कहा कि जो कुछ करतूत है इस बाबा की है, विनती करले साहूकार हाथ जोड़कर उसकी सेवा की आज्ञा की। आज्ञाकर खड़ा हुआ भगवत् की आज्ञा हुई कि मन्दिर अच्छा सङ्गीन बनवादे व राग भोग के बन्धान करदे। साहूकारने अङ्गीकार किया व नाव रवाने हुई। साहूकार ने मन्दिर बड़ा भारी बड़ी भक्ति से निर्मित्त किया व राग भोग के निमित्त महीना बन्धान करदिया, जब सब सामग्री भगवत्सेवा की जुटगई तब सनातन जी वहाँ का अधिकार कृष्णदास ब्रह्मचारी को देकर आप व्रजमण्डल की परिक्रमा को चले गये। एकबेर मानसरोवर के तटपर नन्दगाँव के समीप एक हींस के वृक्ष के नीचे तीन दिन बैठे रहगये, चौथे दिन भगवत् सुन्दर मनोहर स्वरूप एक व्रजवासी के लड़के का स्वाँग धर लालचीरा

शिरपर महीन पीताम्बरी पहिने कटि पीतपट से कसे एक रङ्गीन छड़ी कुक्षि में दबाये हुए थाली दूधभात की लेकर आये। गोसाईंजी को दी व कहा किस हेतु गाँव के समीप जायके नहीं बैठता? यहाँ वन में कौन तेरे निमित्त खाने को लाया करे? भगवत् ने हाथ पाँव दिये हैं बिना सुकृतका माल खाना अच्छा नहीं। गोसाईंजी इन बातोंको सुनकर परम आनन्द में मग्न होगये। इसी प्रकार तीन दिन भोजन व्रजचन्दमहाराज पहुँचाते रहे, तब गोसाईंजी अपने प्यारे को श्रम देना उचित न समझकर पता नाम गाँव का पूछकर दूसरे दिन बहुत ढूँढ़ा, कहीं पता न लगा तब बहुत विकल हुए और अनेक भाँति शोच करने लगे तब स्वप्न हुआ कि वह लड़का हमहीं हैं, जैसी तुम्हारी इच्छा होय हम करें तब गोसाईंजी ने विनय किया और उस स्वरूप अनूप के ध्यानरूपी आनन्द के समुद्र में मग्न होगये।

कथा गोसाईं नारायणभट्ट की ॥

गोसाईं नारायणभट्ट प्रेमी भक्त भागवतधर्म के प्रवृत्त करनेवाले हुये और ये गोसाईंजी चेले कृष्णदास ब्रह्मचारी चेले सनातनजी पुजारी ठाकुरद्वारे मदनमोहन के सेवक हुए। गुरु से कथा श्रीभागवत दशमस्कन्ध बालचरित्र इत्यादिक जो सुनी, सखन के संग खेल व गोपियों के संग रासविलास सब गोसाईंजी के हृदय में समायगई, तब यह अभिलाष हुआ कि वह सब स्थान जहाँ २ जो क्रीड़ा किया है दर्शन करते सो उनका पता मिल न सका क्योंकि पाँच हजार वर्ष भगवत् अवतार को व्यतीत हुए। गोसाईंजी परमभाव से आराधन भगवत् में लीन हुए, भगवत् ने अपने भक्त का मनोरथ पूर्ण करने को हृदय में प्रकाश किया व सब स्थान वाराहसंहिता में जैसे लिखे हैं सब दिखलाय दिये। उसी अनुसार नारायण भट्टजी ने वन व उपवन व गृह व कुञ्ज व विहार स्थान प्रकट किये सो सबका वर्णन कौनसे होसकता है परन्तु मुख्य २ स्थानों को लिखते हैं।

वर्णन स्थानों का गोकुल व महावन का ॥

रोहिणी मन्दिर व श्याममन्दिर कि जहाँ जन्म भगवत् का हुआ किला महावन में विख्यात है।

ब्रह्मघाट जहां नन्दनन्दन महाराज ने माटी खाई व अपनी माता यशोदाजी को अपने मुख में सब लोक दिखलाये।

पूतनाखार जहां पूतना का प्राण दूध के बहाने खींच लिया।

घाट सब जैसे वैराग्यघाट रामघाट व अक्रूरघाट व वैकुण्ठघाट व बङ्गालीघाट व सूर्यघाट इत्यादि विवरण स्थान सब श्रीवृन्दावन के।

मन्दिर श्रीगोविन्ददेवजी व गोपीनाथजी व मदनमोहनजी व राधावल्लभजी व बाँकेविहारी व अटलविहारीजी व चौरासीखंभा व आठखंभा दही बिलोवने यशोदाजी का स्थान।

रमनरेती जहां नन्दनन्दन महाराज ने अपने सखनसंग भाँति २ की लीला करी।

यमलार्जुनवृक्ष ऊखल से अटकाय के नन्दनन्दन महाराज ने गिराये।

दर्शन सातगद्दी गोकुलस्थगोसाईं लोगों की जिनका वर्णन वल्लभचार्य की कथा में हुआ।

रानीघाट व यशोदाघाट व वल्लभाघाट इत्यादिक मन्दिर केशवदेव जी जहां चतुर्भुजरूप होकर प्रकट हुए। रङ्गभूमि जहां कंस को मारा।

कंसखार जहां कंस को मारकर डाला।

दर्शन ठाकुर वाराहजी ॥

क्षेत्रादिक इधर उधर जेह मथुरा देवी, भूतेश्वर महादेव, सप्तर्षिदेवी, बलिटीवा, दशाश्वमेध, चक्रतीर्थ, ध्रुव क्षेत्र, सरस्वतीकुण्ड, योगमार्ग।

गोपकूप कि सोमवती अमावस के दिन किनारे तक जल होकर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है।

दर्शन नन्दबाबा व यशोदा माता विवरणस्थान सब मथुराजी-विश्रान्त जहां कंस को मारकर विश्राम किया।

सात समुद्र कूप ॥

दर्शन द्वारकाधीश कि जो अब पारखनामे साहूकार ने बनवाया रावणकुटी, छाकबिहारी, कृष्णगंगा, कण्ठाभरण।

ऊपर किनारे श्रीयमुनाजी कालीदहघाट व विष्णुघाट व लुकलुक व विहारघाट व चीरघाट व केशीघाट व सूर्यघाट इत्यादिक घाट बहुत हैं रसिकविहारीजी व राधारमणजी व शृङ्गारवट व छैलचिकनियाँजी विख्यात हैं और दो मन्दिर नये भारी हैं।

भारी एक कृष्णचन्द्र माजी का लाला बाबू बङ्गाली, दूसरा रंगनाथ जी का राधाकृष्ण भाई लक्ष्मीचन्द्र साहूकार ने बनवाया, अधिक इससे सहस्रों दूसरे हैं निधिवन व सेवाकुञ्ज ये भगवत् के लीला और विहार के कुञ्ज हैं और जो राजों ने व अमीरों ने व साहूकार इत्यादिकों ने कुञ्ज व मन्दिर बनवाये सो अलग हैं।

ब्रह्मकुण्ड व गोविंदकुण्ड व वेणुकूप इत्यादि के सैंकड़ों कूप हैं।

धीर समीर व वंशीवट व ज्ञानगूदरी व मौनीदासजी की टट्टी व दूसरे स्थान सब साधुलोग इत्यादिकों के निवासस्थल विख्यात हैं।

राधाबाग व मधुवन व देवीसिंह वाला बाग और दूसरे बाग जहां सब हरियाली छाई सघन दर्शन योग्य विराजमान हैं।

विवरण उन स्थान इत्यादिका कि वनयात्रा के समय जिनके दर्शन होते हैं और यह जानिये कि वन यात्रा करनेवाले भादोंबदी छठि तक मथुराजी में पहुँच जाते हैं जिनको जन्माष्टमी वृन्दावन में करनी अंगीकार होती है वे मथुरा के घाटों का स्नान व दर्शन करके वृन्दावन को चलेजाते हैं और जिनको गोकुल में जन्माष्टमी करनी स्वीकार होती है वे गोकुल में और कोई २ मथुरा में टिक रहते हैं वे लोग जन्माष्टमी करके दशमी के दिन सांझतक मथुराजी में आके नहाते हैं और एकादशी से यात्रा आरम्भ होती है। पन्द्रह दिन में सम्पूर्ण यात्रा परिक्रमा व्रज-मण्डल चौरासी

कोस की करके भादों सुदी दशमी अथवा एकादशी तक मथुराजी में आजाते हैं और द्वादशी के दिन मथुराजी की परिक्रमा होती है। दूसरीयात्रा बल्लभाचार्य के कुलवालों की तात्पर्य गोकुलस्थ गोसाइयों की होती है परन्तु प्रतिवर्ष का नियम नहीं। ये गोसाईं आश्विनबदी द्वितीया को यात्रा के निमित्त उठते हैं, दीपमालिका जो दीवाली सो गोवर्द्धनजी में करके कार्त्तिकसुदी द्वितीया को मथुराजी के मेलों में आ मिलते हैं। यह यात्रा बड़े सुख व आनन्द से होती है व बहुत लोग उनके अनुयायी उस यात्रा में मिलके जाते हैं अब विवरण टिकान्त व स्थान दर्शन यात्रा पन्द्रहदिन वाले की लिखी जाती है।

पहले दिन ॥

प्रातःकाल विश्रान्तघाट स्नान करके यात्रा के निमित्त पांय पियादे नङ्गेपांयन उठते हैं और भगवद्भजन का नेम उचित है पहली मंजिल में दर्शन व यात्रा मधुवन व तालवन व कुमुदवन की होजाती है, कल्याणनारायण व यशोदानन्दन व कपिलमुनि व गिरिधररायजी के होते हैं व शान्तनुकुण्ड के स्नान।

दूसरे दिन ॥

बहुलावन में टिकान्त होता है और वहाँ दर्शन ठाकुरद्वारे मोहनलालजी के हैं।

तीसरे दिन ॥

गोवर्द्धनजी में पहुँचते हैं।

चौथे दिन ॥

वहां टिकान्त होता है गिरिराजजी की परिक्रमा होती है। हरदेवजी व नाथजी विराजमान हैं, एक मन्दिर व गुरुद्वारा श्रीसंप्रदायवालों का भी है। मानसीगङ्गा व संकर्षणकुण्ड व अप्सराकुण्ड व पुछण्डीकुण्ड व रासौली व गांठौली व गुलालकुण्ड व हरजीकुण्ड व रुद्रकुण्ड व विजयनाम सरोवर व राधाकुण्ड व कृष्णकुण्ड व कुसुम-सरोवर व नारदकुण्ड व ऐरावतकुण्ड व सुरभीकुण्ड और दूसरा सरोवरकुण्ड और भरतपुर के राजालोगों के बनाये हुये स्थान दर्शन व स्नान होते हैं। दीपमालिका को गोवर्द्धनजी में मेला बड़ाभारी होता है व दीपदान ऐसा कहीं नहीं होता है व कार्त्तिकसुदी प्रतिपदा को अन्नकूट व पूजा गिरिराज की उत्साहपूर्वक धूमधाम से होती है।

पांचवें दिन ॥

इस समय डीघ में टिकान्त होता है वहां बहुत बड़े २ स्थान राजा भरतपुरके हैं अगिले समय में वहां टिकान्त नहीं होता रहा।

छठवें दिन ॥

कामा में पहुँचते हैं वहां दर्शन ठाकुरगोकुलचन्द्र व विजयगोविन्द व गोपी-नाथजी व वृन्दादेवी व राधावल्लभ व सीतारामजी के होते हैं व भोजनथाली व घिसिनीशिला परिक्रमा में आते हैं सातवें दिनतक रहकर।

आठवें दिन ।।

बरसाने में जो जन्मभूमि श्रीलाड़िली जीकी है वहाँ पहुँचतेही श्रीलाड़िलीजी का मन्दिर बहुत ऊंचा व भारी पहाड़ के ऊपर है व बाबा वृषभानु व कीर्तिजी व श्रीदामाजी के दर्शन होते हैं और दानगढ़ जहाँ दानलीला हुई और मानगढ़ जहां बृषभानुकिशोरी ने नन्दकिशोर से मान किया व विलासगढ़ जहां प्रियाप्रियतम ने विहार व विलास किया व मोरकुटी जहां मोर की नाईं बोल के लाड़िलीजी को बुलाया व सांकरी खोर जहां अकेली देख नन्दकिशोर ने लाड़िलीजी को पकड़लिया और जो चाहा सो किया और गह्वरवन जो वह भी विहारस्थान है और दूसरे स्थान व मन्दिरों के दर्शन होते हैं व भानुसरोवर व श्रीपोखर व प्रेमसरोवर इत्यादि कुण्ड व लाड़िलीजी के झूलने और खेलने के ठौर सब हैं और ऊंचागांव जो जन्मभूमि गोसाईं नारायणभट्टजीकी कि जिनकी कथा में यह सब वृत्तान्त लिखाजाता है बरसाने के समीप है और एक मन्दिर में बलदेवजी का भी दर्शन होता है और देहकुण्ड व त्रिवेणी वहां हैं।

नवें दिन ।।

नन्दग्राम बाबानन्दजी के स्थान में पहुँचते हैं वहाँ बाबानन्दजी व यशोदा माताजी व यशोदानन्दन व बलदेवजी व विहारी विहारन के मन्दिर व मानसरोवर व ललिताकुण्ड व विशाखाकुण्ड व यशोदाकुण्ड व मधुसूदनकुण्ड व मोतीकुण्ड व कृष्णकुण्ड व कदमखण्डी इत्यादिक तीर्थ हैं व मथानी कि जहां यशोदा महारानी ने दूध बिलोया व हाऊ कि जहां नन्दनन्दन को हाऊ कहकर डरपाया वहां है, जावकवट कि जहां लाड़िलीजी के चरणों में जावक लगाया, कोकिलावन कि जहां कोकिला की भांति बोलके लाड़िलीजी को बुलाया, रासौली कि जहां रास किया बठेन कि जहां लाड़िलीजी की वेणी गूंथी व रङ्गमहल व संकेतविहारी ठाकुर व संकेतदेवी विराजमान हैं।

दशवें दिन ।।

शेषशायी में पहुँचते हैं वहां शेषशायी महाराज विराजमान हैं। इस हेतु करके उस गांवको भी शेषशायी कहते हैं। विष्णुनारायण का मन्दिर व क्षीरसमुद्र तीर्थ हैं व मार्ग में कदमखण्डी व क्षीरवन दर्शन होते हैं। यहां से बहुतलोग राधाष्टमी करने के हेतु बरसाने को चले जाते हैं और कोई बृन्दावन को चलेआते हैं और लोग व्रजमण्डल की परिक्रमा पूरी करने को यमुनापार उतरते हैं।

ग्यारहवें दिन ।।

शेरगढ़ होकर चीरघाट जहां कात्यायनी देवी के दर्शन होते हैं। शेरगढ़ में दो मन्दिर हैं व चीरघाट के थोड़ी दूर नन्दघाट है तहां उतरके भद्रवन व भाण्डीरवन व बेलवन की यात्रा होती है।

बारहवें दिन ॥

माटवन में विश्राम होता है, भगवत्मन्दिर वहां है परन्तु प्राचीन व विख्यात मन्दिर कोई नहीं है।

तेरहवें दिन ॥

लोहवन में टिकान्त होती है व पक्ष में नन्दीदेवी व बन्दीदेवीके दर्शन होते हैं।

चौदहवें दिन ॥

बलदेवजी में पहुँचते हैं व बलदेवजी महाराज के दर्शन होते हैं एक मन्दिर भगवत् का व दो तीर्थ भी वहां हैं।

पन्द्रहवें दिन ॥

मथुरा में पहुँचते हैं पन्थ में गोकुल व महावन के दर्शन होते हैं कि वहां के स्थानों व तीर्थों का विवरण पहले ही लिखचुके हैं जो सब लिख आये ऊपर तिससे अधिक वन व स्थान बहुत हैं सब यात्रा के समय पन्थ में नहीं पड़ते हैं।

जब सब स्थान व वन जो ऊपर लिखआये प्रकट होगये तब नारायणभट्टजीको यह अभिलाषा हुई कि जिस प्रकार व्रजचन्द महाराज ने इन स्थानों पर रास विलास व चरित्र किये वह सब प्रत्यक्ष व साक्षात् देखैं सो भगवत् ने उनको आज्ञा की कि वल्लभनामा नृत्यक बादशाही सेवा छोड़कर वृन्दावनवास करता है तुम और वह ब्राह्मणों के लड़कों को मेरा और गोपिकाओं का रूप बनाकर लीलानुकरण से मेरे चरित्रों का अवलोकन करो तब गोसाईंजी ने वल्लभनामा नर्तक को आज्ञा दी उसने एक ब्राह्मण बालक को श्रीव्रजचन्द का रूप एक को लाड़िलीजी का रूप और आठ लड़कों को ललिता विशाखा इत्यादि सखियों का रूप बनाकर सब साधना नृत्य गाने की सिखाई और जहाँ २ जो चरित्र और रास विलास भगवत् किये रहे सब चरित्र किये, मानो श्रीकृष्ण अवतार को नवीन कर दिया और अब तक वह रास-लीला की परम्परा वर्तमान है। जब यह सब उपकार जगत् के वास्ते प्रकट कर दिया तब इच्छा परमधाम गोलोक की किया और अपने सेवकन से आज्ञा किया कि हमारा शरीर त्रिवेणी पर ले जाना। सबने पूछा त्रिवेणी कहां हैं ? बतलाया कि ऊंचागांव में बरसाने के निकट त्रिवेणी हैं। गोसाईंजी ने एक यह भी तीर्थ प्रकट किया और अब तक गोसाईंजी के वंश उस गांव में वर्तमान हैं। जब रास अथवा समाज होता है तब पहले उनके वंश को अधिष्ठाता व मुखिया समझकर सत्कार-पूर्वक आगे बैठालते हैं।

कथा निम्बार्कस्वामी की ॥

निम्बार्कस्वामीपरमभक्त ऋषीश्वर भागवतधर्मप्रचारक हुये। महाराष्ट्र ब्राह्मण मुंगेर में गोदावरी के निकट अरुण ऋषीश्वर की जयन्ती धर्मपत्नी के गर्भ से जन्म

हुआ। सनकादिक संप्रदाय जो विख्यात है उसके प्रवृत्त करनेवाले व आचार्य ये स्वामी हैं। यद्यपि परम्परा इस संप्रदाय की भगवत् के हंस अवतार से है, परन्तु इस संसार में निम्बार्कस्वामी से प्रकाशमान हुई, इस हेतु निम्बार्कस्वामी के नाम से विख्यात हुआ और हंसभगवान् ने प्रथम उपदेश सनकादि को किया रहा, इस हेतु सनकादि संप्रदाय कहते हैं। गुरुपरम्परा से वृत्तान्त गुरु व चेले शाखोपशाखा का ज्ञात होगा। यद्यपि सेवक लोग इस संप्रदाय के शारीरिक सूत्रों पर निम्बार्कभाष्य वर्णन करते हैं परन्तु इस देश में नहीं मिलता, तो स्तोत्र निज रचित स्वामीजी के हैं वे विशेष करके मिलते हैं। उन स्तोत्रों में रीति, उपासना और ईश्वर माया जीव का निर्धार और पद्धति उपासना की कथित है, व्याख्या उनकी विस्तार के सहित है कि स्पष्ट करके वृत्तान्त उपासना का उनसे ज्ञात होता है। उन स्तोत्रों में मुख्यतर दश श्लोकी स्तोत्र हैं उन स्तोत्रों के अनुसार तात्पर्य निश्चय इस संप्रदाय का यह सिद्धान्त समझने में आता है कि ईश्वर द्वैताद्वैत है, जैसे सर्प का कुण्डल सर्प से भिन्न नहीं और पानी तरङ्ग से भिन्न नहीं इसी प्रकार यह जगत् ईश्वर से भिन्न नहीं, परन्तु नाममात्र को भिन्न की भांति दिखाई देता है। वह ईश्वर एक पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण गोलोकनिवासी है और माधुर्य जो शृङ्गार की एक शाखा है और अच्छी प्रकार उसका वर्णन तो दशवीं निष्ठा में होगा उसी माधुर्य की रीति से ध्यान व चिन्तन करते हैं। यद्यपि इस उपासना में युगलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण का ध्यान और सेवा की रीति पुष्ट है परन्तु आदि आचार्य के बनाये हुये ग्रन्थों से पूर्णब्रह्मता श्रीकृष्ण स्वामी की और उनका ही ध्यान करना पाया जाता है, जैसे कि संक्षेप सिद्धान्त निम्बार्कस्वामी का यह है कि नहीं देख पड़ती। कोई गति बिना कृष्णचरणारविन्द के कैसे हैं वह चरण कि ब्रह्मा और शिव उनको दण्डवत् करते हैं और श्रीकृष्ण महाराज कैसे हैं कि भक्तों के अभिलाषा हेतु भांति २ के अवतार धारण करते हैं और मन व बुद्धि के तर्क में नहीं आसकते हैं, जिसकी मूर्ति और जिसका अवतार विचार में नहीं आसकता है, गूढ़ है, भेद जिसका एक जगह युगल ध्यान लिखा है और दूसरी जगह केवल श्रीकृष्णस्वामी का यह कुछ वास्तव करके विरोध नहीं यह विचार कर लेना चाहिये कि जब गोलोकनिवासी की उपासना दृढ़ ठहरती तो युगलस्वरूप का ध्यान व चिन्तवन आप से आप सूचित व उचित हुआ व तिलक आदिक का वृत्तान्त वेषनिष्ठा में लिखा जायगा व अलौकिक चमत्कार निम्बार्क स्वामी के बहुत हैं, परन्तु उनमें से एक चमत्कार वह लिखते हैं जिस कारण से निम्बार्क नाम विख्यात हुआ। एक समय एक संन्यासी स्वामी के स्थान पर उतरा उसका शिष्टाचार स्वामी ने किया परन्तु रसोई के सिद्ध करने में सन्ध्या हो गई। संन्यासी सन्ध्या भये पीछे भोजन स्वीकार न करे। स्वामीजी को दया आई तब आंगन में निम्ब का वृक्ष रहा उस पर

अर्क अर्थात् सूर्य को दिखा दिया कि संन्यासी ने सन्तुष्ट होकर भोजन किया जब भोजन कर उठा तब चार घड़ी रात बीती देखी, उस दिनसे नाम स्वामी का निम्बार्क करके विख्यात हुआ और कोई मुख्यनाम अर्क कहते हैं। नामी गुरुद्वारा एक स्थान अरुण दक्षिण देश में दूसरा स्थान सलेमाबाद है और तो हजारों स्थान हैं।

हंस भगवान् १	सनकादिक २	नारद ३	निम्बार्कस्वामी ४	श्रीनिवासाचार्य ५
विश्वाचार्य ६	पुरुषोत्तमाचार्य ७	श्रीविलासाचार्य ८	श्रीस्वरूपाचार्य ९	श्रीमाधवाचार्य १०
श्रीपद्माचार्य ११	श्रीश्यामाचार्य १२	बलभद्राचार्य १३	गोपालचार्य १४	कृपाचार्य १५
देवाचार्य १६	सुन्दरभट्ट १७	पद्मनाभभट्ट १८	उपेन्द्रभट्ट १९	चन्द्रभट्ट २०
वामनभट्ट २१	कृष्णभट्ट २२	पद्माकरभट्ट २३	श्रवणभट्ट २४	भूरिभट्ट २५
माधवभट्ट २६	श्यामभट्ट २७	गोपालभट्ट २८	बलभद्रभट्ट २९	गोपीनाथभट्ट ३०
केशवभट्ट ३१	मङ्गलभट्ट ३२	केशवकाश्मीरीभट्ट ३३	श्रीभट्ट ३४	हरिव्यासदेवजी ३५
परशुरामदेवजी ३६	हरिवंशदेवजी ३७	नारायणदेव ३८	गोविन्ददेव ३९	गोविन्दशरणदेव ४०
ईश्वरशरणदेव ४१	श्रीनिम्बार्कशरणदेव ४२	श्रीव्रजराजशरणदेव ४३	गोपेश्वरशरणदेव ४४	विराजमान ४५

गोपेश्वरशरणदेव महाराज विख्यात श्रीजी—संवत् १९१३ में सलेमाबाद की गद्दी पर विराजमान हुये।

कथा हरिव्यासजी की ॥

हरिव्यासजी सुमुखनशुक्ल ब्राह्मणके पुत्र निम्बार्कसंप्रदाय में परमभक्त ऐसे हुये कि अबतक जिनकी कृपा से लाखों को भगवद्भक्ति प्राप्त होती है तिलक माला से अत्यन्त प्रीति जिनकी हुई, पूर्वनाम उनका हरीराम रहा और रहनेवाले वोड़छे के थे। संवत् १६१२ से अपने घरको छोड़कर पैंतालीस वर्ष की अवस्था में वृन्दावन में आये। भागवतधर्म की प्रवृत्ति चलाई हजारों को सेवक करके भक्त करदिया, परन्तु बारह सेवक तो ऐसे सिद्ध और परमभक्त और प्रतापी हुये कि जिनके नाम से अलग २ गुरुद्वारे चले और अबतक गुरुद्वारों से बढ़वारी भगवद्भक्ति की सबको है। गुरुद्वारे सब आदि परम्परा की रीति से निम्बार्क संप्रदाय के विख्यात हैं और कई प्रकार

की रीति जो आप व्यासजी ने चलाई सो गुरुद्वारे अलग बारह गुरुद्वारे से हैं कि यह निज जो वंश व्यासजी के हुये उस पद्धति की रीति से उनका गुरुद्वारा है और उनका पट्टगोसाईं करके वृन्दावन विख्यात है और इस गुरुद्वारे के सेवक हरिव्यास करके विख्यात होते हैं। जब व्यासजी ने वृन्दावन में वास किया तब ऐसी प्रीति उस परमधाम में और भगवत् में हुई कि एक कदम भी वृन्दावन से अन्यत्र रहि न सकैं बरन और कोई जो जाने के निमित्त कहता तो अत्यन्त उससे दुःखित होते रहे। मुग्दरनामी वोड़छे का राजा व्यासजी का सेवक रहा, अपने यहाँ ले जाने की कामना करके वृन्दावन में आया और बड़ी विनय प्रार्थना की तब व्यासजी ने कहा कि वृन्दावन के द्रुमलता शाखा व वन की छाया के शरण में सदा रहा हूँ उनसे बिदा होकर चलूंगा, सो बिदा होनेके निमित्त चले व राजा भी साथ हुआ। जिस वृक्ष के नीचे जाते हाथ जोड़कर विनती करते कि महाराज, तुम्हारी शरण आया रहा अब क्या आज्ञा है। राजा ने अपने मन में समझा कि इसी प्रकार कहते २ देश को चले चलेंगे, तब तक एक भंगिनि गोविन्ददेवजी के मन्दिर से पत्तल सीथ प्रसादी हरिभक्तों का और भगवत् का प्रसाद उठाकर उस राह से जाती रही। व्यासजी ने पूछा कि क्या है भंगिनि ने उत्तर दिया कि महाप्रसाद है। व्यासजी ने दौड़कर एक फुलौरी महाप्रसाद की उससे लेकर भोजन कर लिया। राजाने यह जाना कि गुरुदेव महाराजको चित्तभ्रम हो गया है जो देश में जावेंगे तो लोगों को बेधर्म करेंगे, इस हेतु बिदा होके अपने आप चलागया और व्यासजी ने उसका जाना भगवत् की बड़ी कृपा समझ कर धन्य माना, सर्वकाल श्रीकिशोर किशोरीजी की सेवा पूजा में रहते रहे। एक दिन शृंङ्गार के समय जरकशी का चीरा बांधते रहे सो जरीकी चिकनाई के कारण से बांधते में सुन्दर नहीं आता रहा कई बार बांधा परन्तु सुन्दर नहीं उतरा, व्यासजी ने क्रोधित होके कहा कि जो लड़काईंपन में यह दशा ढिठाई की है तो फिर न जाने क्या होगा, जो मेरा बांधना नहीं भावता है तो आप बांधलेव और यह कहकर कुञ्जसे बाहर जा बैंठे। थोड़ेकाल पीछे जो लोग दर्शन करके गये तो व्यासजी से कहा कि आज भगवत् का चीरा बहुत सजीला बँधा है। व्यासजी अभिलाषा भरे हुये आये देखकर कहने लगे जहां अपने हाथ ऐसे प्रवीणता व सुघरता है तो दूसरे की कब मनभाय सकती है। एकदिन हरिभक्तों का समाज भोजन करने को बैंठा था व्यासजी की स्त्री परोसती रही संयोगवश दूध की मलाई व्यासजी के कटोरे में गिरपड़ी, व्यासजी ने यह जाना कि पतिभाव की प्रीतिके वश हमको अधिक दिया है, तुरन्त पंगत से निकाल दिया। स्त्री ने बिनती किया कुछ न सुना तब तीनदिन बिना दाना पानी रहगई और सब हरिभक्तों ने व्यासजी को समझाया तब अङ्गीकार किया, परन्तु दण्ड में सब गहना बेंच के साधुओं का भण्डारा कर दिया। व्यासजी के लड़की की सगाई रहीऔर पकवान कई प्रकार

का बरात के निमित्त बना हुआ रहा। व्यासजी ने वह सामग्री सुन्दर मधुर भगवद्भक्तों के योग्य समझ तुरन्त छिपायकर भगवद्भक्तों को भोजन करा दिया, जब बरात आई और कोठे पकवान को रीता पाया तब तुरन्त लोगों ने पकवान बनाकर बरात को जिमाया। घरके लोग व्यासजी से बहुत उदास हुये, व्यासजीने तुरन्त एक विष्णुपद बनाकर भगवत् भेंट किया। अर्थ उसका यह है कि जिन लोगों को समधी प्यारे हैं और वे लोग भगवद्भक्तों को सूखा आटा देते हैं और समधी को भोजन मीठे, तो ऐसे विमुखों को यम के दूत खींचते खींचते हार जाते हैं। एक समय व्यासजी भगवत् के हाथ में बांसुरी चांदी की देते रहे, उसकी कोर से अँगुली छिल-गई रुधिर निकल आया व्यासजीने चिन्ता में होकर भगवत् अँगुलीपर कपड़ा पानी से भिगोकर बांधा कि अबतक यह रीति किशोर महाराज के शृंगार के समय वर्तमान है। इस चरित्र से भगवत् अपने भक्त के माधुर्यभाव को पक्का व दृढ़ करके उपदेश व प्रेम के पन्थ को दिखलाते हैं कि जिस भाव से मेरे भक्त मेरा आराधन करते हैं उसी भाव से प्रकट होता हूँ। एक ब्राह्मण वोड़छे का रहनेवाला व्यासजी के पास आया और जहां हरिभक्तों के निमित्त रसोईं बनती रही तहां भोजन करना अङ्गीकार न किया। व्यासजी ने उसको अन्न दिला दिया वह ब्राह्मण चर्म के छागल में जल लाकर रसोईं करनेलगा। व्यासजी जूती में घी उसके निमित्त लेगये और रसोईं में रख दिया। ब्राह्मण क्रोधयुक्त उदास होकर उठा व्यासजी ने हाथ जोड़कर कहा कि आपके उदासी की कोई बात नहीं हुई, जिस धातु का बरतन पानी के निमित्त आप अपने पास रखते हैं उसी धातु के कटोरे में घी लाया हूँ। वह ब्राह्मण लज्जित होकर अभिप्रय व्यासजी के मन का समझकर भगवत् शरण होकर भगवद्भक्त होगया। एक साधु बहुत दिन तक मन्दिर में व्यासजी की सेवा में रहा, किशोरीजी के सम्मुख कीर्तन अच्छा किया करता था, जब इच्छा चलने की करता तब व्यासजी उसको समझाकर ठहरा लिया करते कि वृन्दावन को छोड़कर कहाँ जाते हो। एक दिन ठहर करके बिदा हुआ और बटुआ शालग्रामजी का जोकि मन्दिर में पध-राय दिया रहा मांगा। व्यासजी ने एक गौरैया चिड़िया डिब्बे में बन्द करके साधुको दिया, साधु भोला लेकर चला गया जब यमुनाजी के किनारे पर सेवा पूजा के निमित्त डिब्बा खोला तो चिड़िया उड़ गई। वह साधु व्यासजी के पास गया कि महाराज मेरे ठाकुरस्वामी इस ओर आये हैं ढुंढ़वा देव। व्यासजी ने उत्तर दिया कि सत्य है तुम्हारे स्वामी के दरश परस किशोर महाराज से होगये हैं क्या जाने उसी स्नेह से चले आये होंगे सो ढुंढैंगे और यह कहकर मन्दिर में गये, आकर साधु से कहा कि तुम्हारे स्वामी किशोरजी के पास बैठे हैं, तुम्हारे स्वामी वृन्दावन से जाया नहीं चाहते तो तुम किस हेतु जाते हो? उस साधु ने सब ओर के जाने आने की इच्छा त्याग करके वृन्दावन में वास किया। शरदपूनों को भगवत् का रास समाज

वृन्दावन में होता रहा। सब रसिकजन प्रिया प्रीतम की छवि से छके हुये प्रेममग्न रहे, नृत्य में प्रियाजी के चरण से नूपुर टूट गया और ताल के समा में भेद आने लगा। व्यासजी ने तुरन्त अपना जनेऊ तोड़कर नूपुर गूंथकर पहना दिया और कहा कि अपनी अवस्था भर इस यज्ञोपवीत को गले का भार जानता रहा आज उसका रखना सुफल हुआ। भक्तमाल में जो व्यासजी के वर्णन में नाभाजी ने यह पद लिखा है कि भक्त इष्ट आदि व्यास के यह सुनकर एक महन्त परीक्षा लेने के निमित्त लाहौर से आया। जमात भारी साथ में रही, सब साधु संग के भूख जनावने लगे। व्यासजी ने कहा अब रसोईं बनकर भगवत् को भोग लगाया जाता है, कुछ विलम्ब नहीं है, परन्तु साधु लोग माने नहीं। व्यासजी पै जो भगवत्प्रसाद रहा साधुन के आगे लाये वे लोग दोचार ग्रास भोजन करके और कुछ दर्द का बहाना करके उठ खड़े हुये। व्यासजी ने उन साधुओं की सीथप्रसादी को बहुत प्रयत्न से रख लिया और हाथ जोड़ कर विनय किया कि आपने अत्यन्त दया से पालन किया कि अपनी जूठन को कृपा करके दिया और कुछ दिन के भोजन के निमित्त पूंजी हो गई, अब कृपा करें कि दूसरा भोजन बनता है उसको अङ्गीकार करें। सब महन्तों को व्यासजी में दृढ़ विश्वास आया और जाना कि इस प्रकार निश्चय भक्तों का बिना व्यासजी के और किसको होगा ? व्यासजीने एक पद भगवत् भेंट किया कि उससे महिमा सीथप्रसाद भगवद्भक्तों की प्रकट होती है अर्थ उसका यह है कि जो हरिभक्तों का सीथ नहीं खाते हैं उनके मुख शूकर और कूकर के मुख के सदृश हैं। इस हेतु कि लड़का छोटी अवस्था का जिसके नाक से रेंट बहता है और गालों तक लगा हुआ है उसका मुख चूमते हुए और काम के वश में होकर स्त्री की राल चाटते हुए तो मन को घृणा नहीं होती और भगवद्भक्तों का सीथप्रसाद खाते हुये घृणा करते हैं, तो क्यों न दुर्गति होगी व्यासजी के तीन पुत्र रहे सो झगड़ा निवृत्ति के हेतु विभाग कर देना सम्पति का उचित समझकर तीन भाग बनाये—एक भाग तो संपूर्ण द्रव्य का और दूसरा श्रीकिशोर किशोरीजी महाराज का और तीसरा तिलक छाप और श्यामबन्दनी का—सो भाग पहला और दूसरा तो रामदास और बिलासदास पहले और दूसरे पुत्रों ने लिया और किशोरदासजी के बांट में तिलक इत्यादिक आया। उन्होंने वह तिलक और छाप लेकर और स्वामी हरिदासजी से छाप धारण कराकर भगवद्भजन आरम्भ किया और थोड़े ही काल में सिद्ध और शुद्धचित्त होकर दृढ़ भक्त होगये। एक दिन किशोरदासजी और व्यासजी स्वामी हरिदासजी के साथ यमुना पर गये थे, वहां एक विष्णुपद भगवत् के रासविलास का अपना बनाया हुआ गान किया और चले आये। व्यासजी ने उसी विष्णुपद को नित्य रास के निज भगवत्पुराण में ब्रह्मा को ललिताजी के मुख से कहा हुआ सुना। व्यासजी ने इस कारण से किशोरदासजी की भक्ति का निश्चय किया। हरिव्यासजी

महाराज के चेले सिद्ध और बड़े योग्य भये। उनमें से परशुरामदेवजी की गुरुपरम्परा निम्बार्कस्वामी की कथा में लिखी गई और शोभूरामजी का वृत्तान्त उनकी कथा में लिखा जायगा और यद्यपि परम्परा बिन्दुवंश और नादवंश हरिव्यासजी का भी विवरण सहित प्राप्त हुआ था, परन्तु सन्देह कुछ होगया इस हेतु न लिखा यही दो परम्परा विशेष समझना।

कथा शोभूरामजी की ॥

शोभूरामजी जातिके ब्राह्मण रहनेवाले ओड़िया के चेला हरिव्यासजी के जिनकी कथा ऊपर हुई, परमभक्त निम्बार्कसंप्रदाय में हुए। अब तक मन्दिर व वाटिका उनके निवासका ओड़िये जगाधरी के समीप एक कोस पर विराजमान है और ऐसा प्रतापी गुरुद्वारा है कि लाखों को जिसके प्रभाव करके भगवद्भक्ति प्राप्त हुई व होती है। शोभूरामजी की कृपा करके उस देश में भक्ति का प्रचार हुआ। एकबेर यमुनाजी चढ़ीं नगर डूबने लगा सबने आयके पुकारा तब आपने विनय किया व कहा कि ऐसी ही इच्छा है तो मैं भी सहायता को प्राप्त हूँ। यह कहके फावड़ा लेके पानी आने की राह बनाने लगे, यमुनाजी हटगईं। आरती के समय शंखध्वनि हुआ करती थी, हाकिम ने सुनी और क्रोधयुक्त होकर बिचारा कि इसको काला मुँह कर गधे पर चढ़ाना चाहिये। शोभूरामजी वैसाही रूप बनाकर उसके द्वार पर गये, देखिके आधीन होगया व लज्जित होकर अपराध क्षमा कराया व आत्माराम जिनके भाई उनकी कृपा व दीक्षा से सब गुण करके युक्त परमभक्त थे मानो कृष्णभक्ति के खम्भ हुए व सन्तदास व माधवदास दो भाई दूसरे उनकी भी भक्ति और महिमा वैसी ही हुई कि माधवदासजी ने योगियों को ज्ञानसमर में विजय किया। एकबेर योगियों के स्थान में उतरे। आग जलाकर बैठे रहे, योगियों का स्वामी क्रोधयुक्त हुआ तब सब अग्नि बहती हुई अपने अचला से उठाकर लेजा के अलग जा बैठे। योगी यह चरित्र देखकर आधीन हो गया चरणों में पड़ा। इन दोनों भाइयों ने भक्ति के प्रकाश करने को मानों अवतार लिया था, एक ही समय में दोनों भाइयों ने यह प्रकाश किया।

कथा हितहरिवंशजी की ॥

हितहरिवंशजी गोसाईंजीके भजन और भावको ऐसा कौन है जो वर्णन करसके कि जिनसे राधिकामहारानीकी प्रधानता करके मनको दृढ़विश्वास से लगाया और प्रियाप्रियतम के नित्यविहार और कुञ्जमहल में मानसी ध्यान करके प्राप्त होकर सखीभाव से टहल व सेवा शृङ्गार आदि की करी व भगवत् के महाप्रसाद में ऐसा विश्वास था कि अपना सर्वस्व जानते रहे व विधिनिषेध के व्यवहार से अलग होकर अनन्य दृढ़भक्ति में मग्न रहते रहे। व्याससूनुके विश्वास और मार्गपर जो कोई होवे वह भी अच्छे प्रकार उस पन्थ को जानसकता है। नाभाजीने जो व्याससूनु यह पद मूल भक्तमाल में लिखा तो उसके अर्थ से शुकदेवजी का भी बोध होता है और

हरिवंशजी का भी, क्योंकि उनके पिता का नाम व्यास रहा। ये गोसाईं महाराज राधावल्लभजी संप्रदाय के आचार्य हुये कि जिनके प्रभाव से सहस्रों भगवत्सम्मुख होकर संगति को पहुँचे हैं। व्यास उनके पिता गौड़ ब्राह्मण रहनेवाले देवनन्दन इलाके सरकार सहारनपुर में बादशाही अधिकारी रहे, परन्तु वंश नहीं था। नरसिंह आश्रम बड़े भाई उपासक नृसिंहजी के आशीर्वाद व कृपासे हरिवंशजी तारानाम व्यासपत्नी के गर्भ से संवत् १५५९ में उत्पन्न हुये। व पहले ही से भक्ति श्रीराधाकृष्ण महाराज की रही, राधिका महारानी ने पीपल के वृक्षपर मन्त्र का पता स्वप्न में दिया व एक भगवन्मूर्ति का पता भी कूप में जनादिया। गोसाईंजी ने वह मन्त्र और मूर्ति प्राप्त करके मन्त्र का तो जप आरम्भ किया और भगवन्मूर्ति व राधिकाजी की गादी विराजमान करके सेवा पूजा करनेलगे। रुक्मिणीनाम स्त्री के गर्भ से दो पुत्र और एक पुत्री जन्मे व विवाहादि उनका हो गया तब वृन्दावन सेवन की इच्छा करके चले। चरथावल ग्राम में भगवत् आज्ञा करके एक ब्राह्मणने अपनी दो लड़की और राधावल्लभजी की मूर्ति भेंट करी। वृन्दावन में पहुंचकर मन्दिर बनवाया और भगवन्मूर्ति व राधिका जी की जगह गादी स्थापना करके पद्धति राधावल्लभी संप्रदाय की चलाई। इस संप्रदाय में राधाकृष्ण युगलस्वरूप की उपासना है, परन्तु राधिका महारानी की भावना विशेष है। अपने आपको सखी और दासी श्रीराधिकाजी को जानकर ध्यान युगलस्वरूप और शृङ्गार राधिका महारानी में मग्न रहते हैं और यह उनको निश्चय है कि कृपा व अनुग्रह राधिका महारानी का होना चाहिये, श्रीकृष्णस्वामी आपसे आप कृपा करेंगे। वृत्तान्त शृङ्गार व तिलक आदिका निष्ठाशृङ्गार और वेश में लिखा जायगा, राधासुधानिधि ग्रन्थ संस्कृत में कि उसकी प्रेमभक्ति व काव्य की रचना पद की मधुरता वर्णन में नहीं आसकती है और भाषा में हित चौरासी रचना किया हुआ गोसाईंजी का प्रसिद्ध व विख्यात है। गोसाईंजी को भगवत्प्रसाद में ऐसी निष्ठा रही कि पान का बीड़ा भगवत्प्रसादी को करोड़ एकादशीव्रत पर अधिकतर समझते रहे। कोई २ माध्व-संप्रदायवाले पूर्व कुछ सेवक होने माध्वसंप्रदाय का गोसाईंजी को कहते हैं, परन्तु कुछ बात नहीं व हरिवंशजी राधिका जी की कृपा करिके स्वयं सिद्ध भये। इसमें कुछ संदेह नहीं व रीति भजन की नई रसभक्ति प्रेममयी निकाली व निम्बार्कसंप्रदाय व माध्वसंप्रदाय से सिद्धान्त उपासना चुनकरके अद्भुतरस भजन की रीति पुष्ट करी। इस संप्रदाय में राधिका महारानी में परकीया भाव है व वंश गोसाईंजी के देवनन्दन व वृन्दावन दोनों जगह विराजमान हैं और श्रीराधावल्लभलालजी की उपासना का उपदेश प्रसिद्ध व प्रभाव संसार में प्रकट है।

कथा चतुर्भुजजी की ॥

चतुर्भुजजी चेले हितहरिवंश जी के भगवद्भक्त ऐसे हुये कि भगवद्भक्ति और भजन का प्रताप बहुत लोगों के हृदय में दृढ़ करके भगवत् की ओर लगा दिया और

श्री राधावल्लभलालजी के ऐसे चरित्र पवित्र काव्य किये कि हजारों उनको पढ़ सुन-कर संगति को प्राप्त हुये। हरिभक्तों की ऐसी सेवा करी कि उनके चरणरज को अपने शिर का भूषण समझा और सत्संग का यह विश्वास रहा कि उसी में मग्न रहते थे जिन्होंने गुरुचरण की कृपा से गोड़वाने देश को भगवद्भक्त कर दिया यह कि उस देश के आदमियों को कालीजी की उपासना थी, आदमी को मारकर चढ़ाते थे, भगवद्भक्ति का प्रवेश निर्मल तनक नहीं रहा। चतुर्भुजजी का संयोग उस देश में जाने का हुआ, यह दशा देखी तो पहले काली ही को भगवद्भक्त करना प्रयोजन जानकर भगवन्मंत्र सुनाया। काली जब हरिभक्त हुई तब लोगों को स्वप्न में शिक्षा किया कि तुमलोग स्वामी चतुर्भुजजी के शीघ्र ही सेवक होकर भगवद्भक्ति अंगीकार करो नहीं तो सबका नाश हो जायगा। सब कोई दौड़े आये और चेले हुये माला तिलक धारण करके भगवद्भक्त हो गये और पूर्व के पापों से छूट गये। स्वामी जी ने कुछ दिन उस देश में रहकर भगवत् आराधना और उत्साह व साधुसेवा को अच्छा फैलाया और श्रीमद्भागवत सुनाकर भगवत्प्रेम में पूर्ण कर दिया। एक उचक्का किसी बनिये की थैली उठाकर चला, धनी पीछे पड़ा, उचक्के ने जब कोई जगह छिपने की न देखी तो स्वामी जी की कथा में जा बैठा। उस समय यह कथा होती थी कि कोई शास्त्र-विहित दीक्षा लेता है उसका जन्म नवीन हो जाता है। यह सुनकर वह उचक्का भी चेला स्वामी जी का होगया तिसके पीछे थैली वाला बनिया भी जा पहुँचा और लोहे का गोला तप्त करके हाथ पर रक्खा साधु ने राजा के सामने सौगन्ध दी कि इस जन्म में किसी का धन नहीं चुराया, निदान साधु जीत गया राजा ने बनिये को शूली देने की आज्ञा दी, जब साधु ने सब वृत्तान्त वर्णन किया तब राजा ने बनिये को छोड़ा, भगवद्भक्त हो गया। एक दिन स्वामी का खेत पका था साधु आते रहे उसमें घुसके खाने लगे रखवाले ने पुकार किया कि स्वामी चतुर्भुजजी का है। साधुओं ने कहा तो हमारा ही है शोर क्यों करते हो यह सुन स्वामी आय के साधुओं को ले गये, भोजन कराये व आनन्द का जल आंखों से बहाया आज साधुओं ने हमारी चीजों को अपना समझा।

कथा शङ्करस्वामी की॥

शंकरस्वामी कलि में धर्म के रक्षक और भागवतधर्म के प्रवर्तक शिवजी का अवतार और आचार्य हुए, जितने अनीश्वरवादी और जैनधर्मी और पाखण्डी और विमुख और दुर्बुद्धि थे सबको ध्वस्त करके शास्त्रों की पद्धति पर चलाया। दक्षिणदेश में विक्रमादित्य के समय स्वामी का अवतार हुआ, स्मार्तमत की रीति से दण्ड धारण-कर संन्यासी हुये और उसी धर्म की पद्धति से भागवतधर्म को फैलाया। सेवड़ों को परास्त किया। मण्डनमिश्र जिनको ब्रह्मा का अवतार कहते हैं मीमांसामतवादी रहे, उनको बाद में निरुत्तर किया, मीमांसा कर्म ही को ईश्वर मानता है। पीछे मिश्रजी

की स्त्री ने वाद आरम्भ किया और कामशास्त्र में प्रश्न करने लगी और ये स्वामी यती संन्यासी रहे उस गली से तनक भी बोध न था इस हेतु राजा अमरुक के शरीर में कि उसी दिन मर गया था योगबल से अपने प्राण को उसमें प्रवेश करके छः महीने तक उस शरीर में रहे। एक ग्रन्थ अमरुकशतक बहुत ललित उस शरीर में रचना किया। जितनी रानी राजा अमरुककी रहीं सबने जान लिया कि यह कोई योगी है और निज देह इसका कहीं गुप्त होगा, सो उसको जला देना चाहिये कि जिसमें यह शरीर और राज्य और हमारा सुहाग बना रहे। इस हेतु उस शरीर को ढुँढ़वा के जला देने की आज्ञा देदी, आग दियेही रहेकि स्वामी के प्राण ने राजा का तनु छोड़कर निज शरीर में प्रवेश किया और अग्नि से रक्षाके हेतु नृसिंहजी का स्मरण किया। प्रभु ने उस अग्नि को शीतल कर दिया। स्वामी ने चिता से निकलकर मण्डन मिश्र की स्त्री को निरुत्तर कर दिया। मिश्र स्वामी के चेले हो गये पश्चात् चारवाक मतवालों को परास्त करके धर्म में प्रवृत्त किया, सो अब चारवाक मत का अनुगामी दृष्टान्त कोई भी नहीं मिलता। मुसलमानों में सुने जाते हैं जो कि दहरिया कहाते हैं, फिर सांख्य-शास्त्र और हठयोगवालों को शिक्षा किया, तब पीछे सेवड़ों के साथ मतवाद युद्ध बड़ाभारी आनपड़ा। निदान पहले वाद में जीतकर फिर उनकी धूर्तताई व मन्त्र चेटक आदि को दूर किया और इन्द्रजाल उन्होंने किया तो वहभी उनकेही गलेपर पड़ा। इस प्रकार कि कोठे परसे गिरकर मर गये और कुछ नदी में डूबे और जो रहे वचे तिनको उस समय के देशाधीश ने नावोंमें भरवाकर नदी में डुबवाय दिया और जितने भगवत् के शरण में हुये वे सब उपद्रव से बचगये। तात्पर्य यह कि जो कोई भगवत् से विमुख रहा अथवा वेदविरुद्ध चलता था उसको विद्या के बल से व प्रभाव दिखाके अथवा जिस प्रकार उसने बोध चाहा भागवतधर्म पर दृढ़ कर दिया, फिर पीछे ठौर २ मन्दिर व शिवालय आदि बनवाये और हर एक देवता के वर्णन में स्तोत्ररचना किया और रीति पूजा इत्यादि की शिक्षा करी। गीताजी व शारीरिक सूत्र व विष्णुसहस्रनाम पर भाष्य अलग २ रचना किया। तिलक आदि की पद्धति का वेषनिष्ठा में वर्णन होगा, विस्तार करके कथा स्वामी की शंकरदिग्विजय में लिखी है। यहां एक नाममात्र सूक्ष्म वृत्तान्त लिखागया, निर्गुणउपासक तो यह बात कहते हैं कि ये स्वामी केवल निर्गुणब्रह्म के उपासक रहे और सगुण उपासकों का यह वचन है कि वैष्णव रहे और वाद सुष्ठुतर उनके वैष्णव होने की ठानते हैं कि स्मार्त सगुण उपासना की पद्धति यह है कि अपने इष्टको अङ्गी और दूसरे देवताओं को अङ्ग मानते हैं। एक तो भगवत्की जिस प्रकार दूसरी संप्रदायों में दृढ़ है इसी प्रकार इस संप्रदाय में भी पूजा व स्मरण जप इत्यादि वैसाही व निर्गुणब्रह्म का वर्णन इस पोथी के अन्तमें लिखाजायगा। शंकरस्वामी के बहुत से चेले ऐसे हुये कि उनसे इस संप्रदाय की प्रवृत्ति अधिकतर हुई, उनकी गुरुपरम्परा से उनके नाम खोले जायँगे व मठ

गुरुद्वारे भी बहुत हैं परन्तु चार स्थान चारों चेलों के सबमें मुख्य हैं कि उन मठों का नाम चारोंचेलों के पास लिखाजाता है और गुरुद्वारे सहस्रों हैं इस हेतु उनकी गुरुपरम्परा इस समय तक की नहीं लिखी केवल शंकरस्वामी के चेलों तक की लिखी।

निष्ठा तीसरी।

साधुसेवा व सत्संग जिसमें तीसभक्तों की कथा हैं।

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमल की अम्बर रेखा को और वाराह अवतार को दण्डवत् है कि निज धाम ब्रह्मपुरी में वह अवतार धारण करके पृथ्वी को समुद्र से निकाला और हिरण्याक्ष को वध किया व सब शास्त्रों का सिद्धान्त है इस जीवको आवागमन के बन्धनसे छूटने के हेतु सत्संग व्यतिरेक और कुछ साधन नहीं जिसके प्रभाव से शीघ्र भगवत्प्राप्ति होती है। महिमा सत्संग कीअपार है तथापि किञ्चि-मात्र लिखी जाती है और सत्संग की प्राप्ति साधुसेवा करके है। इस हेतु साधुसेवा की महिमा भी इस निष्ठा में लिखी जायगी और यद्यपि वास्तव अर्थ सत्संग शब्द के ये हैं सत् जो भगवद्भक्त तिनका संग परन्तु कोई उस सत्संग के अर्थ कई प्रकार से वर्णन करते हैं। उनमें दो प्रकार मुख्य हैं—एक सत्संग शास्त्र और तीर्थों का दूसरा भक्तों का शास्त्र सत्संग से यह तात्पर्य है कि उसका पढ़ना और विचारना और अभ्यास रखना और उसके अनुकूल चलना जिससे सार और असार और ईश्वर माया जीव का ज्ञान होकर और नरक के दुःखों से डरकर रूप अनूप माधुरी और परमशोभा भगवत् में कि सब शास्त्रों का सार और मुख्य लाभ है, ऐसी बुद्धि लग-जावे कि दृढ़ स्थित होकर यह जीव कृतार्थ होकर सब दुःख सुख भलाई बुराई से अलग होकर आनन्द होजायगा, सो पढ़ने व अभ्यास रखने योग्य से शास्त्र हैं कि जिनमें भगवच्चरित्र और भगवत् स्वरूप व गीता आदि पुराण स्मृति व वेद अथवा दूसरे ऋषीश्वरों के रचित और हरिभक्तों के कथित और जो उनके पद में व अभ्यास में नहीं जानने से वाणी संस्कृत के हेतु से दुर्बोधता होय तो भाषाग्रन्थ जैसे तुलसी-कृत रामायण व विनयपत्रिका व सूरसागर व दशमस्कन्ध व व्रजविलास व कृष्णदास व नन्ददास की वाणी आदि का पढ़ना सदा कि उसके अवलम्ब से संस्कृत से जो बोध होता है सोई होजायगा व दो चार महीने का परिश्रम करने से थोड़े ही में भाषा पढ़ने की गति होजाती है, पर असावधानता व दुर्भाग्यता की बात न्यारी है। बहुत लोग विरुद्धधर्मियों के रचे हुये को भाषान्तर करनेमें विशेष करके काल व्यतीत करते हैं, सो मेरे विचार में वे त्याज्य हैं जो वह विवाद कि जिस हेतुसे भाषान्तर ग्रन्थ धर्मविरोधियों का पढ़ना अयोग्य है, विस्तार करके लिखें तो बहुत है परन्तु एक दो बात लिखी जाती हैं। प्रथम उन भाषान्तर करनेवालों में मुख्य अभिप्राय उस ग्रन्थ का निर्वाह नहीं हो सकता, यह कि कोई श्लोक भागवत व गीता व महाभारत

का तर्जुमा जिसको भाषान्तर लिखा है पढ़कर फिर अपने धर्म के आचार्यों का तिलक है तिससे मिलान करे कि मुख्य अभिप्राय लुप्त व ध्वस्त है, दूसरे कोई तर्जुमा ऐसा नहीं कि तर्जुमा करनेवालों ने अपने दीन के विरुद्ध व द्वेष के कारण से उनमें प्रकट अथवा कोई ब्याज करके अथवा कटाक्ष लेकर हिंदू के दीन की निन्दा न लिखी होय, जैसे अबुलफजल ने महाभारत आदि ग्रन्थों के तर्जुमों का प्रारम्भ किया वह जलादेने योग्य हैं और उनमें विशेष अर्थों का तर्जुमा लिखा है व तर्जुमे योगवाशिष्ठ व भागवत से प्रकट है और जो किसी ने दूषणरहित तर्जुमा कर दिया है तो इस-भांति की लिखावट है कि भगवत् व महात्माओं के सम्बन्ध में तनक मर्याद नहीं और वचन कठोर व तीक्ष्ण जैसे बाण हृदय में लगते हैं, तीसरे ऋषीश्वरों व भक्तों की वाणी में जो प्रभाव है अन्य मतवालोंके तर्जुमे में नहीं और प्रतिकूल होता है। यह कि जैसा विरुद्धभाव तर्जुमा करनेवालों का है वैसा ही पढ़ने सुननेवालों का हो जाता है, इस हेतु कोई आरूढ़पद को नहीं पहुँचता व आजतक उन तर्जुमों के पढ़ने-वालों को भगवद्भक्त न देखा होगा, परन्तु इतना विशेष होगा कि ब्राह्मणों को वाद करके दुःखित करना व सत्संग में विश्वास नहीं, चौथे यह कि जो मन्त्र ऋषीश्वर और भगवद्भक्तों ने मूलग्रन्थों में गुप्त अथवा प्रकट लिखे हैं वे मन्त्र उन तर्जुमों में नहीं कि जिसके प्रभाव से मन भगवत् में लगे। इस भेद करके उनका पढ़ना उचित नहीं और अच्छे प्रकार विचार कर देखिये कि जिन लोगों ने संस्कृत व भाषा थोड़ी-सी भी पढ़ी है वे सबलोग थोड़े-बहुत भगवत् के मार्ग पर हैं और जिन लोगों ने केवल तर्जुमा भागवत व रामायण व महाभारत व योगवाशिष्ठ व दूसरी सैकड़ों किताबें तर्जुमा की हुई विरुद्धधर्मियों की पढ़ीं और अभ्यास किया कभी किसी को कुछ भी गुण न किया, भला यह बात रहने दीजिये जो ऐसाही हठ है कि बिला तर्जुमे फारसी के हमारा अभिप्राय नहीं निकलता तो तर्जुमा हिन्दुओं का किया भी तो प्राप्त है उनको क्यों नहीं पढ़ते, जैसे रामायण तर्जुमा किया टोडरमल व तर्जुमा भागवत किया हुआ एक कोई कायस्थ का व तर्जुमा गीता किया कोई काश्मीरी का ऐसे बहुत लोगों के। इति।

और तीर्थ सत्संग से हेतु स्थान गङ्गा व यमुना व पुष्करआदि तीर्थों और यात्राआदि से है उसमें किसी का यह सिद्धान्त है कि तीर्थों के जल को भगवत् ने यह प्रताप दिया है कि उसके दर्शन और स्नान और पान करने से हृदय पवित्र हो जाता है और कोई यह कहते हैं कि भगवद्भक्तलोग एक कोई नियत समयपर एक जगह इकट्ठे होते हैं इस हेतु उस स्थान का नाम तीर्थ कहाजाता है और उन भक्तों के संग का पुण्य और जल के स्नान आदिके प्रभाव कि जिस जल में चरण उन भक्तों के पड़ें मनुष्यों को चित्त की उज्ज्वलता प्राप्त होती है। इस वचन से शास्त्र ने तीर्थों से अधिक बड़ाई भगवद्भक्ति की प्रकट की परन्तु दोनों दशा में निस्संदेह तीर्थों के

सत्संग व यात्रा से ये मनुष्य पवित्र होकर भगवत् में लगजाते हैं और रीति तीर्थ-स्नान की धामनिष्ठा में लिखीजायगी। प्रथम प्रकार के सत्संग का निर्णय तो होचुका अब वर्णन द्वितीय प्रकार का होता है और जो महिमा सत्संग की निष्ठा के प्रारम्भ में लिखीगई और कुछ वर्णन ग्रन्थ के आदि में हुआ और सब शास्त्रों ने जो सत्संग वर्णन किया उसका तात्पर्य भगवद्भक्तों से है निस्संदेह जिस किसी ने भगवद्भक्तों का सत्संग किया अपने वाञ्छित अर्थ को प्राप्त हुआ। भक्तों का मिलना भगवत् हैं सो भगवत् का वचन है कि एक क्षण सत्संग के सम्मुख स्वर्ग व अपवर्ग का सुख बराबर नहीं होसकता। दशमस्कन्ध का वचन है कि इस संसार से छूटने का और अपवर्ग व मुक्ति के प्राप्त होने का सत्संगही उत्तम उपाय है। एकादश में भगवत् का वचन है कि मैं योग इत्यादि से वश नहीं होता परन्तु सत्संग से व पद्मपुराण व स्कन्दपुराण व विष्णुपुराण आदि में भी यही निश्चय वचन है। अब यह संदेह उत्पन्न हुआ कि सब साधन तीर्थादि से जो भगवद्भक्तों के सत्संग को बड़ा व अधिक लिखा इसका कौन कारण है सो यह है कि प्रथम तो भगवत् और शिवजी का वचन है कि जहाँ भगवद्भक्त रहते हैं तहाँ आप भगवत् विराजमान रहते हैं सो जब इस पुरुष को भगवद्भक्तों का सत्संग होगा निस्संदेह भगवत् मिलजायँगे कि यह वृत्तान्त प्रचेता और नारदजी की कथा जो भागवत में लिखी है उससे अच्छे प्रकार समझने में आ सकता है। दूसरे अन्यसाधन जो तीर्थ व्रत व जप-तप व नेम व संयम आदि सब ऐसे हैं कि अनुक्षण भक्त का मन उनमें नहीं लगता, दूसरी ओर होकर संसार के स्वाद में जा लगता है और भगवद्भक्तों के सत्संग से अनुक्षण भगवत् में रहता है। इस हेतु कि वहां भगवच्चरित्र और कथा व सेवा व भजन-कीर्त्तन आदि के बिना और कुछ काम नहीं होता, जो किसी काल में मन दूसरी ओर गया तो फिर भगवत् के सम्मुख होजाता है। तीसरे अन्यसाधन तीर्थ शास्त्रआदि का यह वृत्तान्त है कि कहीं भगवद्भक्ति का साधन वस्तु प्राप्ति है पर साधनेवाले जो भक्तजन सो नहीं और कोई जगह भक्त साधना करने को उद्यत है परन्तु उनको पद्धति नहीं मिलती और कोई जगह ऐसा संयोग है कि भक्त और पद्धति सब एकत्र हैं, परन्तु संदेह निवृत्त करने-वाला कोई नहीं अथवा कोई ठग उस पन्थ का जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्षा आदि आय गया कि उसने सब पूंजी बटोरी हुई को एक निमिष में लूटलिया, सो दूसरे साधन तो इस हेतु न्यूनतर हैं कि वह सब वस्तु के प्राप्त करने-वाले नहीं और भगवद्भक्तों के सत्संग को इस हेतु बड़ा कहैं कि जिस वस्तुका प्रयोजन लगे वह सब वस्तु एक जगह प्राप्त है और वास्ते पहुँचाने भगवद्पद तक भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के थोड़ा लेकर सम्मुख हैं सो जिस किसी को चाह भगवद्भक्ति की है और इस संसारसमुद्र को उतरना चाहता है तो सत्संग करे और यह भी जानले कि सत्संग सब जगह वर्तमान व प्राप्त हैं, परन्तु यह अपनी कुतर्क व कुचेष्टा

है कि सूझ नहीं पड़ती, काहे को आप पाप और अवगुणयुक्त होनेके हेतु से दूसरे को भी अपनेही सदृश जानते हैं और उसके अच्छे स्वभाव और भजन आदिपर दृष्टि न करके और उसके अवगुण व शुद्ध स्वभाव के अङ्गीकार की दृष्टि होय तौ सत्संग के सब जगह प्राप्त होने में क्या संदेह है, जो ऐसे ही दुर्भाव व अवगुण दूषण देखना है तो कोई जड़ चेतन अवगुणरहित नहीं। इसके सिवाय तीर्थ के स्थानों में जैसे वृन्दावन व चित्रकूट व प्रयाग व अयोध्या व काशी व जगन्नाथपुरी व उज्जैन व काञ्ची व हरिद्वार व पुष्करआदि सैकड़ों स्थान पर सत्संग जैसा चाहे मिलता है परन्तु भक्त यह बात समझे रहें कि सत्संग का यह अर्थ नहीं है कि चलो साहिब कोई साधु आये हैं दर्शन कर आवें। सत्संग उसका नाम है कि भक्तों को भगवद्रूप जानकर उनके वचन पर ऐसा विश्वास पक्का हो कि कभी बेविश्वास न होयँ और वह सत्संग का अनुक्षण तबतक अत्यन्त प्रयोजन है कि जब तक अच्छे प्रकार दृढ़ स्थिर भगवच्चरणों में न हो जावे। अब अधिक विस्तार करना प्रयोजन नहीं, नारद और व्यास, वाल्मीकि, अजामिल, शबरी, वारमुखी व अगस्त्य व प्रचेता व ध्रुव व प्रह्लाद आदिक सहस्रों भक्तों की कथा जो पुराणों में लिखी है और कोई इस भक्तमाल में पढ़ सुन लेवे कि सत्संग के प्रभाव करके कैसे कैसे पापियों को क्या २ पदवी प्राप्त हुई है सो वह सत्संग इस समय इस मनुष्य को बिना प्रयास मिलता है, जैसे भगवत् की सेवा में निष्ठा भगवद्भक्तों को होती है जो वैसे ही भगवद्भक्तों की सेवा में तन-मन लगे। भागवत में भगवत् का वचन है कि ऋषीश्वर मेरे भक्त मेरा शरीर हैं और वेही पूज्य हैं और उपाय छोड़कर उन्हीं की सेवा कर। पद्मपुराण में भगवत् का वचन है कि मेरे भक्तों को भोजन करवाना व सेवा करना। वह भोजन व सेवा निज मुझको होता है और जिस प्रकार मेरे भक्त मुझको भोजन कराये बिना कुछ नहीं खाते इसी प्रकार मैं बिना उनको भोजन कराये कुछ नहीं खाता और पुराणों में भगवत् ने कहाहै कि जो मेरे भक्तों के भक्त हैं वे मेरे भक्त हैं, फिर भगवत् का वचन है कि गङ्गा तो पाप और चन्द्रमा ताप व कल्पवृक्ष दरिद्र को दूर करते हैं और मेरे भक्तों का दर्शन कैसा है पवित्र कि ये तीनों दुःख क्षणमात्र में दूर होजाते हैं फिर ऋषीश्वरों का वचन है कि तीर्थादि पवित्र नहीं कर सकते हैं जैसा कि सन्त शीघ्र इस लोक और परलोकसे निर्भय और पवित्र करदेते हैं। इस प्रकार शास्त्रों का वचन है सो जिस किसीको चाहना भगवत् के नित्यानन्द और संसार से छूटने की है उसको भगवद्भक्तों की सेवा मन व प्राण से उचित है और कुछ विचार जातिपांति आदि का तनक नहीं चाहिये। जो कोई भी जाति भगवद्भक्त होवे वह भगवद्रूप है, महाभारत में भगवद्वचन है कि जो कोई हरिभक्तों में जाति आदि का विभेद करके उनकी सेवा नहीं करते वे नास्तिक हैं। साधुसेवा के पन्थ में पांच ठग हैं एक तो जातिका गर्व कि साधु को छोटी जाति जानकर सेवा न करे, दूसरे विद्या का गर्व कि नहीं पढ़े हुये

साधु को छोटा जाने, तीसरे ऐश्वर्य का गर्व कि उसके मद में कुछ भला बुरा समझ न पड़े, चौथा साधु का कुरूप देखकर सेवासे विमुख रहे अथवा रूप के गर्व से कुछ ध्यान में न लावे, पांचवां बल शरीर का कि उसके गर्व से भी भले बुरे का विचार नहीं रहता है। सो इन पांचों गर्वों को तो ताकपर रखदेवे और वे चरित्र भगवत् के अनुक्षण स्मरण रक्खे कि भगवत् ने आप बाल्मीकि श्वपच को युधिष्ठिर की निज रसोईं के घर में बैठाकर द्रौपदी के हाथ से सेवा कराई और आप श्रीरघुनन्दन स्वामी ने भीलिनी के जूठे फल खाये। एक साधुसेवी का वृत्तान्त है कि वह दुखी था अपनी स्त्री से साधु की सेवा के निमित्त दृढ़ायके कहा। उसने अपने शिर दुखने का बहाना किया, संयोगवश उसी समय दामाद आगया, वह स्त्री तुरन्त उठी और मोहनभोग आदिक बनाने लगी। साधुसेवी ने तुरन्त उस स्त्री को घर से निकाल दिया और कहा कि जब मेरा दामाद आया तब तो शिर दुखने लगा और जब तेरा दामाद आया तब वह शिर का दुखना तुरन्त दूर हुआ। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार कामी और झूठेको स्त्री और लोभी को द्रव्य प्यारी है इसी प्रकार भगवद्भक्तों को अपना निजप्यारा समझकर और सांची प्रीति जानकर तन-मन से सेवा करे। जिसको भगवद्भक्तों में प्रीति नहीं कदापि कोई मनोरथ इस लोक और परलोक का सिद्ध न होगा और आजतक ऐसा संयोग कभी नहीं हुआ कि भगवद्भक्तों की सेवा करनेवाले का मनोरथ इस लोक व परलोक का सिद्ध न हुआ हो। जो कोई भक्तों से विमुख हैं और निन्दा करते हैं वे भगवत् के घर से निकाले हुये हैं, जो भक्तों के साथ शत्रुता करते अथवा दुख देते हैं उनका नाश होजाता है रसातल को जाते हैं। रावण, दुर्योधन, कंस आदि भगवद्भक्तों के साथ वैर ठानकर ध्वंस को प्राप्त हुये। भगवत् को हिरण्यकशिपु पर कभी क्रोध न आया देवता सब दुःख रोये भी परन्तु जब प्रह्लाद भक्त को दुःख दिया तब नहीं सह सके तो दूसरों की क्या बात है। भगवद्भक्तों के द्रोही तीनों लोक में दुख पाते हैं जिस प्रकार दुर्वासा जहां गये किसी ने शरण नहीं दिया अब इस दास की बिनती भगवद्भक्तों की सेवा में यह है कि कुछ कृपा की दृष्टि इस अपराधकर्मी पर भी होवे। जो मेरे अपराधों पर निगाह करोगे तो उस वचन में विरोध आवेगा कि साधु सजलमेघ के सदृश हैं, शत्रु-मित्र साधु असाधु पर बराबर दया करते हैं। इसहेतु अपने ऊपर कृपादृष्टि योग्य है मेरे अपराधों पर दृष्टि योग्य नहीं सिवाय इसके एक प्रकार से आश्रित भी हैं कि तुम्हारा भाट भी हूँ। कदाचित् यह कहोगे कि यह बिरदरचना तेरे अन्तःकरण से नहीं ऊपर ही गाता है तो यह विनय है कि सब भाट ऊपर ही स्तुति बिरद की किया करते हैं परन्तु यजमान उनको विमुख नहीं करता व इसके ऊपर एक सम्बन्ध भी तुम्हारे चरण से है कि श्रीकृष्णमहाराज का घरजाया चेरा हूँ जो यह कहोगे कि ऐसे पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन का दास होकर हमसे क्या चाहना करता है और किसका

भय है, सो विनय यह है कि अवगुणी चेराहूँ, स्वामी की आज्ञा के अनुकूल आचरण नहीं और भूलकर भी सम्मुख कभी नहीं होता हूँ। सब बातें बताने से मेरा तात्पर्य यह कि किसी प्रकार से यह दुष्ट भाग्यहीन मन भगवच्चरणों में लगे और जो मन उस समाज के चिन्तन में लगे तो आनन्द पद की प्राप्ति में क्या संदेह है कि अयोध्यानिजधाम में कल्पवृक्ष के नीचे महामण्डप है, वहां पुष्पकसिंहासन पर कि जिसका प्रकाश करोड़ों सूर्य के समान है आप वसन-आभूषण समाजी अङ्ग पर सजे हुये, वीरासन विराजमान हैं और वामभाग में श्रीजनकनन्दिनी शोभित हैं ऐसा मनोहररूप अपार है कि लक्ष्मी और विष्णु भी लज्जित होकर क्षीर समुद्र में जा छिपे। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सेवा में तत्पर हैं चारों वेद व नारद व सनकादिक व ब्रह्माआदि स्तुति करते हैं और एक ओर सुग्रीव, विभीषण आदि और दूसरी ओर सब राजमन्त्री और सामने हाथ बांधे हनुमान्‌जी खड़े हैं।

कथा विदुरजी की ॥

विदुरजी रहनेवाले गांव छटेरा राज्य जोधपुर साधुसेवी हुये। एक साल अवर्षण हुआ, खेत सूख गये, साधुओं के भोजन की चिन्ता करके घबराने। स्वप्न में आज्ञा हुई कि सूखा खेत काट के मल के झाड़ों, दो हजार मन अन्न होगा। वैसे ही करने लगे सब लोग हँसी करते रहे, दो हजार मन अन्न ढेर लगा। क्या आश्चर्य कि साधुसेवा इस लोक व परलोक में सूखे वृक्ष को फल फूल लगा देती है।

कथा भगवान्‌दास की ॥

ठाकुर भगवान्‌दास भीमसिंह राजपूत तोदर के बेटे परमभक्त भगवद्भक्तोंकी सेवा में सावधान व दृढ़ विश्वास करनेवाले हुए। प्रतिवर्ष मथुराजी में जाके साधु ब्राह्मणों का बड़ा भण्डारा करते रहे और रासविलास उत्साह में बड़ा रुपया उठाय के घर चले आते रहे। समय के फर करके व धन के बहुत उठाने से धन का संकोच आ गया, तो भी ऋण लेकर के मथुरा आये, कुछ कम करके देने का विचार किया तब चौबे लोग अड़े कि जितना मिलता रहा उतना ही मिलेगा तो लेंगे। ठाकुरसाहब ने सब रुपया जो पास था सबके आगे रख दिया, तब यह ठहरा कि अब इसका सूखा अन्न साधु ब्राह्मणों को बँट जाय। एक कोठरी में नाज व रुपया इकट्ठा करके बँटने लगा भक्तों के द्रोहियों ने यह विचारा कि इनका नाम हँसा जाय सो एक सीधे की जगह दश सीधे दिलाने लगे। प्रभु भक्तवत्सल ने ऐसी लज्जा भक्त की राखी कि अनगिनत लूट चांदी सोने की होगई द्रौपदी के चीरकी नाईं कोई वस्तु न घटी सब द्रोही लज्जित हुए भक्तिपर सबको निश्चय हुआ।

कथा वारमुखी की ॥

एक नगर वलाद दक्षिण देश में वारमुखी बड़ी धनवाली रहती थी। उसके द्वार पर एक वृक्ष हरित छाया नीचे सुन्दर वेदी बड़ी विमल बनी हुई रही। एकदिन साधु

लोग टिकगये। संध्या के समय वारमुखी द्वारपर निकली, देखा विचार किया कि मेरा नाम सुनेंगे तो साधु उठ जायँगे। अपने घर में छिपगई और रात के समय कुछ मोहर रुपैया एक थाली में रखकर भेंट लेकर साधुओं को दण्डवत् किया। साधुओं ने जब सब वृत्तान्त जाति का व धन का सुना तब उपदेश दिया कि एक मुकुट बनाकर रङ्गनाथ की भेंट कर तब धन शुद्ध होजायगा। तब उसने तीनलाख रुपये का एक मुकुट जड़ाऊ बनवाया और बड़ी प्रीति व विश्वास से नाचतीगाती बाजे बजवाती मुकुट लेकर चली। जब श्रीरङ्गनाथ के मन्दिर के समीप पहुँची तब रजोधर्म होगया। तब शोक से विकल होकर गिरपड़ी उसके प्रेम को अन्तर्यामी प्रभु ने देखा तो पुजारियों को आज्ञा हुई उन लोगों ने सामने प्रभु के पहुँचा दिया जब मुकुट पहिनाने को हाथ उठाया तो सिंहासन ऊँचा तिससे हाथ न पहुँचा, सोचती ही रही तबतक रङ्गनाथजी ने अपना शिर झुका दिया उस बड़भागिनी ने पहिनादिया और महाबड़भागिनियों की गणना में विख्यात हुई। अहो धन्य है कि एक क्षणमात्र के सत्संग की यह महिमा है। हे मेरे कठोर मन! तुमको भी धन्य है कि ऐसे चरित्रों को लिख पढ़के भी कोमल होकर प्रभु की ओर सम्मुख न हुआ।

कथा तिलोकजी की ॥

तिलोकजी जाति के स्वर्णकार पूरबदेश के एक नगर में हुए। भगवद्भक्तों की सेवा में बड़ी प्रीति रही, जो कुछ उद्यम में लाभ होता सो सेवा में लगा देते रहे। उसदेश के राजा ने लड़की के विवाह समय बहुत रुपैया गहना बनाने को दिया सो सब साधुसेवा में उठा दिया। तगादा हुआ तब आज काल्ह करके जैसी सुनारों की चाल है टालते गये। जब सम्मुख पहुँचा तब प्रभात को देना निश्चय करके चले आये, साधु आये उनकी सेवा में लगे। रात को राजा का डर हुआ भोरही एक जङ्गल में छिपकर बैठ रहे। भगवत् अपने दासों की लज्जा रखने वाले सब गहना तिलोकजी का रूप धर राजा के पास लेगये। इनाम लेआकर तिलोकजी के घर महोत्सव करके साधु ब्राह्मणों को भोजन कराया। प्रसाद लेकर तिलोकजी को जाकर दिया, तिलोक के घर महोत्सव हुआ तुमको प्रसाद है, उन्होंने पूछा कौन तिलोक? जवाब दिया जिसके बराबर तिलोक में कोई नहीं, समझ गये प्रभु के चरित्र हैं। घर आये साधुसेवा व भजन सुमिरन में मग्न हुए।

कथा तिलोचनदेव की ॥

तिलोचनदेव वैश्यवर्ण चेले ज्ञानदेव के भगवद्भक्त विख्यात हुये। विष्णुस्वामी संप्रदाय के थे, साधुसेवा में बड़ा प्रेम रहा, एक स्त्री व आप दो ही रहे चिन्ता करते रहे कि एक चाकर ऐसा मिलता कि साधुओं के मन की जान-जान सेवा करता। भगवत् आप एक टहलुआ का रूप बनाकर टूटीजूती फटी कमली से आन पहुँचे। तिलोचनजी ने उनका घर मां बाप सब पूछा तब उत्तर दिया माँ बाप घरबार कुछ

नहीं रखता, टहलुआ हूँ, पाँच सात सेर खाता हूँ, चारोंवर्ण की पद्धति मेरे हाथ में है, भक्तों की सेवा अच्छी कर सकता हूँ, अन्तर्यामी नाम है। तिलोचन बहुत आनन्द हुये नहलाकर कपड़े बदलाकर रक्खा। सेवा भक्तों की सौंपी, स्त्री से भोजन को बहुत समझायकै दृढ़ाय दिया। अन्तर्यामी ने सब प्रकार से साधुओं की सेवा ऐसी करी कि तिलोचनजी का नाम विख्यात हुआ। तेरह महीने इसी प्रकार से व्यतीत हुये, एक दिन तिलोचनजी की स्त्री परोसिन के घर गई। उसने दुर्बलता का कारण पूछा, इसने कहा कि रातदिन आटा पीसते रोटी पोते गत होता है, मेरे स्वामी ने एक टहलुआ रक्खा है, बहुत खाता है। इतना मुख से निकलते ही अन्तर्यामी अन्तर्द्धान होगये, इसहेतु कि पहले दिन बहुत भोजन का गिल्ला होनेपर नहीं रहने का प्रबन्ध करलिया था। पीछे तिलोचनजी शोकयुक्त हुये, तीन दिन बिना अन्नजल पड़े रहे, तब आकाशवाणी हुई कि तिलोचनजी तुम्हारे मनका हेतु बूझकर वह टहलू मैं था, जो तुम्हारी इच्छा अबभी हो तो हमको अङ्गीकार है तब तिलोचनजी को बड़ा पश्चाताप हुआ, सन्तों ने समझाया सेवा स्मरण भगवत् की करने में लीन हुये।

कथा जस्सूस्वामी की ॥

जस्सूस्वामी रहनेवाले दुआबे गङ्गा व यमुना के बीच भगवद्भक्त हुये, खेती से जो लाभ हो सो साधुसेवा में उठादेते। एक समय चोर उनके बैल चुरा ले गये, भगवत् ने जैसे व्रज में वैसेही बछरा बालक रचकर ब्रह्मा का मोह दूर किया, तैसेही बैल जस्सूस्वामी के यहां प्राप्त करदिये। फिर चोर सब आये यहाँ देखा कि वही बैल हैं, तब घर दौड़ गये वहाँ वही बैल देखा, फिर दौड़ आये यहाँ वही देखा। कईबार दौड़ तब चकित होकर स्वामी से सब वृत्तान्त कहा, स्वामी ने कहा ये भगवत् के चरित्र हैं, तुम अपना काम करो हम अपना काम करते हैं। चोरों को दृढ़ विश्वास हुआ बैल लाकर स्वामी को दिये तब माया के बैल गुप्त होगये। वे चोर चोरी का धंधा छोड़कर स्वामी के चेले होगये और भगवद्भजन करने लगे।

कथा रामदासजी की ॥

रामदासजी रहनेवाले व्रज के परमभागवत और साधुसेवी ऐसे हुये जिसप्रकार कमल सूर्य को देखकर फूलता है इसी प्रकार हरिभक्त को देखकर प्रसन्न हुआ करते थे। एकबेर कोई साधु रामदासजी की बड़ाई सुनकर आया, पूछा रामदास कहाँ हैं? रामदासजी उठे और उस साधुके चरण धो चरणामृत लेकर विनय किया कि रामदास भी आयाजाता है। आप भोजन प्रसाद करें साधु ने कहा हमको रामदास से मिलना है, तब विनय किया कि रामदास यही सेवक है। साधु बहुत प्रसन्न हुआ चरणों को पकड़ लिया। रामदासजी की लड़की के विवाहमें पकवान बनके धरा था साधुकी जमात आगई, ताला तोड़कर साधुओं को भोजन करायदिया साधुसेवा व बिहारीलाल-जी के स्मरण-भजन में सारा वयक्रम व्यतीत किया।

कथा सन्तभक्त की ।।

सन्तभक्त रहनेवाले जोधपुर के भगवद्भक्त साधुसेवी हुये । गांवों में से मांगलाते, साधुसेवा करते विख्यात होगये । एकदिन साधुआये, स्त्री सन्तभक्त की घरमें रही, पूछा सन्तभक्त कहाँ हैं? उसने उत्तर दिया चूल्हे में हैं। साधुओं ने सुनकर राह ली, उधर से सन्तभक्त जो माँगने गये थे आतेरहे । वहांसाधुओं ने पूछाकहाँ गये रहे ? सन्तभक्त की स्त्री ने जो उत्तर दियारहा सो सेवा के प्रभाव करके हृदय विमल होरहा था जानगये थे, सोईबात बोले कि चूल्हे में गये थे । साधु चकित हुये तब कहा कि चूल्हे में जानेसे यह तात्पर्य है कि प्रभातही से साधुओं को रसोई की चिन्ता होती है कि कब होगा कि उनका सीथ प्रसाद मुझको मिलेगा । साधुलोग सुनके बहुत आनन्द हुये उनके घर गये भोजन, भजन, सत्संग के सुख में मग्न हुए ।

कथा सेनभक्त की ।।

सेनभक्त जात हज्जाम चेला स्वामी रामानन्द के रहनेवाले माधवगढ़ के ऐसे प्रेमीभक्त हुये कि जैसे गऊ अपने बछड़ेकी पालना करती है, इसी प्रकार उनकी पालना और सहाय प्रभुने करी । वृत्तान्त यह है कि सेन साधुसेवी रहे एकदिन तेल लगाने राजा के जाते रहे, बाट में साधु मिलगये, उनको अपने घरपर लाकर भोजनआदि सेवा में लगे । राजा का भय कुछ न रहा, जब राजा की सेवा का समय हुआ तब आप भगवत् सेनभक्त का रूप धरके राजा की सेवा तेलमर्द्दन आदि करके राजा को प्रसन्नकर चलेआये । पीछे सेन पहुँच विलम्ब होनेका अपराध क्षमा कराने लगे, भगवत्स्पर्श होने से राजा ने प्रभाव भक्ति का जानलिया । सेन के चरणों में गिरा उसका चेला होकर भजन करने लगा अबतक उनके वंशमें सब सेनवंशके चेले होते हैं ।

कथा सदाव्रती की ।।

साहूकार सदाव्रती वैश्यवर्ण परम भगवद्भक्त हुये साधुसेवा बड़ी प्रीति व विश्वास से किया करते रहे । एक साधु उनके घर पर टिका था, साहूकार का एक छोटा लड़का कि जिसकी साधु के साथ प्रीति होगई उस साधु के पास खेला करता था, उसको एक दिन साधु जंगल में लेजाके मारकर गाड़ दिया, जब सांझ तक लड़का न आया तब उसकी मां ने पुकार करी । ढूंढ़ने दौड़ी तब एक संन्यासी ने साहूकार को वह जगह जहां लड़का गाड़ा रहा दिखा दी और कहा जो साधु तुम्हारे घर में रहता है उसीने यह कर्म किया है । साहूकार ने मरना लड़के का अपने कर्म का फल समझ दण्ड देना उस साधु को सेवाधर्म से अयोग्य जानकर उस बात के छिपाने की यह युक्ति बिचारी कि उसी संन्यासी को पकड़ा कि तैंने ही मारा है । जब संन्यासी व्याकुल हुआ तब साहूकार ने कहा कि यह बात मत कह और इस नगर से चलाजा तो तुझको छोड़देंगे उसने अंगीकार किया तब छोड़ दिया जब साहूकार ने उस साधु

को लज्जित देखा तब उसके संकोच मिटाने के हेतु अपनी स्त्री से विचार पूछा उसने कहा कि जो लड़की बिनब्याही है उसके साथ ब्याह दी जाय तो भरोसा साधु के रहने का है दूसरा उपाय देख नहीं पड़ता। साहूकार अपनी स्त्री पर बहुत प्रसन्न हुआ और धन्य मानकर उस साधु को बुलाकर पहले अपने भाग्य का खोंट व हरि की इच्छा की बात सब कहकर अपना विचार था सो कहा। वह साधु अपने अपकर्म से महाग्लानि को प्राप्त रहा, बोला हमारे ऐसे अधर्म पर ऐसी दया अयोग्य है, यातना के साथ बध उचित है। साहूकार ने समझा-बुझाके सावधान करके अपनी लड़की से ब्याह कर दिया। यह वृत्तान्त व यश संसार में फैला तो साहूकार के गुरु ने भी भगवत् की आज्ञा से आयके साहूकार का घर पवित्र किया। साहूकार ने सेवापूजाको बड़े आनन्द व हर्ष से किया। गुरुने पूछा कि तुम्हारा लड़का कहां है साहूकार ने जवाब दिया कि थोड़े दिन हुये मर गया। पूछा कैसे मरा ? साहूकार बोला कि हे महाराज ! आप तो जानते ही हैं कि संसार इस जगत् का नाम है, मृत्यु का कौन कारण वर्णन करूँ। गुरुने उसी की परीक्षा करी तब लड़का धरती से निकलवाकर जिला दिया, सब लोगों को विश्वास भक्ति और साधुसेवा का हुआ।

कथा केवलकूवां की ॥

केवलकूवां जाति के कुम्हार ऐसे परमभक्त साधुसेवी हुये कि अपने कुल को पवित्र करके भगवत् को प्राप्त कर दिया। एकबेर उनके घर साधु आये घर में कुछ न था, ऋणभी न मिला, नितान्त कुवां खोददेने के प्रबन्ध पर एक दूकानदार ने सामग्री रसोईं की दी। साधुओं की सेवा करी जब कुवां खोदने लगे तब दशबीस गजपर रेत निकला टूटके सब केवलजी पर पड़ा। मरा जानकर सबलोग चलेगये कि हजारों मन मिट्टी के नीचे कब जीते होंगे, एक मास पीछे किसी ने वहां शब्द राम राम सुनकर गाँव में सबसे कहा। सब गांव आया हाथों-हाथ मिट्टी टालकर देखा केवलजी आसन लगाये बैठे हैं, एक लोटा जल आगे धरा है एक ओर महीने दिन के भोजनके पनवाड़े हैं। बाजा बजाते घर लाये मिट्टी गिरने से कुछ कुबड़े होगये, तबसे केवलकूवां विख्यात हुये। किसी समय साधु भगवन्तमूर्ति स्थापन करने के लिये जाते रहे, केवलजी के घर उतरे वह मनोहर रूप देखकर केवलजी को इच्छा हुई कि हमारे यहाँ रहते तो अच्छा था। प्रभात को साधु मूर्ति को उठा थके न उठी, वहीं रही, स्थापना करके सेवा करने लगे। झसेरागांव जहाँ केवलजी रहे वह मूर्ति विराजमान है अब तक केवलजी के घर में है। अपने भक्त के हृदय की प्रीति जानकर रह गये। इससे जानराय उस मूर्ति का नाम है। एकबेर केवलजी को शंख चक्र लेनेको द्वारावती जानेकी इच्छा हुई, भगवत् ने आज्ञा की तुमको घर बैठे सब हो जायगा कहीं मत जाओ। शरीर पर सब चिह्न होगये, ऐसे ऐसे कितने ही प्रभाव केवलजी के हैं। समुद्र व गोमती के बीच में बड़ी रेती है, जब लहर आवे तब समुद्र-गोमती

मिलकर रेती जल में होजाय फिर खुलजाय। एक समय लहर आना बन्द होगया रेती खुली रहगई हवा से रेतीके उस देशके लोग दु:खी हुये। केवलजी की माला गई तबसे समुद्र गोमती में मिलनेलगा, यह प्रभाव देखकर बहुत लोग चेले केवलजी के हुये। भक्ति की रीति उस देश में चली, एक दिन केवलजी के घर साधु आये उनके निमित्त उनकी स्त्री ने सूखी रोटी बनाई। संयोगवश उस स्त्री का भाई उसी समय आगया, उसके निमित्त खीर बनाई। केवलजी ने देखकर उसको पानी लाने को भेजा, खीर साधुओं को खिलादी, स्त्री ने आनकर क्रोध किया, उसको घर से निकाल दिया। उसने दूसरा खसम करके बेटा-बेटी जन्माया। एक समय अकाल पड़ा तब अन्न की व्याकुलता से केवलजी के यहां आई, देखा भंडारा चेत रहा है। केवलजी को दया आई बोले कि अरी निगोड़ी! जो खसम करना अंगीकार था तो ऐसा खसम क्यों न किया जैसा मेरा खसम है कि तेरा खसम भी जिसका भिखारी हुआ। केवलजी साधुओं के आने जाने की राह में झाड़ू देना उसको कह दिया, सुकाल हुआ तब बिदा कर दिया।

कथा ग्वालजी की ॥

ग्वालजी परमभक्त साधुसेवी हुये अपने उद्यम से जो कुछ लाभ होता साधुओं की सेवा करते। एक समय वन में साधुसेवा में रहे, उनकी भैंस चोर लेगये, घरमें अपनी मा से कहा कि एक ब्राह्मण घी के दाम समेत भैंसको देनेका प्रबन्ध करके लेगया है। मा उनकी जानगईपर कुछ न बोली, पुत्रस्नेह करके एकदिन दीपदान को चोरों ने भैंसके गलेमें चांदी की हँसुली डाली। भगवत् जोकि ब्राह्मणों के ब्राह्मण हैं रस्सी तोड़कर भैंस को ग्वाल की हँसुलीसमेत पहुँचाय गया।

कथा गोपालजी की ॥

गोपालजी भक्त कृष्ण उपासक जयपुर के राज्यमें हुये। साधुसेवा की उनकी बड़ी ख्याति हुई तब उनके कुल में कोई विरक्त होगया रहा सो परीक्षा लेने को आया। अच्छे प्रकार उनकी सेवा करी, घरमें भोजन कराने को लेगये, उन्होंने कहा स्त्री को हम नहीं देखते। गोपाल ने कहा सब अलग होजायँगी, भोजन करने लगे तो झरोखे से भक्तकी स्त्री दर्शन करने लगी। तब विरक्त ने एक तमाचा गोपाल के मुँहपर एक ओर मारा दूसरी ओर बाकीरहा उसे फेरकर बिनय किया कि इसको भी पवित्र करिये वह विरक्त बोला कि ऐसेही वंश से कुलका उद्धार होता है।

कथा गोपालविष्णुदासजी की ॥

गोपालजी रहनेवाले बाबुली काशी के समीप व विष्णुदास रहनेवाले काश्मीर देश दक्षिण के दोनों गुरुभाई भक्तों की सेवा परमभाव से करते थे और जो कुछ धर्म अच्युतगोत्रके कुल को चाहिये सो दोनों भाइयों ने ऐसा पालन किया कि विख्यात होगये। भण्डारे महोत्साह में जो कोई उनको बुलावे तो गाड़ी में सामग्री

भरके लेजाते कि कोई बात की घटी आने से भण्डारेवाले की निन्दा न होय। गुरु उनके सिद्ध थे दोनों भाइयों ने विनय किया कि आज्ञा हो तो महोत्साह करें गुरुने आज्ञादी और बुलाने के निमित्त अपने चारों ओर जल डालकर बोले कि तुम सामा महोत्साह की बनाओ जो दिन उत्साहका है उस दिन सबसाधु आवेंगे। गुरु के वचन पर निश्चयकर किसी को बुलाने को कहीं न भेजा सामग्री को इकट्ठा किया उस दिन सारे संसार के साधु पहुँचे। सबकी रीति मर्यादकी भण्डारा बड़ी धूमधाम से हुआ, पांच दिनतक भांति भांति के भोजन करवाये। सबको वस्त्र द्रव्य भेंट किया गुरुने आज्ञा की कि इस मेलेमें नामदेवजी व कबीरजी भी आये हैं पता बतलादिया व कहा कि दोनों महापुरुषों का दर्शन कर आओ। दोनों भाई दौड़े नामदेवजी का चरण प्रीति से पकड़लिया नामदेवजी कृपाकरके बोले कि जहां भगवद्भक्तों की प्रीति नहीं तहां हम नहीं जाते, जहां प्रीति व सेवा भक्तों की होती है तहां निश्चय करके आते हैं। तुम्हारी साधुसेवा देखकर बहुत प्रसन्न हुये अब तुम कबीरजी का भी दर्शन करो तब दोनों भाइयों ने राह में कबीरजी का दर्शन किया उन्होंने भी वैसेही कृपा की। बिदा होकर दोनों भाई गुरु के निकट आये, भगवत् से मिलनेका दृढ़ अवलम्ब साधुसेवा को समझ कर स्मरण भजन करते रहे।

कथा गणेशदेई रानी की ॥

रानी गणेशदेई मधुकरसाह राजा ओड़छे की धर्मपत्नी भगवद्भक्ति में अद्वैत रही। राज्य से जो मिलै साधुसेवा में लगाती। एक साधु ने धन के ठिकाने की जगह रानी से पूछी रानी ने कहा साधुसेवा धन्य है, तिसकर रानी की जानु में छुरी मारकर वह साधु भागगया। कितने दिनों रानी बहाना रजोधर्म व बेचैनी शरीर की करके राजा की सेजपर न गई। इस हेतु कि यह घाव देखकर राजा सब साधु से भाव घटादेगा। नितान्त राजा के पास गई देखकर राजा ने पूछा तब वृत्तान्त कहा राजा अतिप्रसन्न हुये अपना भाग्य सराहा।

कथा लाखाभक्त की ॥

लाखाभक्त हनूमान्‌वंश में रहनेवाले मारवाड़देश के हंस के सदृश हुये। राम-मन्त्रोपासक साधुसेवी विख्यात हुये। अकाल पड़ा साधुओं का आना-जाना बहुत हुआ, दूसरी जगह कहीं जा बैठनेका विचार किया। भगवत् ने स्वप्न में कहा कि इसी जगह रहो प्रभात एक गाड़ी गेहूँ और एक भैंस आवेगी। गेहूँ तो कोठी में रखना जितना प्रयोजन होगा उतना निकलता रहेगा घटेगा नहीं व घी, दूध, मट्ठा भैंस से होगा। जब प्रभात हुआ तब गेहूँ व भैंस एक आदमी पहुँचाय गया। लाखा शुचि जीते होकर साधुसेवाकरते रहे, उस भैंस व गेहूँ के पहुँचाने के हेतु भगवत् ने यह चरित्र किया कि किसीने किसीको बोलमारा कि देखेंगे तू गेहूँ व भैंस लाखाभक्त को दे आवेगा, वही देगया। फिर लाखा साष्टाङ्ग दण्डवत् करते एक सुमिरणी भेंट

लेकर जगन्नाथजी गये। थोड़ी दूर जब मन्दिर रहा जगन्नाथराय ने पालकी भेजकर दर्शन दिये। सुमिरणी अङ्गीकार की, कुछ दिन पुरी में रहे। एक लड़की कुँवारी रही साधुसेवा के लालच ब्याह में चित्त उठा बिना। रुपया कौन करे? जगन्नाथजी ने आज्ञा दी हमारे भण्डार से लेकर ब्याह करो। अङ्गीकार न किया पुरी से चल खड़े हुये तब जगन्नाथजी ने एक राजा को स्वप्न दिया तब उसने एक हजार मुद्रा भेंट किया। भगवत् आज्ञा जान अङ्गीकार किया, घर आनिकै लड़की का ब्याहकर जो बचा साधुओं की सेवामें लगाया।

कथा रसिकमुरारि की ॥

रसिकमुरारिजी परमभक्त हुये, सेवा-पूजा उत्साहसहित करते व प्रिया-प्रियतमके रङ्गमें रँगे युगलछबि-माधुरी के आनन्द में मग्न रहा करते। सदा चरणामृत पीते जल नहीं। एक समय भण्डारा हुआ चरणामृत सन्तों का लिया स्वाद न पाया कारण ले आनेवाले से पूछा तो एक कुष्ठी साधु का चरणामृत घृणा से नहीं उतारा था उसका भी चरणामृत उतर आया तब स्वाद पाया। एक साधु ने अपने सोंटेका भी पारस मांगा न पाया तब जाकर पत्तल आधीखाई रसिकमुरारिजी के शिर पर मारी। उससमय बारह राजा चेले मुरारिजीके उसको मनाने को उठे। सबको मना करके आप जाकर विनय करी कि आज सीथ प्रसाद कृपाकर आपने दिया और दिन चरणामृत मिलता था, यह कहकर कई पारस दिलवाये। एकबेर बगीचे में साधु उतरे, आपके जानेपर एक साधु हुक्का पीता रहा, संकोचकर छिपाया, आपने देखकर आदमियों से कहा हुक्का भरला दर्द होता है। जब आया तब थोड़ा पीकर उस साधु को दिया, उसे साधुने पिया। एक बेर जागीर के गांव दोचार रहे सो राजा ने निकाल लिये। श्यामानन्द गुरुदेव ने लिखा जिस दशामें हो वैसेही आओ, भोजन कर उठे थे जूठेही हाथमुँह गुरु के पास पहुँचे। गुरु ने प्रसन्न होकर राजा के पास जानेकी आज्ञा दी। जब राजा से भेंट करने चले पालकी में तब राजा ने एक बौड़हा मत्तहाथी राह में छुड़वा दिया। सब भाग गये कहार भी भागे तब हाथी से कहा कि हरेकृष्ण, हरेकृष्ण क्यों नहीं कहता। सुनतेही वह हाथी शोरगुल सब छोड़कर चरणोंपर मस्तक झुकाकर आँखों से जल प्रेम का गिराने लगा। गोसाईं ने माला गले में पैन्हाकर भगवन्नाम कान में उपदेशकर गोपालदास नाम रख दिया। राजा सुनके दुष्टता छोड़ चरणों में आनकर गिरा। अपराध क्षमा कराय चेला हुआ, गाँव छोड़ दिये और भी दिये। हाथी साधुसेवा करनेलगा, बनजारों की जिन्स लाकर भण्डारा महोत्साह करता। सबकी हानि का वृत्तान्त जब पहुँचा तब गोसाईंजी ने हाथी को समझा दिया। तबसे पाँच सात सौ की जमात साधुओंकी लेकर महन्त के डौल से रामत करने लगा, जहाँ पड़ै तहां भेंट व सामग्री सबकोई पहुँचाय देते, यह वृत्तान्त संसार में विख्यात हुआ। देशके आमिल ने भी सुना, पकड़ने का उपाय किया, हाथ न आया एक कोई

साधु का रूप बनाकर सहज में ले आया। कारागार में बन्द किया, वह गोपालदास बिना भगवत्प्रसाद व सीथप्रसाद के कुछ और नहीं खाता रहा। तीनदिन बिन अन्नजल खड़ा रहा, आमिल ने कहा कि गङ्गाजी में ले जाव, गङ्गाजल तो पान करेगा जब गङ्गा में गया तो शरीर को छोड़ परमधाम को गया। यहां एकबात अतिकोमल व सूक्ष्म भी है, एक कारण करके वर्णन नहीं करसकता सब कोई अपने अभिलाष व विश्वास के अनुकूल समझ लेवें गो-ब्राह्मण व हरिभक्त और हरिभक्तों की कृपा।

कथा मनसुखदास की ॥

मनसुखदासजी जाति कायस्थ ऐसे भगवद्भक्त हुये जिनको भगवत् ने साक्षात् दर्शन दिये। साधुसेवा में बड़ी प्रीति रही, कंगाली आयगई उपवासों से दिन कटते थे। ऐसी दशा में किसी दुष्ट के बहकाने से एक साधु ने मिठाई का भोजन माँगा, तब स्त्री से आपने उपाय पूछा। उसने नाक में से नथ उतारकर हाथपर रखदी, गहने धरके साधुसेवा की। भगवत् मनसुखदास के रूपसे रुपया देकर नथ बनियां के यहाँ से लाये, वह बड़भागिनी चौका देती रही बोली पहिनादेव। प्रभुने श्रीहस्त से पहिनाई, मनसुखदास से स्त्री की भक्ति अधिक जानकर स्त्री को दर्शन दिया, क्योंकि ऐसी दरिद्रता में तनु में केवल एक गहना, सो भी नाक का जिस करके सुहागिन कहलाती है सो उतार दिया, साधुसेवा को किया तो भगवत् क्यों न दर्शन दें। जब मनसुखदास ने देखा सब वृत्तान्त सुना तो जाना भगवत् के चरित्र हैं सब बातें समझकर आनन्द में मग्न हो गये। अब अपने भाग्यको सोचने लगे, स्त्री के भाग्य को धन्य माना, अन्नजल छोड़कर दर्शन की अभिलाषा कर भजन करनेलगे। स्वप्न हुआ काशी में दर्शन होगा, वहाँ जाकर काशी में भजन करने लगे चतुर्भुजरूप से प्रभु ने दर्शन दिये। वर यही मांगा कि यही रूप मन में बसा रहे अन्त में उसी रूप को प्राप्त हुये।

कथा हरिपाल निष्किञ्चन की ॥

हरिपाल ब्राह्मण ऐसे भक्त और साधुसेवी हुये कि धन सब साधुसेवा में उठाय दिया। ऋण से जहांतक मिला वह भी साधुसेवा में उठाया, भगवद्भक्तों को खिला दिया। निष्किञ्चन विख्यात हुये तब चोरी ठगी करने लगे। जिसको तिलक कण्ठी अथवा भक्तजानें तिससे न बोलें। भगवत्सेवी मुख्य जानते तिसको हाथ न लगाते। एक जमात साधुओं की आई टिकाकर भोजन की सामग्री की चिन्ता में निकले। कुछ हाथ न लगा विकल हुये, भगवत् को भी भक्तों के विकल होने से चिन्ता हुई। द्वारका से रुक्मिणीजी समेत चले, श्रीकृष्णजी साहूकार के रूप रुक्मिणी साहूकारिणी के रूप से आये। निष्किञ्चनजी से कहा कि उस गांव तक पहुँचा देव एक रुपया दिया। निष्किञ्चनजी तीर कमान लेकर चले पन्थ में सोचने लगे कि यह साहूकार अच्छा चिकना-चांदना मोटाताजा है और भगवत् से विमुख दिखाई पड़ता है कि तिलक माला नहीं रखता, इसका माल लेना चाहिये। जङ्गल में पहुँचे तब तरवार

खींच डरवाकर सब आभूषण उतरवा लिया। एक छल्ला साहूकारिणी की अँगुली में रह गया, निष्किञ्चनजी उसको भी बल करके उतारने लगे, साहूकारिणी बोली अरे निगोड़े ! तू बड़ा बेदर्द व कठोर है कि मेरा सारा गहना ले लिया अब एक छल्ले के कारण मेरी अंगुली मरोड़ता है। निष्किञ्चनजी बोले चल बावली, कहां की कठोरता और कोमलता लाई है तेरा खसम तुझको सौ छल्ले गढ़ा देगा मैं इस छल्ले बिना दश हरिभक्तों की सेवा कहां से करूँगा ? यह सुनते ही आप प्रभु प्रकट हो छाती से लगाकर राजा यह पदवी निष्किञ्चन को देकर अन्तर्द्धान हो गये। अब विचारना चाहिये साधुसेवा की महिमा को जिसके प्रभाव करके पापकर्म पुण्यरूप और भगवत् जो काल का भी काल और भय का भी भय है सो वशीभूत होकर भक्त के मनोरथपूर्ण करने को निजधाम छोड़कर आता है।

कथा हरीराम की ॥

हरीरामजी ऐसे भगवद्भक्त रहे कि भजन के आगे सर्वसाधन तुच्छ समझते रहे। बड़े प्रतापी व बुद्धिमान्, चतुर व प्रेम की मूर्ति रहे और प्रिया-प्रियतम के ध्यान में दिन रात व्यतीत होता रहा व साधुसेवा का वर्णन उनका कौन करसके ? एक साधु की धरती एक संन्यासी ने राजा के समीप बैठने व राजा की मित्रता के गर्व से छीनली। उसने राजा के सम्मुख दुःखनिवेदन किया तो धरती न मिली और धक्के पाये तब उस साधु ने हरीरामजी से वृत्तान्त कहा। हरीरामजी ने राजा के आगे जाकर वृत्तान्त निवेदन कराया, जब न माना तब वचन कठोर भगवद्भक्तों का व दुष्टों का हिरण्यकशिपु आदिका कह धरती साधु को दिलाई। सच है कि सन्तजन काल, यम किसी से नहीं डरते, राजा की कितनी बात है।

कथा रानी व राजा की ॥

एक राजा परमभागवत साधुसेवी ऐसा हुआ कि साधुओं की भीड़ उसके यहां बनी रहती थी। अपने हाथ सेवा करता, एक महन्त परमभक्त और ज्ञानी से बड़ी प्रीति हो गई, जाने नहीं देते। एक वर्ष पर्यन्त महन्त टिके रहे प्रभात जाने का निश्चय किया राजाने बहुत विकल होकर रानी से कहा। रानी ने देखा कि महन्त के जाने से राजा नहीं जीवेगा, तब विचार किया कि लड़के को विष दे कि इस हेतु कुछ दिन महन्त ठहर जायँगे। सोई किया राजमन्दिर से महारुदन की ध्वनि हुई, महन्त भी दौड़कर गये लड़के को श्याम देखा जाना कि विष दिया है। वृत्तान्त पूछते पूछते राजा ने कहा तब महन्त उनके प्रेम को समझकर बेसुध होकर मग्न हो गये। सब साधुओं को बुलाकर भजन प्रारम्भ किया। थोड़ी विलम्ब में लड़का जी उठा, खेलने लगा फिर महन्त साधुओं को बिदाकर आप राजा-रानी के प्रेम में बँधकर रहगये। सच है जो जन भगवद्भक्तों की महिमा और सत्संग के सुख को जानते हैं उनको वियोग भगवद्भक्तों का करोड़ नरक के दुःख से भी अधिक दुःख देने वाला है।

कथा एक राजा की लड़की की ।।

एक भक्त साधुसेवी राजा की लड़की जो ऐसे विमुख के साथ ब्याही गई कि वह कुछ न जानता था कि भगवत् व भक्ति व साधु किसको कहते हैं, अपनी ससुराल में गई तब अतिविकल भई, साधु का दर्शन दुर्लभ हुआ, तब एक लौंड़ी से कहा कि जब साधु आवैं तब कहना । एक जमात साधुओं की वाटिका में उतरी, सुनकर उस लड़की ने अपना दो तीन वर्ष का लड़का रहा, उसको विष दिया मरगया । राजा, उसका खसम रोदन करनेलगा, तब वह लड़की बोली कि मैके में हमने देखा है, साधु के चरणामृत से लड़का निस्संदेह जियेगा । उसने कहा साधु कैसे होते हैं तब लौंड़ी के साथ कर दिया । उसने दण्डवत् आदि की विधि जनादिया, वह जाकर साधुओं को दण्डवत् बन्दन कर साधुओं को घर लाया, उस लड़की ने दर्शनकर धन्य माना साधुलोगों ने चरणामृत मुख में लड़के के देकर भगवत् ध्यान व भजन प्रारम्भ किया, लड़का उठ बैठा वह राजा भगवद्भक्त होकर उस देश को भक्त किया । देखा चाहिए सत्संग की महिमा को एक लड़की बड़भागिनी के प्रताप से कितने लोगों का उद्धार हुआ और भगवद्भक्त जन्म व मरण का दुःख दूर करके लाखों करोड़ों को अमर करदेते हैं, एक लड़का जिला दिया तो क्या बड़ी बात है ।

कथा नीवांजी की ।।

नीवांजी राजपूत ऐसे भगवद्भक्त साधुसेवी हुये कि जो भक्त उनके घर आवें अतिप्रेम से उनको दण्डवत् कर चरणों को धोकर अपने घर ठहराते, जगह २ कथा बैंठाकर अपनी मधुरवाणी और सेवा से प्रसन्न रखते । इसी प्रकार जबतक रहे वयक्रम भर उनके प्रेम को भगवत् ने निबाहा ।

कथा कृष्णदासजी की ।।

कृष्णदासजी गलताजी जयपुर के राज्य में भगवद्भक्त हुये । रघुनन्दन स्वामी के चरणकमल में मन भँवर की भाँति लगाये रहते । सुख, दुःख, शत्रु, मित्र बराबर जानते, स्त्री को नहीं देखते, अभ्यागत की सेवा करते । कलियुग को मानो जीतलिया जो दधीचि ऋषीश्वर ने किया सो किया । एक दिन गुफा में बैठे भजन करते द्वारपर व्याघ्र आया, अभ्यागत जानकर अपने जानु का मांस काट के डालदिया । भगवत् ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया, विचार करना चाहिये इस धर्म को अब हमलोग थोड़ा सा पानी और चुटकी आटा देते रोते हैं ।

कथा राजाबाई की ।।

राजाबाई धर्मपत्नी रामराजा पुत्र खेमाल भगवत् और गुरु और भक्तों की ऐसी भक्ति व सेवा करनेवाली हुई कि सन्तोंने कृपा करके दोनों लोक से निर्भय करदिया और जिसने अपने स्वामी की शिक्षा के अनुकूल आचरण किया और नवधा भक्ति को मुख्यतर समझकर अन्यधर्म सब छोड़ दिये और उस भक्ति की

प्राप्ति का हेतु सिवाय भगवद्भक्तों की प्रीति के दूसरा न जानकर सार असार के मूल तत्त्वको अच्छे पहुँचकर भगवत् की अनन्यदास्यता में दृढ़ हुई। उदारता इतनी रही कि एकबेर अपने पति के सङ्ग मथुराजी गई, वहाँ सब धन जो पास रहा साधु ब्राह्मणों को दे दिया, कुछ राहके निर्वाह को भी न रक्खा। उसी समय नाभाजी कर्त्ता भक्तमाल के आगये, हाथों में केवल कड़े एकसौ पांच रुपये के दाम के रहगये थे, जो बेचकर घर जाने का विचार किया था, उसको रानी साहबने भेंट करदिया और राजा से कहा आजतक शरीर पर बोझरहा आज काम आया। राजा प्रसन्न हुये किसी प्रकार करके राजधानी पर पहुँचे; सत्य है कि जिसने साधुसेवा के समय कलह की चिन्ता की किया सो साधुसेवा क्या करेगा।

कथा नन्ददासजी की ॥

नन्ददास ब्राह्मण रहनेवाले बरेली के परमभक्त साधुसेवी हुये। खेती से जो लाभ होता साधुसेवा भगवत् उत्साह में लगादेते। एक दुष्ट विमुखने एक मरी बछिया उनके खेतमें डालकर उनको हत्या लगाई नन्ददासजी ने उसको जिलादिया, सबको भक्ति का निश्चय व विश्वास हुआ।

कथा हरिदासजी की।

हरिदासजी योगानन्द महाराज के वंश में परमभक्त हुये। वामनजी की भाँति उनकी भक्ति थोड़े ही काल में बढ़गई। साधु के अपराध कभी चित्त पर न लाये, भक्तों को गुरुतुल्य जानते, तिलक-माला से अत्यन्त प्रीति रही। रघुनन्दन महाराज के उपासक व गृह में रहने पर वैराग्य जनक महाराजके सदृश रहा।

कथा कान्हड़जी की ॥

कान्हड़ बिट्ठलदासजी के पुत्र जाति के चौबे, रहनेवाले मथुराके, भगवत् महोत्साह ऐसा करते रहे कि चारों वर्ण, चारों आश्रम और कङ्गाल व राजा सब इकट्ठे उस महोत्साह में होते रहे। सबका शिष्टाचार करते, कोई विमुख न जाता, चन्दन पान व वस्त्र से भगवद्भक्तों की सेवा सत्कार करते और समाज ऐसी होती मानो अमृत की वर्षा होती है। जब भगवद्भक्तों की सेवा सत्कार करके बिदा करते तो प्रेम में बेसुध होजाते रहे, सो कारण दो प्रकार का समझ में आता है। एक तो भक्तों का वियोग कि अपने को बड़भागी जानकर प्रेम में मग्न होजाते रहे और उसी महोत्साह में सब कोई इकट्ठे होकर नाभाजी जिन्होंने भक्तमाल रचना किया उनको गोसाईं पदवी दी थी।

कथा माधवग्वाल की ॥

माधवग्वाल ऐसे भक्त साधुसेवी हुये कि दिन-रात भगवद्भक्तों के सुख के हेतु चिन्ता रहती थी, व नवप्रकार कीनवधा भक्ति दशवीं प्रेमलक्षणा सोई मानसर है,

तिसके मराल थे सबकी भलाई की चाहना सदा भगवच्चरित्रों के स्मरण में रहते, क्षमाशील सबसे बराबर सबके मित्र व निर्मलचित्त प्रेम की खानि हुये।

कथा गोपाली की ॥

गोपाली गिरिधरग्वाल कि जिसका वर्णन वेषनिष्ठा में होगा तिसकी माता भगवद्भक्तों के पालने को यशोदा का अवतार हुई, मनमोहन महाराज से ऐसी प्रीति रही कि व्रजचन्द महाराज के माधुर्यरस और प्रेम भक्तिके रङ्गमें भरी हुई दिन-रात श्रीगोविन्द श्रीगोविन्द यही ध्वनि लगी रहती थी, सन्तों के चरणों में दृढ़ प्रीति रही।

निष्ठा चौथी।

माहात्म्य श्रवण जिसमें चार भक्तों की कथा ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमल की कमलरेखा को और कपिलदेव अवतार को दण्डवत् है कि जगत् के उद्धार के हेतु सांख्यशास्त्र का तत्त्व विचार करके फैलाया। भगवच्चरित्रों का सुनना, उद्धार व भगवत्पद प्राप्ति के हेतु और जबतक उन चरित्रों को न सुनेगा तो भगवत् में मन किस प्रकार लगेगा? ध्यान व मंत्र का जप और पूजा व मनन व व्रत व नेम आदि सब साधन का सम्बन्ध केवल श्रवण से है कि जब गुरु और शास्त्रों से सुना तब उसके अनुकूल साधन किया और अच्छे प्रकार विचार करके देखा जाता है तो सम्पूर्ण कार्य यह लोक व परलोक के श्रवण को पायकर प्रवर्तमान हुये व होते हैं। ब्रह्माजी को भगवत् ने सृष्टि रचने की आज्ञा दी तो कुछ न होसका, जब शब्द तप करने का सुना और उसके अनुकूल साधन किया तब इस संसार की रचना की। कोई मतान्तर वाले नादब्रह्म का सुननाही मुक्ति मानते हैं कि भागवत में इसका वृत्तान्त लिखा है और यहां उसके वर्णन का प्रयोजन नहीं समझा, क्योंकि यह पथ और वह इस पथ से अलग है। अभिप्राय यह कि बिना सुने कुछ नहीं होसकता और भगवत् के मिलने को तो सिवाय भगवच्चरित्र-श्रवण के और कोई मार्ग सुखसाध्य नहीं। महिमा सत्संग की जो ठौर-ठौर शास्त्र व पुराणों में लिखी है उससे यही तात्पर्य हैं कि भगवच्चरित्र सुने और शीघ्र भगवत्पद को प्राप्त हो। भगवत्-महिमा श्रवण-निष्ठा कि आप निज श्रीमुखसे वर्णन किया व पुराणों में ठौर ठौर लिखा है, हरिवंश में लिखा है कि जहां भगवत् कथा को सुनते हैं वहां वेद और सब शास्त्र प्राप्त रहते हैं, जिनको मुक्ति की चाहना होवे भगवत्-कथा सुनें। भागवत का वचन है कि जो भगवत्-कथारूपी अमृत को कर्णपुट करके पान करते हैं वे सब पापों को दूरकर भगवत्परमपद को जाते हैं, फिर भागवत में लिखा है कि जो कोई भाग्यहीन भगवत्कथा को छोड़कर निन्दित

सारहीन कथा श्रवण करते हैं वे लोग ऐसे हैं जिस प्रकार शूकर को विष्ठा में रुचि होती है और अच्छे प्रकार विचार करना चाहिये कि जो कोई भक्त हुये अथवा अब हैं व आगे होंगे वह सब प्रताप श्रवण का है। यद्यपि सुनना भगवच्चरित्रों का सब प्रकार मङ्गलरूप है परन्तु जो विधिपूर्वक विश्वास करके सुने तो उसका क्या कहना है, यह कि व्यासको भगवत्‌रूप जाने व हरिचरित्रों और उस शास्त्र में हृदय से प्रेम हो व सुनकर समझकर अच्छे प्रकार मनन करे और उसके अनुकूल बर्ते। भागवतकथा से तृप्ति न होय ऐसी प्रीति होवे हरिचरित्रों को नित नवीन समझे यह नहीं कि एकबार जो सुना उसके सुनने का क्या प्रयोजन है। पृथुमहाराज ने भगवच्चरित्रों के सुनने को दशहजार कान मांगे। भागवत से नवधाभक्ति में जो प्रथम श्रवण लिखा है सो यही अभिप्राय है कि बिना श्रवण भगवच्चरित्रों के भक्ति प्राप्ति नहीं होती, यद्यपि आपस के वार्त्तालाप में भगवच्चरित्रों का सुनना व बिष्णु पद आदि का श्रवण सब श्रवणनिष्ठा ही में प्राप्त होते हैं, पर दुष्टतर श्रवण वह है कि भगवद्भक्तों के सत्संग में चरित्र सुने जावें, किस हेतु कि उस श्रवण का साधन भी वहाँ प्राप्त होता है और जो कुछ संदेह व भ्रम होता है सो तुरन्त निवृत्त होजाता है अथवा पुराण आदि की कथा कराना यह भी अच्छी रीति श्रवण की है, किस हेतु कि आपसे आप सत्संग लाभ होता है, सो कथा कराने की रीति कहीं कहीं है पर जो लोग ऐश्वर्यवान् और सरदार और मुलाजिम सरकार हैं, उनकी कथा कराने का वृत्तान्त अद्‌भुत है। थोड़ासा लिखता हूं प्रथम तो भगवच्चरित्रों में किसी की प्रीति ही नहीं बरु कोई-कोई मन्दभागियों का यह वचन है कि साहब कथा सुनने से क्या होता है ? करणी प्रमाण है और उन दुष्टों असुरबुद्धियों को इस बात का विचार नहीं कि लिखना-पढ़ना व व्यवहार के काम करने व चतुराई सम्पूर्ण कार्य लेन-देन व कार्य सरकारी आदि सब श्रवण के अवलम्ब से उनके ज्ञान-ध्यान में आये हैं, तो जबतक भगवत् कथा न सुनेंगे तबतक भगवत् का रूप किस प्रकार से बुद्धि में आवेगा और किसी के कुल में यह वृत्तान्त अपनी आंखों से नहीं देखा कि कभी उनके कुल में कथा नहीं हुई बरु अमङ्गल और कारण आजाने किसी उत्पात और मरजाने किसी प्रियबन्धु का समझते हैं सो ऐसी बुद्धि और बोलन उनकी उनके सत्यानाश जानेके निमित्त है। जो किसी ने गला दबाने से अथवा संकोच से किसी की कथा कहलाई तो ऐसे आदमी से कि इकट्‌ठे का रहनेवाला भड़कदार अथवा पुरोहित अथवा लड़काईं की जवानी का यार अथवा सदासेवी होवे किसी प्रेमी व भगवद्भक्त को ढूंढ़कर कहलाने की तो कुछ बातही नहीं। भला अब जब कथा प्रारम्भ हुई तो कोई सुनने को नहीं आता, कोई सावकाश नहीं पानेकी बात कहता है, कोई कार्य की भीड़का परिश्रम बतलाता है, कोई कहता है कि क्या हमने पाप किया है जो कथा सुनें और कोई कहता है कि जिस दिन सम्पूर्ण होगी उस दिन आजावेंगे

और कोई अपने आपको बड़ा आदमी अथवा बड़ा ओहदेवाला समझकर कङ्गाल अथवा छोटे ओहदेवाला जानकर उसकी कथा में नहीं जाता और देखिये तो उन साहबों को सिवाय शतरञ्ज व गञ्जीफा खेलने व कुत्सित कथा कहने व खेलकूद, नाच तमाशा देखने और ऐसेही ऐसे प्रकार के निष्फल आचरणों के सिवाय और कुछ काम नहीं और जो भाग्यवश कोई संयोग से चला भी गया तो तनक मन न लगा और जातेही निद्रा-विलास में प्राप्त हुए और जब और किसीने पूछा तो कथा और पण्डित दोनों की निन्दा करने लगे। बस वह कथा कहलानेवाला अकेला सुनता रहा जब समाप्त होनेका दिन आया और उन लोगों को बुलाया तो दश बीस बारके बुलाने से निज रुपया चढ़ाने के समय आये। इसहेतु कि कोई अक्षर कान में न पड़ जाय और जो कथा के पूर्ण होने में कुछ विलम्ब हुआ तो बुलानेवाले आदमी पर क्रोध किया कि इतना पहले क्यों बुला लाया और कोई पण्डितजी से कहता है कि महाराज शीघ्रता करो, संध्या निकट आई और कोई गर्दन उठाकर पत्रे की पाँती देखता है कि लालपांती अन्त कि आई की नहीं और कोई उस घर के अधिष्ठाता से कहता है कि आरती आदि की सामान सावधानी से तैयार कर रक्खो कि विलम्ब न हो और कोई मनही मन में कहता है कि किस उत्पात में आन फँसे और किसी ने मुद्राही भेज दिया और चरण को दुःख न दिया। किसी प्रकार इस वृत्तान्त से कथा पूरी हुई पर इतना और भी अधिक है कि जो वश चला तो खोटा रुपया चढ़ा गये। वाह! क्या बड़ाई कीजिये कि जो नाच में जावें तो स्वप्न में भी नींद न आवे और उसके प्रेम में भूख-प्यास सब भूल जावें और सबसे पहले जा बैठें और भगवच्चरित्रों के सुनने का और कथा में जाने का यह वृत्तान्त कि मानो किसी ने तोप के मुख पर खड़ा कर दिया हो, हाथ बाँधकर यह बिनती है कि इस अवगुणी ने अपना वृत्तान्त लिखा है किसी को दुःख न होय यह वृत्तान्त मेरा करोड़ भागों में से एक भाग है। हे श्रीकृष्णस्वामी! हे दीनवत्सल! हे प्रणतारतभंजन! हे दीनबन्धु! कोई दिन ऐसा भी आवेगा कि आपके चरित्र पवित्र तो चन्द्रमा के सदृश होंगे और मेरा मन चकोर की भांति और कौन वह घड़ी होगी कि आपके रूप अनूप का चिन्तन और ध्यान ऐश्वर्य व धन सदृश होगा और मेरा मन लालची पुरुष के सदृश है हे करुणाकर, महाराज! जो अपनी भाग्यहीनता और अपराधों को विचार करता हूँ तो करोड़ों जन्म तक कुछ ठिकाना नहीं दीखता और पतितपावन दीनवत्सल अधमउधारण करुणानिधान आदि नामों पर दृष्टि होती है तो कोई चिन्ता और भय का स्थान नहीं, पर इसमें भी एक कटाक्ष यह है कि यह लिपि मेरी केवल नाममात्र को है कुछ मन से नहीं जो अपनी इस लिपि पर दृढ़ होकर सन्तुष्ट रहा तो भी बेड़ा पार है। कहाँ तक विनय करूँ जो कर्म मेरे हैं उनमें ऐसा एक भी नहीं कि जिसके अवलम्ब से आपके अंगीकार योग्य हूँ। अब इतनी ही विनय बहुत

है कि जैसा हूँ, आपका हूँ यह रससमाज आपके चरित्र का जो मेरे हृदय के नेत्रों में झलके तो मेरे बराबर भाग्य कौन का है कि वृषभानुनन्दिनी ब्रजचन्दिनीजी को यह समाचार पहुँचा कि नन्दनन्दन व्रजचन्द्र महाराज होली खेलने का समान लेकर बड़ी धूमधाम से सहस्रों लाखों अपने सखा और मित्रों के सहित समीप आन पहुँचे तो तुरन्त करोड़ों सखियों और रंग गुलाल आदि सहित परम आनन्द में भरी हुई गाती बजाती चलीं। जब मानसरोवर के निकट पहुँची तो नन्दनन्दन महाराज का यूथ आन पहुँचा और दोनों ओर से वर्षा रंग की कि जिसमें गुलाब व केवड़े व कस्तूरी व केशर व चन्दन आदि की सुगन्ध से सुगन्धित था आरम्भ हुआ। तिस पीछे कुमकुम जो कि अबीर और गुलाल लाल श्वेत पीले हरे अब्बासी व गुलाबी से भरे हुये थे चलाये। यह वृत्तान्त तो दूर से बीता जब दोनों यूथ मिल गये तो इस धूम व घनघमण्ड से रंग की वर्षा और गुलाल मलने और आपस पर डालने की भीड़ हुई कि धरती व आकाश रंगीन होकर आनन्दरूप हो गया और समान सब प्रकार की लाड़िलीजी के यूथ में बहुत थी और सेना विजयरूप भी बहुत सजी हुई कि उनमें ललिता व विशाखा व श्यामला व श्रीमती व धन्या व पद्मा व चन्द्रावली हजारों लाखों सखी सहेलियों की युथेश्वरियों सहित रहीं। इस हेतु व्रजकिशोरीजी का यूथ प्रबल पड़ा और यद्यपि नटनागर महाराज की ओर भी श्रीदामा व मधु व मङ्गल व सुबल व सुबाहु व अर्जुन व भोज व मण्डल यूथेश्वर बहुत सखा और बालगोपाल सहित था पर लाघवता व चटकई व हस्तक्रिया की तीक्ष्णता के कारण दूसरी ओर किये सब निबल पड़े और व्रजकिशोरीजी की ओर सहाय भी पहुँची कि ब्रह्माणी और पार्वती व इन्द्राणी आदि जो विमानों पर आरूढ़ होकर इस आनन्द के देखने के निमित्त आई थीं व्रजनागरीजी की प्रसन्नता के हेतु रङ्ग व गुलाल और कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा करने लगीं। यह वृत्तान्त हुआ कि एक नन्दनन्दनजीके सखाको दशदश व्रजनागरियों ने घेर लिया और रङ्ग डालने व गुलाल मलने से सबका हाथ बन्द करके अपनी लाघवता व हस्तक्रिया की तीक्ष्णता व अनूप सुन्दरता व मन्द मुसक्यान व कटाक्ष तिरछी चितवन की फांस में सबको बांधलिया। नन्दकिशोर महाराज को वृषभानुनन्दिनीजी ने पकड़ा और गले में हाथ डालकर अपनी ओर खींच लिया और ललिता विशाखा व धन्या आदि जो समीप रहीं उनकी सहाय से व्रजचन्द्र छूटने न पाये सबने मिलकर रङ्ग व गुलाल से अच्छी भाँति सेवा करी तब चन्द्रावली कि लाड़िलीजी से प्रतिकूल रही यह दशा देखकर आप आई और व्रजकिशोर महाराज से कहा कि सावधान हो हम तुम्हारी सहाय को सामासहित आन पहुँची, सो चन्द्रावलीजी की कृपा से व्रज-नागर महाराज नागरीजी को पकड़कर मनभाया अपना बदलालिया और ऐसे धूमधाम से रङ्ग की वर्षा व हँसी व ठट्ठा व वार्तालाप शोभा उस समाज की

हुई कि भक्तों के मन में वह समाशोभा समय रहा है। उस समय की छवि श्रीव्रजकिशोरीजी की कौन से वर्णन हो सकती है कि मानो शोभा स्वरूपवान् धरती पर आकर करोड़ों चन्द्रमा की शोभा को लज्जित करती है। गोरे मुख और तड़पदार मुखाकृति पर अलकें बिथुरी हुई चन्द्रिका और शीशफूल शिर पर भाल में तिलक और केसर कस्तूरी का टीका जड़ाऊ झूमक और कर्णफूल कानों में शोभित, नथ और बेसर, नाक में महीन स्वर्णतारी का दुपट्टा, हरित व अन्य पहिराव लहँगाआदि की अतिचमकदमक सहित व यथायोग्य आभूषण सब अङ्गनपर जमे हुये एक हाथ व्रजकिशोर महाराज के गले में और दूसरे हाथ में गुलाल और इसी प्रकार नन्दनन्दन महाराज बड़े सज व धज के साथ श्यामसुन्दर के मुखारविन्दपर अलकों के बाल बिखरे हुए शीशपर मुकुट कानों में कुण्डल और झूमक के अन्य आभूषण सब अङ्ग अङ्गपर विराजमान सूक्ष्म दुपट्टे से कमर कसे हुये एक हाथ तो व्रजनागरीजी के गले में बाईं ओर दूसरे हाथ में गुलाल इस छवि से प्रिया-प्रियतम को देखकर ब्रह्मा और शिव आदि देवताओं की तो क्या बात व बल है कि सावधानी की सुधि है बुधि में रह सकें जहां आप प्रियाप्रियतम आपस के रूप को देखकर बेसुधि व मग्न हो गये।

कथा नारदजी की ।।

नारदजी महाराज भगवद्भक्ति की सब निष्ठाओं में अग्रणीय हैं पर भागवतधर्म-प्रचारक और कीर्त्तन में विशेषतर हैं, पर उनको जो उत्तम पदवी मिलीं तो श्रवण के अवलम्ब से। इस हेतु श्रवणनिष्ठा में लिखा नारदजी भगवत् के मन हैं और ब्रह्माजी के पुत्र हैं, जगत् के उपकार में इतनी प्रीति है कि दो घड़ी से अधिक विलम्ब कहीं नहीं करते। वाल्मीकि रामायण व श्रीमद्भागवत ये दो जहाज संसारसमुद्र से जीवों को पार लगाने को जो बने सो नारदजीही ने उपदेश किया है। जिनपर कृपा किया वे भगवद्रूप हो गये, जैसे प्रह्लाद, ध्रुव साठ हजार दक्षप्रजापति के पुत्र व प्रचेता आदि लाखों जिनकी गिनती नहीं हो सकती, जिस पर क्रोध किया वह भी अन्त में भगवत् को प्राप्त हुआ। चरित्र नारदजी के अपार हैं पर पूर्व का चरित्र जिस करके श्रवणनिष्ठा में लिखे गये सो लिखा जाता है। भागवत में लिखा है कि पहले कल्प में नारदजी दासीपुत्र रहे, दुःख पड़ने से माता उनकी ऋषीश्वरों के यहां टहल करके अपनी व नारदजी की पालना करती थी। जब काम को जाती तब ऋषीश्वरों के पास छोड़जाती, तहां जो कथा का सत्संग हुआ करता उसको सुनते-सुनते ज्ञान वैराग्य भक्ति को प्राप्त हुये, जब माता उनकी मरगईतो वन में जाकर भगवत् का ध्यान करने लगे। एक बार भगवत् के रूप अनूप का प्रकाश उनके हृदय में प्रकट होकर फिर अन्तर्द्धान हो गया। नारदजी उसी रूप अनूप के प्रेम में विकल होकर भगवद्भजन में प्रवृत्त हुये,

अन्त में फल यह निकला कि इस कल्प में ब्रह्मा के पुत्र ऐसे हुये जिनकी महिमा ब्रह्माजी भी वर्णन नहीं कर सकते।

कथा गरुड़जी की ॥

गरुड़जी भगवत्पार्षदों में हैं इस हेतु सेवानिष्ठा में लिखना उचित रहा पर एक समय उनको मोह हुआ सो काकभुशुण्डि के यहां कथा सुनी तब ज्ञान हुआ इसहेतु श्रवणनिष्ठा में लिखा जब श्रीरामचन्द्र महाराज लङ्का के विजय को चढ़े और रावण का बेटा लड़ाई करने आया तो सम्पूर्ण सेना और दशरथ राजकुमार महाराज को कि जिनकी माया के पाश में अगणित ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादिक देवता फँसे हुये हैं और जिनके एक बार नाम लेने से जीव की जन्म-मरण की फांसी कटजाती हैं नागपाश में बांध लिया नारदजी ने गरुड़ को भेजा तब उन्होंने सब साँपों को खाया। इन्द्रजीत की माया दूर हुई तो गरुड़ को मोह भ्रम हुआ। ब्रह्मा के पास गये तब शिवजी के पास आये उन्होंने काकभुशुण्डिके पास भेजा कि पक्षी की बोली पक्षी अच्छी समझेगा, वहां गये तब समीप नीलाचलके जातेही मोह दूर हुआ फिर रामायण वहां सम्पूर्ण-श्रवण किया, नित्यज्ञान को प्राप्त हुये सत्य करके भगवच्चरित्र अज्ञानतम को सूर्य हैं और कामना के कल्पवृक्ष और कामधेनु।

कथा राजा परीक्षित की ॥

राजा परीक्षित अभिमन्यु के पुत्र अर्जुन के पौत्र श्रवणनिष्ठा में मुख्य अग्रणीय हुये उन्हीं से श्रीमद्भागवत की प्रवृत्ति संसार में हुई, जिससे कोटों जीवों को परमपद प्राप्त हुआ और होता है व होगा। जब पाण्डवों ने संसार त्याग किया परीक्षित को राज्य देदिया, परीक्षित ने नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया, दिग्विजय व धर्म के पालन को निकले। कुरुक्षेत्र में कलियुग ने छल किया जिस करके राजा को ऋषि-बालक का शाप हुआ। तब राजा ने जनमेजय अपने बड़े पुत्र को राजगद्दी देकर तुरन्त गङ्गा तट पर उत्तर मुख आन बैठे और अपने उद्धार के हेतु ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों को बटोरा। संयोगवश शुकदेवजी आये श्रीमद्भागवत श्रवण कराया, जब विराम किया तब तुरन्त राजा अपने शरीर की सुधि भूलकर भगवत् के चरणों में लीन होकर मग्न व समाधि में हो रहा। उसी समय तक्षकनाग ने ऋषि का वचन पूर्ण कर दिया। राजा शरीर छोड़कर उस परमधाम को गया कि फिर नहीं फिरा। सत्य करके जो ऐसा मन भगवच्चरित्रों में लगावे उसको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब इसी शरीर में प्राप्त हैं।

कथा लालदासजी की ॥

लालदासजी ऐसे परमभक्त हुये कि हृदय उनका भगवच्चरित्रों का स्थान होगया जैसी भगवत् में प्रीति उसी भांति गुरुमें और लोभ निकट न आया जैसे कमलपत्र जल में रहता है तिस प्रकार संसार में रहे भगवच्चरित्रों में राजा परीक्षित की

भांति थे और उसी प्रकार भगवद्धाम को गये, अर्थात् बघेरा गांव में कथा श्रीमद्भागवत की होरही थी, जब सम्पूर्ण हुई उसी समय भगवत् के ध्यान की समाधि लगाकर शरीर त्याग उसी परमपद को पहुँचे जहां राजा परीक्षित गये।

निष्ठा पांचवीं।

कीर्त्तन के वर्णन में पन्द्रह भक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों को और दिति अवतार को दण्डवत् है कि अत्रि-ऋषीश्वर के घर चित्रगिरि पहाड़ पर वह अवतार धारण करके अलर्क और प्रह्लाद आदि को भगवत् का ज्ञान उपदेश किया। यद्यपि कीर्त्तन शब्द का अर्थ यह है कि जो कहने में आवै पर शास्त्र व पुराण के अभिप्राय करके यह पद निज भगवच्चरित्रों के विषय होगया है, दूसरे बोलचालके हेतु नहीं रहा, सो वह कीर्त्तन कई प्रकार का है। आपस में भगवत् की चर्चा अथवा गाना अथवा भगवच्चरित्रों को काव्य में रचना करना अथवा कथा-कहानी अथवा मन्त्र और नाम का मुख से उच्चारण करना अथवा स्तोत्र आदि का पाठ अथवा पढ़ाना इसहेतु कि जिस प्रकार भक्त कोई प्रकार से परायण होवे, उनको इस निष्ठा में लिखा यह भी जान रक्खो कि सब भक्त जितने आगे हुए और अब हैं और आगे होंगे कीर्त्तननिष्ठा में सबको विश्वास दृढ़ हुआ और इसी निष्ठा के अवलम्ब से भक्त हुए। सो सबका लिखना इस निष्ठा में हो नहीं सकता इसहेतु थोड़े भक्तों की कथा इस निष्ठा में लिखी गई और नामनिष्ठा अलग वर्णन हुई। इस हेतु नाम उपासकों का वर्णन उस निष्ठा में होगा, इस कीर्त्तननिष्ठा की महिमा और बड़ाई किससे वर्णन हो सकती है? तरणतारण पद जो संसार में विख्यात है सो इसी निष्ठा के उपासकों के निमित्त सत्य है। निश्चय भक्ति और मुक्ति की सब इसी निष्ठा अर्थात् भगवच्चरित्रों के कीर्त्तनपर है जो कोई जिस पदवी को पहुँचा केवल कीर्त्तन के अवलम्ब से पहुँचा दूसरे प्रकार नहीं। श्रवणनिष्ठा में जो यह वर्णन हुआ कि श्रवण के प्रभाव से भगवत् मिलता है तो तात्पर्य यह है कि जब भगवत् की महिमा और भगवच्चरित्रों का श्रवण करेगा तब भगवच्चरित्रों का कीर्त्तन करेगा और किसी ने भगवच्चरित्रों को केवल सुनिमात्र लिया और फिर कीर्त्तन नहीं किया तो कैसे भगवत् मिलेगा? सिद्धान्त यह हुआ कि भगवत्कीर्त्तन के हेतु श्रवण एक साधन है और फल उसका कीर्त्तन और इसी हेतु श्रवण के पश्चात् कीर्त्तन शास्त्रों में लिखा है और यह बात देखने में भी आती है कि हजारों आदमी भगवत् कथा आदि सुनते हैं पर सुने पीछे जो भगवत्कीर्त्तन नहीं करते इसी हेतु कोई वाञ्छित फल को नहीं प्राप्त होते और बुद्धि से भी जाना जाता है कि जब तक देखे व सुने हुये सौन्दर्य अथवा दूसरी कोई वस्तु का वर्णन न होगा तो किस प्रकार मन में रहेगा। भगवत् का वचन है और पुराण में लिखा है कि मैं न वैकुण्ठ में

रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, मैं केवल वहां रहता हूँ जहाँ मेरे भक्त मेरा कीर्त्तन करते हैं। भागवत् के एकादश स्कन्ध में लिखा है कि सतयुग में ध्यान से और त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में भगवत्-पूजा से मुक्ति होती रही और कलयुग में भगवत्कीर्त्तन प्रमाण है। विष्णुधर्मोत्तर में लिखा है कि भगवत् का कीर्त्तन सब सुखों का देनेवाला और पापों का नाश करनेवाला और मन को विमलता देनेवाला और धर्म का बढ़ानेवाला और भुक्ति मुक्ति का देनेवाला और परमसार है, वेद विरुद्ध मतवाले भी इस बात में युक्त हैं। सिद्धान्त यह कि बिना भगवत्कीर्त्तन कोई उपाय जन्म मरण के फन्दे से छूटने को देख नहीं पड़ता। पानी के मथने से घी और रेत में से तेल प्राप्त होजाय तो होजाय पर बिना भगवद्भजन संसारसागर को उतर जावे यह कदापि होनी नहीं और भगवत्कीर्त्तन के विधान में यह लिखा है कि मन से उस कीर्त्तन में मग्न होकर देह की दशा भूल जाय। यहां एक वार्त्ता स्मरण हो आई कि दो मनुष्यों ने निरन्तर भगवत्कथा कही सुनी, दोनों बेसुध होकर वहीं मर गये। लोगों ने दोनों को इकट्ठे जला दिया उनकी स्त्रियोंने आकर अपने २ पति की हड्डियां अलग चुन लीं। किसी ने पूछा कि तुमको अपने २ पति की हड्डियों की प्रतीत किस प्रकार हुई? कीर्त्तन करनेवाले की स्त्री बोली कि मेरा पति भगवच्चरणों के रस में ऐसा मग्न होगया था कि हड्डी तक गल गई थीं इसीसे पहचानकर चुन लिया दूसरी ने कहा कि भगवच्चरित्रों के तीर जो कीर्त्तन करनेवाले के मुखरूपी चुटकी से छूटे तो मेरे पति के हृदय में ऐसे लगे थे कि हड्डियों में बेध होगये थे इससे पहचान लिया, सो इस प्रकार कीर्त्तन और श्रवण में प्रीति होवे पर यह वचन शास्त्रों में लिखा है कि कीर्त्तन भागवत् का अन्तःकरण से अथवा ऊपर से दिखलाने के हेतु अथवा कोई फल के हेतु किसी प्रकार से होवे निश्चय करके भगवद्भक्ति प्राप्त हो जायगी व मन भगवत्-सम्मुख हो जायगा। इस बात का वर्णन कुछ नामनिष्ठा में होगा, सब कीर्त्तन के प्रकार में एक प्रकार भगवत्कथा-कीर्त्तन की जो विख्यात है तो इस समय उसका आश्चर्य वृत्तान्त है कि कीर्त्तन करनेवाले तो बिना हेतु केवल भगवद्भजन के निमित्त से कीर्त्तन नहीं करते व पढ़ना पुराणों का जीविका कि प्राप्ति के हेतु समझते हैं व श्रवण करनेवालों का वृत्तान्त थोड़ा सा श्रवणनिष्ठा में लिखा गया है, बहुत करके ब्राह्मण जो भागवत कांख में दबाये कथा की आड़ करके फिरते हैं और उनकी कथा नहीं होती तो कारण यह है कि जिस दिन से उन्होंने उस कथा को पढ़ा तो फिर नहीं कभी उसको विचारा न देखा जो नित्य उसका कीर्त्तन करें तो बिना घूमने फिरने के आपसे आप हजारों पुरुष कथा करने निमित्त उनको बुलाया करें, इस कारण से कि भागवत व रामायण आदि व पुराण सब भगवद्रूप हैं जो कोई भगवत्कीर्त्तन आराधन करेगा निश्चय करके उसकी कामना सिद्ध होगी अर्थात् सुननेवाले जो यह बात कहते हैं कि आज कल्ह कोई कथा कहनेवाला प्रेमी

और भगवद्भक्त नहीं मिलता, यह वचन उनका निपट झूठ है। हजारों लाखों पण्डित प्रेमी मिलते हैं पर हम लोगों को उनका ढूंढ़ना नहीं और अपने अवगुण के कारण से उनके गुणों को अवगुण के समान कर लेते हैं। प्रेम और भक्तिपर दृष्टि नहीं जाती जिस प्रकार दो पुरुष एक सराय में रात को टिककर सारी रात अपने २ प्रेम में जागते रहे, प्रभात को जो दोनों ने परस्पर देखा विषयी मद्यपान करनेवालों ने भगवद्भक्त को यह समझा कि इसने सारी रात हमसे भी अधिक आनन्द किये होंगे और जो पुरुष भगवद्भजन में जागता रहा उसने उस विषयी को अपने से अधिक भजन आनन्द में जाना। इसके सिवाय जो हमलोग भगवद्भजन करनेवाले और प्रेमी होवें तो कथा करनेवाले अनायास मिल जावें व वे लोग आप हमको ढूंढ़ लेवें जैसे शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को और सूतजी ने शौनक आदि को आप ढूंढ़ लिया। यह रीति सिद्ध है कि जैसे को तैसा आ मिलता है, इसके ऊपर जो प्रेमी और भक्त नहीं मिलते हैं उन्हीं पर विश्वास उचित है व योग्य है कि हमसे अधिक ज्ञाता हैं पहले तो शास्त्र को अच्छे प्रकार जानते हैं, दूसरे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों की महिमा वेद और शास्त्रों में लिखी हुई है कि भगवद्रूप हैं व भगवत् का वचन है कि ब्राह्मण विद्या युक्त होवे अथवा विद्याहीन होवे वह मेरा अङ्ग है। कोई दो चार फारसी तर्जुमे की पोथियों को पढ़कर और अपने आपको ज्ञानवान् व सर्वज्ञ समझकर अथवा बड़े ओहदे पर होकर और धन ऐश्वर्य पाकर कहते हैं हममें और ब्राह्मणों में क्या भेद है? ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जाने, जैसे वह मनुष्य है वैसेही हम हैं, सो जान रक्खो ब्राह्मण मनुष्य नहीं देवता हैं। भूसुर और भूदेव उनका नाम है और जो वे विश्वासियों को आदमी देखने में आवें तो दूसरे आदमियों से इतना भेद है जैसे तारों से सूर्य को और दूसरे पशुओं से गऊ को। एक वृत्तान्त स्मरण हो आया यह कि कोई पीपल के नीचे लघुशङ्का किया करता था, ब्राह्मणों ने मना किया न माना फिर अधिकतर बर्जन किया तो क्रोध कर कहनेलगा कि सब वृक्ष बराबर हैं। एक ब्राह्मण युक्त बोलनेवाले ने कहा कि तुम्हारी जोरू और तुम्हारी मा में क्या भेद वह भी बराबर है। तत्पर्य यह कि ब्राह्मणों को सब प्रकार से बड़ाई है सिवाय इसके सब विधिविधान दोनों लोक का ब्राह्मणों ने विस्तार किया है और पूर्वयुग में अथवा अब जिसको बड़ाई प्राप्त हुई और भगवद्भक्ति का प्रकाश हुआ तो सबको ब्राह्मणों ही के कार्य और सेवकाई से मिला और अब भी गुरु आचार्य ब्राह्मण हैं तो बड़ी भाग्य की खोट है कि उनमें निश्चय न होय। जो किसी के आचरण व कर्म कलि के प्रभाव करके दुष्ट भी देखने में आवें तो भी बेविश्वासता अयोग्य है यद्यपि राख में अग्नि दबजाय तो भी तेज मिट नहीं जाता, जितने महापुरुष व साधु आदि कहलाते हैं सब ब्राह्मणों के प्रभाव करके हुये कि उनको अथवा उनके गुरु अथवा परम गुरु को ब्राह्मणों से उच्चपदवी उपदेश हुई, जिस किसी को ब्राह्मणों में विश्वास नहीं हो भग-

वत् के घरसे निकाले हुये हैं और दोनों लोक से भाग्यहीन हैं। जिसने ब्राह्मणों से द्रोह किया सो सुगति को नहीं प्राप्त हुआ। जिसने सेवा कि सो इस संसार में यशी होकर भगवद्भक्तों में गिना गया। सो कथा करने के हेतु जैसे ही ब्राह्मण मिलते हैं वैसे ही आचार्य और भगवद्रूप हैं विश्वास तत्त्व है। अभिप्राय यह सब लिखने का इतना है कि भक्तकीर्त्तन मुख्यों पर मुख्यतर है कि बिना परिश्रम लोक परलोक दोनों प्राप्त होते हैं। हे नन्दनन्दन दीनबन्धु ! हे करुणाकर ! हाय कि यह मन पापी मति-मन्द ने आज तक कभी आपके कीर्त्तन और चरित्रों में चित्त लगाने नहीं दिया लड़कपन तो खेलते खाते में खोया और जवानी भांति भाँति के अपकर्म और संसार के स्वादु में, अब वृद्धापन पहुँचा तो भी किसी प्रकार आपके चरणकमलों की ओर सावधानता नहीं करता। यद्यपि भली प्रकार यह बात जानता है कि बिना आपके शरण हुये ब्रह्मा भी इस संसार से नहीं छुटासकता है, पर माया के जाल में ऐसा फँस रहा हूँ कि अपनी हानि लाभपर तनक दृष्टि नहीं करता और सिवाय चरणार-विन्द के और कुछ रक्षा का ठिकाना नहीं रखता, इस हेतु दया व करुणा की आशा करके कुछ निवेदन करता हूँ कि यह समाज आपका मेरे हृदय के दुःख को दूर करके नित्यानन्द का देनेवाला होय, यह कि सरयू के किनारे पर अखाड़ा परम शोभायमान कि दीवारें उसकी छोटी और उनपर चित्रविचित्र चित्राम और स्वर्णजल से बेल-बूटे बने हुये हैं। साँझ सबेरे आप भाइयों और अपने छोटे वयक्रमियों के सहित वहाँ जाकर भाँति २ की बाजी और खेल में तत्पर होते हैं। कभी तो सारिका और शुक और कबूतर और लाल और हंस और सारस व मयूर आदि पक्षियों के खेल और नाच और लड़ाने का मन विश्राम है और कभी पतङ्ग उड़ाने का और कभी घोड़ों के फेरने दौड़ाने और सवार होने पर परिश्रम करने का प्रेम करते हैं और कभी गुरु जब ठाटा बनेजा व तीरंदाजी का और कभी चौगान का अपने मित्रों के साथ खेल है और कभी मल्लयुद्ध का और कभी तमाशा हाथी मेढ़ा आदिकी लड़ाई का देखते हैं और कभी उमङ्ग अपने वयक्रमियों के साथ हँसी और ठट्ठा दङ्गामुस्ती का कभी नावपर सवार होकर अवलोकन सरयू का और कभी नाच-राग इत्यादि देख-सुनकर मनवाञ्छित द्रव्य और आभूषण प्रसन्न होकर देते हैं। कभी गजशाला और घुड़शाला का अवलोकन है और कभी सत्रशाला और सामग्रीशालाका निरीक्षण और कभी ब्राह्मणों और भक्तों के ऊपर दया और कृपा की दृष्टि है और कभी दास और घरजाये चेरोंपर पालना की चितवन। ब्रह्मा व शिव व सनकादिक व नारदादि दर्शनों को नित्य आते हैं और मनको चरणारविन्दों पर निछावर करके वियोग के दुःख से आँखें आँसू चुचाती और जलती हुई छातीसहित चलेजाते हैं व मुखारविन्दों पर कि करोड़ों कामदेव और चन्द्रमा वार जाते हैं। अलकैं घूँघरवाली छूटी हुई कानों में कुण्डल और शिरपर जड़ाऊ किरीट, मुकुट छोटा सा बुलाक नाक में, बाजूबन्द कड़े

पहुँची हाथों में, कि अँगुलियों में अँगूठी और छल्ले, पीताम्बरी बागा कि उस पर मुक्केश आदि जगह २ टँका हुआ है, शोभायमान और जरी के दुपट्टे से कटि कसी हुई, वनमाला के ऊपर मणि और मोतियों की माला पड़ी हुई है, कलँगी पहिने हुये धोती, पीताम्बर विराजमान चरणकमलों में घुंघुरू और शोभित बैस बारहवर्ष की और ऐसे ही साज और शृङ्गार के सहित भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और दूसरे राजकुमार व सखा संग हैं। छोटी २ कमान और तीर हाथों में मानो शोभा और शृङ्गार स्वरूपवान् होकर धरती पर आये हैं और शोभा और सजावट सब ब्रह्माण्डों की इकट्ठी होकर अयोध्यापुरी में देखने वालों की वृत्ति को अपने बलात्कार से लूटती हैं।

कथा वाल्मीकिजी की ॥

वाल्मीकिजी ब्राह्मणवंश में जन्मे, किसी संयोग से लड़काईं में भील के हाथ आगये। उसने पुत्र मानके पालना करी और भील की लड़की के साथ विवाह भी कर दिया। आदि से उद्यम राह लूटने व ठगी व्याधकर्म करते रहे। एक बार कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि सप्तऋषि उस ओर आगये। वाल्मीकिजी ने उनके लूटने का मनोरथ किया, ऋषीश्वरों ने पूछा कि किस कारण ऐसा दुष्टकर्म करता है? उत्तर दिया कि बालबच्चों के पालन के निमित्त; फिर पूछा कि वे सब तेरे पाप व दुःखमें साझी होंगे तब पूछने गया तब सबने साझा पाप में अङ्गीकार नहीं किया, तब आयके वर्णन किया, तब ऋषीश्वरों ने कहा कि वे तेरे पापमें साझी नहीं होते तो तू उनके हेतु अपना परलोक क्यों बिगाड़ता है, इतने ही सत्संग और उनके दर्शन से वाल्मीकिजी को वैराग्य और भय उत्पन्न हुआ, अपने कल्याण की राह हाथ जोड़कर पूछी। नेत्रों में जल भर आया, ऋषीश्वर दया करके रामनाम उपदेश करके चले गये, पर राम राम के स्थान मरा मरा स्मरण रहा। एकाग्रचित्त करके जपने लगा, कुछ काल पीछे फिर सप्तऋषि जो उधर को आ निकले व वाल्मीकिजी की अन्वेषण करी तो यह लीला देखी कि एक बामी के समीप जो पशु-पक्षी जाता है रामनाम कहने लगता है। इस चिह्न से जाना तब निकला और देखा कि सब प्रकार से शुद्ध और सिद्ध होगये और किसी वेद व शास्त्र व धर्म कर्म सिखाने का प्रयोजन नहीं रहा कि आपसे आप नाम के प्रताप से सब जान लिया है। बिदा हुये और वाल्मीकिजी के शरीर पर मिट्टी जमकर वामी के स्वरूप हो रही थी। सर्पादि ने उसमें घर करलिया था, इस हेतु वाल्मीकि नाम रक्खा वाल्मीकिजी सर्वज्ञ व त्रिकालदर्शी जब होगये विचारा कि जिसके नामके प्रभाव से यह हुआ तिसका वर्णन करना चाहिये। यह ध्यान करते ही भीलरूप से भगवत् ने आज्ञा दी व नारदजी ने आनकर उपदेश किया और भविष्य रामचरित्र ध्यान में वाल्मीकिजी के दिखला दिये। उसी अनुकूल रामावतार से दशहजार वर्ष पहले सौकरोड़ श्लोक में रामचरित्र

वात्सल्य उपासना अपनी भाषा में रचना किया, अर्थात् राजपुत्र करके श्लोकों में कहा । उस रामायण को शिवजी ने तीनोंलोक में फैलाया । देखना चाहिये कि पहले वाल्मीकिजी तो ऐसे थे कि छायास्पर्श ऋषीश्वर नहीं करते और फिर रामनाम के प्रभाव और कीर्त्तन से सोई वाल्मीकि उस पदवी को पहुँचे कि जिनकी कथा व कथन संसारताप के दूर करने को छत्रछाँह होगया व बालचरित्र देखने की अभिलाषा वाल्मीकिजी को हुई तब जानकीजी उनके आश्रम में लवकुश-सहित रहीं । नाना-प्रकार बालचरित्र किये, अश्वमेध में घोड़ा बांधलिया, हनुमान् आदि सबको जीतके बन्दि में किया, पीछे वाल्मीकिजी के साथ अयोध्याजी में गये । यह रामाश्वमेध में कथा है सो रामनाम की महिमा जहांतक कोई वर्णन करे वह सब थोड़ी है ।

कथा शुकदेवजी की ।।

ऐसा जगत् में कौन है जो शुकदेवजी की महिमा वर्णन करसके जिनके मुखसे श्रीमद्भागवतरूप अमृत की नदी निकली, वह सब पान करनेवालों को अमर करदेती है । एक समय देवस्त्रियों ने स्नान करते शुकदेवजी से लज्जा न की और व्यासजी को देख लज्जित होकर वस्त्र लिया व्यासजी ने पूछा तब उत्तर दिया कि शुकदेवजी सिवाय भगवद्रूप के जगत को दूसरा नहीं देखते और आपको नाना प्रकार का ज्ञान है, इस हेतु तुमसे लज्जा है । शुकदेवजी माताके गर्भही से भगवद्भक्त और ज्ञानवान् हुये, कारण यह है कि पार्वतीजी ने शिवजी से तत्त्वज्ञान पूछा तब शिवजी अपने आश्रम के सब जीवों को अलग करके उपदेश करने लगे । पार्वती को नींद आगई, भगवत् इच्छा करके एक शुक का बच्चा उस आश्रम में रह गया, सोई पार्वतीजी की जगह हूँ हूँ करता रहा वह ज्ञान सुनकर अमर होगया पीछे शिवजी ने जाना तब क्रोधकर मारने के हेतु उद्यत हुये, तब वह भागकर व्यासजीकी पत्नी के उदर में बारह वर्ष रहा । पीछे देवता और ऋषीश्वरों की प्रार्थना से शुकदेव महाराज ने जन्म लिया और तुरन्त वन को गमन किया । व्यासजी पीछेपीछेहे पुत्र! हे पुत्र! करते मोह के वशचले तब सब ओर के वृक्षों से जङ्गल में ध्वनि हुई कि मैं और तू दुःख और सुख यह सब भ्रम है, इस संसार में न जाने तुम कै बेर मेरे पिता हुये और हम तुम्हारे और जो देखने में आता है सो सब भगवद्रूप है । विद्या का जानना भगवत् के जानने के हेतु है जो द्वैतपन न छूटा तो विद्या सब निष्फल है । व्यासजी यह उत्तर पाकर फिर आये पर इसी विचार व उपाय में रहे कि शुकदेवजी फिर आय रहें । इस हेतु कितने लड़कों को श्रीमद्भागवत के श्लोक सिखाकर जिस वन में शुकदेवजी रहा करते थे वहां भेज दिया । एक दिन शुकदेवजीने किसी लड़के के मुख से यह श्लोक सुना, आश्चर्य किया यह पापात्मा पूतना स्तन में विष लगाकर मारने के लिये गई, पर उसको वह गति प्राप्त हुई कि दूसरों को न मिलसके, सो ऐसा दयालु तो और कौन है कि जिसके शरण जावें । शुकदेवजी सुनकर स्नेहबद्ध हो गये और लड़कों से

आनकर पूछा, उन्होंने व्यासजी से सीखने का वृत्तान्त कहा, शुकदेवजी आये अत्यन्त प्रेम से श्रीमद्भागवत को पढ़ा पीछे यह इच्छा हुई कि किसी प्रेमी को सुनानी चाहिये। पर कोई अधिकारी देखने में न आया, नितान्त राजा परीक्षित को योग्य समझा और गङ्गा के किनारे पर राजा को सुनाकर सात दिन में भगवत्परायण और मुक्त कर दिया और जिस जिस ने उस सभा में सुनी सब भगवत्परायण हुये और अब भी जो कोई सुनता है परमपद का अधिकारी होता है।

कथा जयदेवजी की ॥

सब कवि मण्डलीक राजों के सदृश हैं उनके राजा चक्रवत्ता स्वामी जयदेवजी हुये। गीतगोविन्द तीनों लोकमें ऐसा प्रकाशित किया कि कोक और काव्य और नवरस और शृङ्गार का समुद्र है। जिसकी अष्टपदी को जो कोई पढ़ता है निश्चय बुद्धिमान् और ज्ञाता शास्त्रों का हो जाता है और जहां जो कोई कीर्त्तन करता है अरु सुननेके निमित्त निश्चय करके भगवत् प्रसन्न होकर आते हैं और भगवद्भक्त जो कमलसदृश हैं उनके फूलने और आनन्दके हेतु सूर्य के सदृश हैं और भगवत् का आनन्द देनेवाला भी वैसाही है और यह जान रक्खो कि कोक और शृङ्गारपद से विषयी लोगों के मन व बुद्धि में जो कोक व शृङ्गार बर्तिरहा है उसका निश्चय न होवे, शृङ्गारपद से भक्तमाल आदि की रचना करनेवाले का यह तात्पर्य है कि वह शृंगार जिसका वर्णन केवल भगवत्शोभा व भगवत् में होवे कुछ २ इस ग्रन्थ के आदि में लिखा और तेईसवीं निष्ठा में लिखा जायगा और रसराज जिसका नाम है और जिसके वर्णन में वेद की यह श्रुतिहै कि जिसको प्राप्त करके निश्चय भगवत् का आनन्द मिलता है सो रस जयदेवजी ने इस गीतगोविन्द में वर्णन किया है और कोक उसकी एक शाखा है। स्वामी जयदेवजी कुड़बिल्व में कविराज हुये, रसराज जो शृंगार तिसके मूर्ति थे पर उस रस का स्वाद अपने ही मन में लेते रहे। कारण यह कि वैराग्य इतना था कि किसी रात एक पेड़ के नीचे नहीं रहते रहे और सिवाय एक गुदरी व कमण्डलु के कुछ अपने पास नहीं रखते थे। मसिहानी लेखनी व पत्रिका तो कौन बात है भगवत् को उस रसराज की प्रवृत्ति अंगीकार हुई, इस हेतु यह उपाय किया कि एक ब्राह्मण को प्रतिज्ञा रही कि अपनी लड़की जगन्नाथजी को भेंट करूँगा जब लड़की लाया तब स्वामी की आज्ञा हुई कि जयदेव मेरा स्वरूप है, यह लड़की उसी को देव। तब जयदेवजी के पास लड़की सहित जाकर प्रभु की आज्ञा का वृत्तान्त निवेदन किया, उन्होंने कहा कि लड़की योग्य धनवान् को देना उचित है विरक्त फक्कड़ों को नहीं। ब्राह्मण बोला भगवत् आज्ञा में मेरा क्या वश। जयदेवजी बोले वे प्रभु हैं हजारों लाखों स्त्री उनको शोभित हैं हमको एक पहाड़ के समान है। नितान्त समझाते २ ब्राह्मण न हारा तब लड़की छोड़कर चलागया व धर्म लड़की को दृढ़ाय गया। जयदेवजी लड़की को भी समझा थके तब

भगवत्आज्ञा से बेवश होकर एक छोटी कुटी बनाकर भगवत्सेवा पधराकर भगवत् सेवा में रहने लगे और गीतगोविन्द की रचना के प्रारम्भ में एक अष्टपदी में प्रियाजी के मानके वर्णनमें यह भाव ध्यान में लाये कि श्रीकृष्णस्वामी मनावने के समय इस दीनता सहित प्रियाजी से बिनती करते हैं कि कामदेव का विष दूर करनेवाला जो आपका पवित्र चरणकमल उसको मेरे मस्तक पर शोभायमान करो। पर ढिठाई सोचकर न लिखसके दूसरे भाव को चिन्तन करते स्नान करने चलेगये। भगवत् आप जयदेवजी के रूप से आकर जो भाव जयदेवजी ने पहले अपने मन में विचारा था उसी को रचिके लिखगये कि भाव उसका ऊपर लिखागया, जब जयदेवजी स्नान करके आये और अपने विचारित भावको सुन्दर पदों से रचिके लिखा देखा तब पद्मावती अपनी स्त्री से पूछा तब उत्तर दिया कि आपही अबहीं आयके लिखगये, फेर पूछतेहौ। जयदेवजी ने भगवच्चरित्र जाना व गीतगोविन्द को परम-पवित्र समझा। इस गीतगोविन्द की ख्याति थोड़े दिन में जहां तहां होगई और सबको अङ्गीकृत हुआ। जगन्नाथपुरी का राजा पण्डित रहा उसने भी एक गीतगोविन्द रचना किया। जयदेवजी का गीत व राजा का दोनों जगन्नाथ के मन्दिर में रख दिये गये, जगन्नाथरायजी ने जयदेवजी के गीतगोविन्द को छाती से लगालिया। राजा लज्जित होकर समुद्र में डूबने चला, प्रभु ने आज्ञा की कि यह कर्म-उचित नहीं न्याय उचित है, जयदेवजी की भक्ति और कविताई को तुम्हारी नहीं पहुँचती, अच्छा जयदेवजी के गीतगोविन्द में प्रतिसर्ग में एक श्लोक तुम्हारा भी रहेगा पर नाम जयदेवजी का ख्यात होगा। बारह सर्ग गीतगोविन्द है एक माली की लड़की यह अष्टपदी पांचवें सर्ग गीतगोविन्द की गाती हुई बैंगन तोड़ती फिरती थी। जगन्नाथ-स्वामी उसके पीछे जिस ओर वह जाती थी सुनते हुये फिरने लगे, कांटे से झँगा फटगया राजा दर्शन के समय झँगा देखकर चकितरहा, पण्डों से पूछा, नितान्त जगन्नाथस्वामी ने राजा के हृदय में वृत्तान्त प्रकाश करदिया। राजा ने निश्चय करके डौंडी फेरवा दी कि जो कोई गीतगोविन्द पढ़े तो पवित्र व शुद्ध स्थान में पढ़े कि आप भगवत् सुनने को जाया करते हैं। एक मुगल बड़े प्रेम से इस पोथी को पढ़ा करता था। एक दिन घोड़ेपर सवार और प्रेमभाव से मग्न होकर अष्टपदी को गाता था, उसको दर्शन हुये कि सुनने को साथ हैं, इस गीतगोविन्द की महिमा और प्रताप कौन वर्णन करसकता है, स्वर्गलोक में देवकन्या गान करती हैं। एक समय जयदेवजी को राह में ठग लगे तब यह सोचा कि पापका मूल धन है और रोग का मूल अत्यन्त भोजन है व दुःख का मूल स्नेह है सो इन तीनों का त्याग उचित है। यह सोचकर जो कुछ पास रहा सो ठगों को देदिया, ठगोंने जाना कि यह धोखेबाज है कुछ उत्पात पीछे करेगा। अनेक बातें विचारने लगे निदान हाथपांव काटकर एक कुयें में जयदेवजी को डालदिया। एक राजा भगवत्इच्छा से आय गया निकाला हाथ

पाँव नहीं देखकर पूछा, जयदेवजी ने कहा कि माता के गर्भ से ऐसेही जन्म मेरा हुआ। वार्त्तालाप होने से राजा जानगया कि कोई प्रतापी भगवद्भक्त है, भाग्य से मुझे दर्शन हुआ। अपनी राजधानी को लेगया, हाथ जोड़के कुछ सेवा के निमित्त बिनती किया। जयदेवजी ने साधुसेवा की आज्ञा दी, राजा अङ्गीकार करके साधुसेवा करने लगा, जब ख्यात हुआ ठगभी साधु का रूप बनाकर पहुँचे। जयदेवजी ने राजा से कहा कि यह लोग हमारे बड़े भाई व बड़े महापुरुष हैं, अच्छी प्रकार सेवा करो राजा ने वैसाही किया पर ठगोंने भी जयदेवजी को पहिचान लिया, इस हेतु त्रासयुक्त बिदा होनेकी बिनती नित्य करते थे। निदान एकदिन बहुत रुपया दिलादिया व बिदा करादिया, कुछ सिपाही घरतक पहुँचाने को पठये। सिपाहियों ने पूछा कि स्वामीजी से कैसी प्रीति व सम्बन्ध है, जो ऐसी मर्याद से बिदाई हुई? ठग बोले कहने योग्य बात नहीं, सिपाहियों ने वचन दिया कि किसीसे न कहेंगे, वे ठग बोले कि एक राजा के यहां हम लोग और तुम्हारे स्वामी चाकर थे, किसी अपराध करने के कारण वध करने की आज्ञा दी, सो हम लोगों ने हाथ पांव काट लिये जान छोड़दी। इसी हेतु यह सेवा हमलोगों की कराई। यह अपवाद भक्तका प्रभु न सहि सके धरती तुरन्त फटगई व ठग सब पाताल में चलेगये। सिपाहियों ने सब वृत्तान्त जयदेवजी से आकर कहा, वे दया से कम्पमान होकर हाथ पांव मलने लगे तो हाथ पांव निकल आये, जैसे पूर्वही रहे वैसेही होगये यह दोनों वृत्तान्त सिपाहियों ने राजा से कहे, राजा ने आयके स्वामीजी से पूछा, कुछ न बोले जब बहुत पूछा तब सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा अतिविश्वासयुक्त सेवा करने लगा, सच करके भगवद्भक्तों की रीति है कि जो कोई उनके साथ दुष्टता करे वे अपनी साधुता से चूकते नहीं, जैसे दुष्ट अपनी दुष्टता से नहीं चूकता। जयदेवजी ने अपने देश के जानेका विचार किया तब राजा ने बहुत प्रार्थना करके न जाने दिया। आप जाकर पद्मावतीजी स्वामीजी की पत्नी को लेआकर राजमन्दिर में निवास कराकर रानी को सेवा में पद्मावतीजी के बहुत दृढ़ किया। उस रानी का भाई मर गया था उसकी स्त्री साथ सती होगई थी। रानीने एक दिन पद्मावतीजी के आगे एक आश्चर्यसहित अपने भाई-भावज की बात कही। पद्मावतीजी सुनकर हँसीं, रानीने कारण हँसने का पूछा तो उत्तर दिया कि शरीर का जलादेना पति के साथ इसमें प्रीतिकी रीति की हानि है, मुख्य प्रीति व स्नेह वह है कि तुरन्त अपने पति की मृत्यु सुनतेही उसी क्षण अपना प्राण निछावर करे। रानी बोली इस समय में तो ऐसी सती आपही हैं और पद्मावतीजी की परीक्षा लेनेको पीछे पड़ी। राजा से जा कहा कि स्वामीजी को एक दिन फुलवाड़ी में लेजाव और नगर में विख्यात करदेव कि स्वामीजी मरगये। राजा ने उस रानी को समझाया कि ऐसी बात जिसमें मेरा शीश कटे न करनी चाहिये, नितान्त न मानी, राजा ने वैसेही सब किया तब आंखों में आंसू भरे रानी पद्मावतीजी के

पास जा बैठी उन्होंने कारण दुःखित होने का पूछा, रानी रोनेलगी। पद्मावतीजी ने कहा स्वामीजी आनन्द से हैं तब रानी लज्जित हुई। दश बीस दिन पीछे फिर वैसीही बात उठाई। पद्मावतीजी ने समझा रानी परीक्षा के हेतु पीछे पड़ी है। रानी के मुखसे वह बात सुनतेही प्राणको छोड़ दिया। यह दशा देखतेही रानी व राजा का रङ्ग सफेद होगया और इतने शोकान्वित हुये कि जीना विष होगया व अपने जलने के निमित्त चिता को रचाया। स्वामी जी यह समाचार सुनतेही तुरन्त आये राजा को मृतकप्राय देखा व शोक से जलने को तैयार है, बहुत समझाया न माना स्वामीजी ने विचारा कि बिना जिय पद्मावती के राजा का जीना कदापि नहीं होगा। अष्टपदी गीतगोविन्दकी गाई कि पद्मावतीजी उठ बैठीं और साथ गाने लगीं, तौ भी राजा सावधान न हुआ। स्वामीजी ने बोध करके अपघात से बचाया कुछ दिन पीछे अपने स्थानपर गये। कुड़बिल्व गांव में घर था वहां पहुँचे, गङ्गाजी अठारह कोसपर रहीं नित्यस्नान को जाते। वृद्धता देखि गङ्गाजी की एक धारा जिसका नाम जयदेई गङ्गा है स्वामीजी की कुटी के नीचे बहने लगीं, अद्यापि बहती हैं जयदेई गङ्गा नाम विख्यात है।

कथा तुलसीदासजी की ॥

गोसाईं तुलसीदासजी को भक्तमाल के कर्त्ता ने वाल्मीकिजी का अवतार लिखा है सो इसमें कुछ संदेह नहीं कि उनकी वाणी में प्रभाव दिखाई पड़ता है कि हृदय में चुभजाती है और रामचरित्ररूपी अमृत की धाराको इस कलियुग में प्रवाहवती किया है व सबको सुलभ है और चौदह रामायण अर्थात् चौपाई बन्द जो विख्यात हैं व विनयपत्रिका व गीतावली व कवितावली व दोहावली व रामशलाका व हनुमान्-बाहुक व जानकीमङ्गल व पार्वतीमङ्गल व कड़काछन्द व बरवाछन्द व रोलाछन्द व झूलनाछन्द एक दूसरा कि प्रेमियों को व उपासकों को सब जगह मिलसकते हैं और भक्तों के मुख से निश्चय होचुका है कि जो कोई नियम करके नित्य किसी रामायण का पाठ करताहै निश्चय श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणों में प्रीति होजाती है व कामना करके काण्ड का पाठ करे तो सिद्ध होजाता है व रामशलाका में जो प्रश्न करे तो ऐसे दोहे निकलें कि जो होनेवाली बात हो सो ज्ञात होजाय और तुलसीकृत रामायण को काशीजी के सब पण्डितों ने सभा करके सम्पूर्ण पढ़ा, आदि अन्त सब वेद, शास्त्र, पुराण गीताजी के अनुकूल देखकर सबने अङ्गीकार लिख दिया। कोई कोई ने द्वेष करके वाद ठाना तो विश्वेश्वरनाथजी के अङ्गीकार करने से सबको अङ्गीकृत हुआ गोसाईं तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहे, अपनी स्त्री से स्नेह विशेष रखते थे। एकदिन स्त्री अपने मैके में मा बापसे मिलने को गई, गोसाईंजी को इतना वियोग हुआ कि सहन न होसका। अपनी ससुरारि में पहुँचे, स्त्री को लज्जा आई, क्रोध करके गोसाईंजी से बोली कि यह शरीर अस्थि मांस का

अनित्य है, रघुनन्दनस्वामी नित्य निर्विकार पूर्णब्रह्म हैं, तिनसों क्यों नहीं स्नेह करते कि दोनों लोक में लाभ हो । इतना कहने से गोसाईंजी पण्डित और ज्ञानवान् थे, पूर्वपुण्य के पुञ्ज उदय हुये, ज्ञान वैराग्य की आंखें खुलगईं । काशीजी में आकर श्रीरघुनन्दनस्वामी के भजन-कीर्त्तन में लगे । गोसाईंजी दिशा फिरने वन में जाया करते तो शौचशेष पानी को एक जगह नित्य डाल दिया करते थे, वहां एक भूत रहता था उस पानी से उसकी तृषा मिटती थी । एकदिन प्रसन्न होकर बोला कि तुमको जो कामना हो सो कहो । गोसाईंजी ने कहा रघुनन्दनस्वामीका दर्शन करादे । भूत ने कहा कि यह सामर्थ्य मेरे में नहीं पर हनुमान्जी का पता यह बतलाता हूँ कि अमुकस्थान में कथा रामायण होती है और हनुमान्जी सबसे पहले ऐसे कुरूप से कि जिसको देखते डर लगे और घृणा होय आते हैं । सबसे पीछे जाते हैं इस पहिचान से गोसाईंजी हनुमान्जी के पीछे चलेगये । वन में चरण पकड़लिया न छोड़ा हनुमान्जी ने दर्शन दिया कहा जो चाहना हो कहो । विनय किया रघुनन्दनस्वामी का दर्शन चाहता हूं । आज्ञा दी कि चित्रकूटमें दर्शन होगा । गोसाईंजी अतिअभिलाष से चित्रकूट में आये, एकदिन इस स्वरूप से दर्शन हुआ कि रघुनन्दनस्वामी श्याम-सुन्दर राजकुमार के स्वरूप से वसन भूषण बहुमूल्य के पहिने धनुष बाण लिये घोड़े पर सवार और लक्ष्मणजी गौरमूर्ति वैसेही सजावट के सहित साथ एक हरिण के पीछे घोड़ाडालेहुये जातेहैं, यद्यपि स्वामी की मूर्ति मन और आंखों में समाय गई पर यह न जाना कि ये स्वामी हैं । पीछे हनुमान्जी आये, गोसाईंजी पूछा कि दर्शनकिये, गोसाईंजी ने विनय किया किदो राजकुमार देखे हैं । हनुमान्जी से बोले कि वही राम लक्ष्मण थे, गोसाईंजी उसोरूप का ध्यान करतेहुये मुख्य मनोरथ को प्राप्त हुये । एक हत्यारा पहले राम का नाम टेरकर कहा करता कि हत्यारे को भिक्षादेव । गोसाईंजीको आश्चर्य हुआ कि यह कैसा पुरुष हैं कि पहले रामनाम लेता है फिर अपने आपको हत्यारा कहताहै व ठहराता है, बुलाया और प्रेमशुद्ध जानकर उसको अपने साथ भगवत्प्रसाद जिमाया । काशी के पण्डितों ने सभा करी और गोसाईंजीको बुलाकर पूछा कि प्रायश्चित्त बिना किसतरह इसका पाप दूर हुआ । गोसाईंजी ने कहा एकबार रामनाम लेनेका क्या माहात्म्य है शास्त्र में देखो इसने तो सैकड़ों बेर नाम उच्चारण किया तो शास्त्रके वचन पर जो विश्वास नहीं तो अज्ञान का अन्धकार दूर नहीं होसकता । पण्डितों ने यद्यपि शास्त्र को माना तथापि बेविश्वास से यह ठहराया कि विश्वेश्वरनाथ का नाँदिया इसके हाथसे भोजन करे तो सत्य मानें । सो नाँदिया ने उसके हाथसे धराये हुये प्रसाद को भोग लगाया, सब पण्डितों ने लज्जित होकर नाम की महिमा व गोसाईंजी की भक्तिपर निश्चय किया । एकदिन गोसाईंजी के स्थान पर रातको चोर चोरी करने को आये तो श्रीरघुनन्दनस्वामी धनुबाणलेकर चोरों को डरवाते फिरें, चोरी करने न पाये । गोसाईंजी से प्रभात को आके पूछा कि महाराज

वह श्यामसुन्दर किशोरमूर्ति परम मनोहर कौन है ? जो रात को चौकी देता है। गोसाईंजी सब वृत्तान्त सुनकर प्रेम में डूब गये फिर विचारा इस सामग्री के हेतु परिश्रम व रातको जागरण स्वामी का अच्छा नहीं। बहुत रोने लगे उसी घड़ी सब धन सामग्री दान करदिया। चोर यह वृत्तान्त देखकर घरबार छोड़कर भगवत्शरण होगये और एक ब्राह्मण मरगया उसकी स्त्री विमान के साथ सती होने जातीथी गोसाईंजी को दण्डवत् किया गोसाईंजी के मुख से निकल गया सौभाग्यवती उसने कहा मेरा पति मर गया यह दासीसती होने जाती है, सौभाग्य कहां है ? गोसाईंजी ने उसके कुलमें भगवद्भक्ति करने की प्रतिज्ञा करायके पतिको जिला दिया। जब यह बात विख्यात हुई तो बादशाह ने बड़े आदर से बुलाकर उच्च आसनपर बैठालकर सिद्धाई दिखलाने को विनय किया। गोसाईंजी बोले सिवाय रघुनन्दनस्वामी के दूसरी सिद्धाई कुछ नहीं जानता हूँ और न इस झूठे खेलसे काम रखताहूँ। बादशाहने कहाकि अपने स्वामीही के दर्शन करादेव, यह कहकर बन्दि में किया गोसाईंजीने हनुमान्जी का स्मरण किया उसी घड़ी वानरों की अगणित सेनाने बादशाही किले में ऐसा उत्पात किया कि प्रलयकाल दिखलाई पड़ा। बादशाह जब पलँग पर से उलटागया तब शुद्धज्ञानसे गोसाईंजी की शरण में आया, चरणपर गिरा तब सब वानरीसेना अन्तर्द्धान होगई, तब तुलसीदासजी ने आज्ञादी कि तुम दूसरा किला रहनेको देखलेव यह स्थान रघुनाथजी का हुआ। बादशाहने तुरन्त छोड़ दिया, तुलसीदासजी काशी को चले आये। एक कोई भक्तों के वैरीने गोसाईंजी के मारने को अनुष्ठान जप का किया। गोसाईंजी ने एकपद महादेवजी का बनाया, कुछ न हुआ वह आप लज्जित होरहा, फिर गोसाईंजी वृन्दावन आये नाभाजी से मिले, उनकी रचना भक्तमाल की देख सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और यह बात जो फैली है कि गोसाईंजी ने मदनगोपालजी के दर्शन के समय यह बात कही थी कि धनुषबाण धारण करोगे तब दण्डवत् करूँगा सो यह बात निपट झूठ और बिना शिरपैर की है, काहे कि कृष्णावली में कृष्णयश गोसाईंजी ने गायाहै सो प्रसिद्ध है, सिवाय इसके सब जगत्को दण्डवत् किया है— "सियाराममय सब जग जानी। करों प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥" यह चौपाई जिसकी कही है भला सो कब भगवत् के सामने ऐसी हठबानी कहसकता है ? इस बात के फैलने का बात यह है कि उपासक जिस देवता के मन्दिरमें जाता है, अपने इष्टका रूप ध्यान करता है। यह रीति शास्त्र की सम्मति के अनुकूल गृहीत है, सो गोसाईंजी दर्शनको गये व परममनोहर मूर्ति को देखा तो श्रीरघुनन्दन धनुर्बाणधारी का ध्यान करके दण्डवत् किया, सो गोसाईंजी भक्त सांचे व सिद्ध थे इसहेतु मदनगोपालजी ने भी उनके ध्यान के अनुकूल रूप दिखादिया, जो कोई उस समय दर्शन करनेवाले थे उनको भी धनुर्बाणधारी दृष्टि में आये, इस हेतु वह बात फैली और किसी ने एक दोहरा भी बनालिया। वृन्दावन में किसी ने गोसाईंजी से प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण

महाराज पूर्णब्रह्म और अवतारी हैं और नृसिंह, वामन, परशुराम रामचन्द्र, आदि उस अवतारी के अंशकलासे अवतार हैं। तुम श्रीकृष्ण महाराज की उपासना क्यों नहीं करते ? यद्यपि शास्त्रप्रमाण से गोसाईंजी उत्तर देनेको समर्थ थे, पर माधुर्यभाव में प्रेमभक्ति को दृढ़ करते हुये ऐसा उत्तर दिया कि वह चुप होरहा और सिद्धान्त बनारहा सो वह यह है कि श्रीरामचन्द्र दशरथनन्दन को बहुत सुन्दर सुकुमारअंग मनोहरमूर्ति परमशोभायमान देखकर हमारा मन लगगया है कि नहीं छूटता अब जो तुम्हारे वचन से उनमें कुछ ईश्वरता भी है तो और अधिक व मनभाई भई।

कथा सूरदासजी की ॥

सूरदासजी की रचना सुनकर ऐसा कौन है जिसका मन प्रेम से न उमँगे और शिर न हिलजाय, जिसमें अर्थभाव और स्वाद और ललित अक्षरों की बैठक और अनुप्रास और भगवत्प्रेम का निबाह व सलिलअर्थ व तुले हुये व विकलित बहुत हैं और भगवत् ने जो चरित्र किये ऐसा विस्तारसहित वर्णन किया कि मानो देखते थे। ऐसा विमलहृदय जिसका है अथवा भगवत् ने आप उन चरित्रों का प्रकाश उनके हृदय में झलकाय दिया। भगवत् के जन्म और कर्म और गुण और रूप ऐसे प्रकट किये कि जो उनको पढ़ता है अथवा सुनता है निश्चय निर्मलबुद्धि व पवित्रमन होकर भगवत्परायण हो जाता है। उद्धवजी जो श्रीकृष्ण महाराज के सखा व मित्र थे उनके अवतार हैं। यद्यपि विष्णुस्वामी संप्रदाय में रहे व बालचरित्रों में चित्त की चाह बहुत थी पर श्रृङ्गारनिष्ठा और सखाभाव का प्रेम भी अत्यन्त था कि सूरसागर से प्रकट है महिमा सूरदासजी की और सूरसागर की किससे वर्णन हो सकती है कि जिनकी कृपा से सहस्रों अपराधी सिद्ध और शुद्ध भगवद्भक्त हो गये। उनका संकल्प यह रहा कि सवालाख विष्णुपद में भगवच्चरित्रों का कीर्तन करें पर जब पचहत्तर हजार रचना करचुके तब परमधाम को चलेगये। पचास हजार आप श्रीकृष्ण महाराज ने रचना करके अपने भक्त का संकल्प पूरा कर दिया और सूरश्याम के नाम से भोग रख दिया। खानखाना वजीर बादशाह अकबर का विद्या संस्कृत व भाषा में पण्डित रहा, कवि भी था, उसने सूरदासजी के पद जहां तहां से ढूंढ़ ढूंढ़ कर इकट्ठे किये और एक पद एक मोहर का ठहर गया। बहुत लोग मोहर के लोभ से नये पद बना बनाकर सूरदासजी के भोग में नाम डालकर लेगये। जब भीड़ हुई तो यह विचार किया कि एक पद सूरदासजी का तौल का बटखरा रखलिया नये पद जो आवें उसी से तौलना आरम्भ किया। जो पद नया होता सो कागज मोटा भी हो व पद भी बड़ा हो तौ भी बराबर न तुलता व सूरदास जी का बनाया पद छोटा भी हो व कागज महीन तौ भी बराबर हो जाता, इसी परीक्षा से सूरसागर को रूपमान ग्रन्थ किया। किसी की यह कहावत है कि अकबर बादशाह ने सूरसागर इकट्ठा किया और दो लाख विष्णुपद का

संयोग पहुँचा तब अग्नि में डालदिया सूरदासजी का न जला औरों का बनाया जलगया, तो दो कहावतों में जो सच हो पर बड़ाई व प्रभाव से व्यतिरिक्त सूरसागर नहीं और यह कहावत न विख्यात होती तो क्या सूर्य छिपा रहता है सूरसागर को भगवत् ने वह प्रताप व प्रभाव कृपा किया है कि एक एक अक्षर मन्त्र के सदृश हैं।

कथा नन्ददासजी की ॥

नन्ददासजी पुत्र चन्द्रहास जाति ब्राह्मण रहनेवाले रामपुर के भगवद्भक्त प्रेमी व नामी विख्यात हैं कि अनुक्षण सिवाय भगवत्कीर्तन के दूसरा काम नहीं था। रचना उनकी जैसे पञ्चाध्यायी व रुक्मिणीमङ्गल व दशमस्कन्ध व नाममाला व अनेकार्थ व दानलीला व मानलीला आदि हजारों विष्णुपद उनकी भक्ति के सदृश सारे संसार में विख्यात हैं। उनके काव्य की श्लाघा में कविलोगों को यह कहा है कि और सब घड़िया, व नन्ददास जड़िया, अष्टछाप के भक्तों में इनकी भी गिनती है। जान रक्खो आठभक्त जिन्होंने श्रीकृष्णस्वामी के चरित्र कीर्तन किये और उनके विष्णुपद व्रज में भगवत् के सम्मुख कीर्तन किये जाते हैं उनकी गिनती अष्टछाप में है और नाम मङ्गलरूप उनके यह हैं १ सूरदास २ कृष्णदास ३ छीतस्वामी ४ नन्ददास ५ परमानन्द ६ चतुर्भुज ७ व्यासजी ८ हरिदास।

कथा चतुर्भुजजी की ॥

चतुर्भुजजी भगवद्भक्त परमरसिक हुये नित्य श्रीवृन्दावन में विहारीजी के मन्दिर में अत्यन्त प्रेम व भाव से नृत्य करते थे। एकदिन नृत्य करते में लँगोटी खुलगई दोनों हाथों से झांझ बजारहे थे ताल व सम के भंग होने के भय से लँगोटी न सम्हाली व लोगों के ठट्ठा करने की चिन्ता भी हुई तब तक परम रिझवार विहारीजी ने दो भुजा और उत्पन्न करदीं और अपने भक्त की लज्जा रख ली।

कथा मथुरादासजी की ॥

मथुरादासजी जो चेले वृद्धमानजी के ऐसे भगवद्भक्त धर्म में सावधान हुये कि नन्दनन्दन महाराज का दृढ़ विश्वास और बल रखते थे। प्रीति ऐसी की कि अपने शिर पर जल का कलश रख कर ले आते और ऐसे प्रेम व भक्ति से रामचरित्र का शृङ्गार किया करते कि मानो उनका हाथ भगवच्चरित्र और माधुर्य के दर्शाने को सूर्य के सदृश था। एक समय कोई साधुवेष से वृन्दावन में आया, चेटक यह करता कि शालग्राम सिंहासन पर डोलते रहते, सो मथुरादासजी भी चेलों के कहने से गये। जाने से चेटक बन्द हो गया तब उसने मूठमन्त्र मारा सो भी उलट कर उसी पर पड़ा। मरने के योग्य हुआ तब मथुरादासजी ने जिलाया।

कथा सुखानन्दजी की ॥

सुखानन्दजी संसार के आवागमन के भय के दूर करने को एक ही हुए।

काव्यरचना उनकी गुरुमन्त्र व तन्त्रशास्त्र के तुल्य विख्यात है । भोग में जहाँ अपना नाम लिखा तहाँ भगवत् का नाम सुखसागर लिखा, जैसे चन्द्रसखी ने बाल-कृष्णनाम व मीराजी ने गिरिधरनागर नाम लिखा है । भगवद्गुण चरित्र कीर्तन भजन अतिप्रेम से करते व भक्तिकमल के सेवा करने में मानो सरोवर थे ।

कथा श्रीभट्टजी की ॥

श्रीभट्टजी ने आनन्दकन्द व्रजचन्द महाराज और वृषभानुकिशोरी के भजन स्मरण का ऐसा सामान दृढ़ इस संसार में करदिया कि संसार-समुद्र के उतरने को नौका के सदृश है, अर्थात् माधुर्य उपासना के जो शोभायमान चरित्र प्रियाप्रिय-तम के हैं सो अपने युगलशत आदि ग्रन्थ में रचना इस मिठाई व मधुबानी व सुन्दरता के सहित वर्णन की कि निश्चय करके मन द्रवीभूत होकर नवलकिशोर और नवलकिशोरी महारानी के चरित्र और प्रेम में मग्न होता है और अज्ञानरूपी अन्धकार के दूर करने को जिनका सुयश चन्द्रमा है ।

कथा बर्द्धमान गङ्गल की ॥

बर्द्धमान व गङ्गल दोनों भाई भीष्मभट्ट परमभक्त के बेटे थे । दोनों भक्ति के दृढ़ करनेवाले हुये, भगवच्चरित्र और श्रीमद्भागवत के कीर्तन की नदी बहाई और इस संसार को पापों से पवित्र और निर्मल कर दिया व भक्तों से ऐसी प्रीति रही कि सर्वकाल भीड़ रहती थी और यशोदानन्दन महाराज के स्मरण भजन से प्रेम था व दीनजनों पर कृपा अत्यन्त थी ।

कथा कृष्णदासजी की ॥

कृष्णदासजी विख्यात चालक की रचना चर्चरी छन्द व विष्णुपद आदि की ऐसी विख्यात हुई कि समुद्रपर्यन्त पहुँची । अलग अलग ग्रन्थ सब चरित्र जैसे गुरुधन-चरित्र व पञ्चाध्यायी व रुक्मिणीमंगल, भगवद्भोजन विधि इत्यादि की रचना की सुख देनेवाले घटा के सदृश हुये, भगवत्सम्मुख करने के हेतु उनका अवतार हुआ ।

कथा नारायण मिश्र की ॥

नारायणमिश्र नवलावंश में परमभक्त हुये भागवत के कीर्तन में तो मानो वे ही एक जन्मे थे, क्योंकि जिनको बद्रिकाश्रम की ओर शुकदेवजी ने आप भाग-वत पढ़ाई, जिनके पास भक्तों की समाज नित्य रहा करती थी । नवधाभक्ति को जिसने भली प्रकार साधा, सब शास्त्रों को अच्छे समझकर तत्त्व चुनलिया जो बृहस्पति और शुकदेव और सनकादिक व व्यास और नरदादिकों को अंगीकार व हृदयस्थ है सुबोध थे गंगातुल्य जिनका दर्शन था ।

कथा कमलाकर की ॥

कमलाकरभट्ट परमभक्त और पण्डित सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हुये । उपासनाशास्त्र

के तो ध्वजा ही रहे कि भक्तिविरोधियों को शास्त्रार्थ में जीतकर भगवद्भक्ति पर स्थिर किया। माध्वसंप्रदाय में मानो माधवाचार्य के अवतार हैं, माधवाचार्य ने जो दिग्विजय टीका भागवत की रचना करी है उसी के अनुकूल भगवत् का कीर्तन और वर्णन किया करते थे। स्मृति व पुराण के अनुकूल भगवत के शङ्ख चक्र की महिमा वर्णन करके आप चिन्ह उनके धारण करे व सब अवतारों को पूर्ण समझा, किसी में कुछ भेद नहीं किया।

कथा परमानन्दजी की ॥

परमानन्दजी गोपियों के सदृश श्रीकृष्ण के स्नेह व प्रेम में बेसुध व मग्न रहते थे। व्रजकिशोर स्वामी के चरित्र बारहवर्ष की अवस्था के ऐसे कीर्तन किये कि विख्यात हैं और जो उन्होंने शोभा व सुन्दरता और माधुरीरूप और लीला नटनागर महाराज की अतिप्रेमयुक्त वर्णन करी तो कुछ आश्चर्य नहीं कि वह शोभा व चरित्र उनके बाहर भीतर का आँखों के आगे था। प्रेम का जल आँखों से बहाता और रोमाञ्च अनुक्षण रहता था व स्वरभंग शोभाधाम महाराज की शोभा में पगे हुये व उस रंग में रँगे हुये थे और अपने काव्य में सारंगनाम भगवत् का विशेष करके लिखते व रचना उनकी भगवत्प्रेम की बढ़ानेवाली ऐसी है कि भगवत् के ध्यान व प्रेम में मन को लगा देती है।

निष्ठा छठवीं ॥

वेष वर्णन जिसमें कथा आठ भक्तों की हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की ध्वजारेखा को दण्डवत् करके यज्ञ अवतार को प्रणाम करता हूँ जिससे वैवस्वत आदि राजा लोग यज्ञ और धर्म का उपदेश पायकर संसारसमुद्र से पार हुये। जान रक्खो कि भगवत् के मिलने के निमित्त दो प्रकार का वेष है एक तो आन्तरीय अर्थात् अन्तर का विचार, दूसरे सोचना और समझना सार और असार काम, वैराग्य अर्थात् त्याग करना ब्रह्मलोकपर्यन्त सुख का ३ शम अर्थात् मन का निग्रह करना ४ दम अर्थात् संयम और नेम अवलम्ब से इन्द्रियों को अपने वश में करना, उपरति अर्थात् मन को फिर उन स्वादों की ओर न जाने देना ५ तितिक्षा अर्थात् दुःख-सुख भलाई-बुराई का सहना श्रद्धा अर्थात् गुरु का उपदेश ६ और भगवत् में विश्वास समाधान ७ अर्थात् भगवत् के ध्यान की समाधि दूसरा वेष बाह्य अर्थात् बाहर ८ जो देखने में आवें कि जिनको पांच संस्कार कहते हैं। प्रथमऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् तिलक २ दूसरा मुद्रा अर्थात् शंख चक्र भगवच्छस्त्रों के चिन्ह शरीर पर लगाना ३ तीसरा माला ४ चौथा मन्त्र ५ पांचवां नाम और कोई नाम की जगह विचार भी कहते हैं। और यह पांचों संस्कार गृहस्थाश्रम में होके त्यागी ही को सब उचित हैं कि पद्मपुराण और हारीतस्मृति और पराशरस्मृति

आदि पुराणों व स्मृतियों का वचन इसके विधान में युक्त है और वेदश्रुति की निज आज्ञा मिलती है, भेद इतना है कि जो गृहस्थ हैं उनका नाम प्रकट वही रहता है, जो गृह में धरा गया था और गृहस्थाश्रम को त्याग किया विरक्त हो गये उनका नाम वही विख्यात होता है जो संस्कार भये के समय गुरु ने कृपा करके दिया। वेष की महिमा व बड़ाई क्या लिखूँ कि भगवत् के मिलने के हेतु सबसे दृढ़ अवलम्ब मुख्य यह है। पद्मपुराण में लिखा है कि जिनके गले में तुलसी लगी हुई अर्थात् कण्ठी की माला और कमल के फूलों की माला पहिने हुए भगवच्छस्त्रों का चिह्न बाहुपर तिलक मस्तक पर है ऐसे वैष्णव शीघ्र संसार को पवित्र कर देते हैं। आगमसार तन्त्र का वचन है कि जो केवल मालाधारी वैष्णव है वह ब्रह्मा आदि करके भी पूज्य है, मनुष्यों की कौन बात है। फिर मन्त्रशास्त्र का वचन है कि माला और तिलक और भगवच्छस्त्रों का चिह्न जिस किसी के शरीर पर है जो वह चाण्डाल भी है तो भी पूजन के योग्य है। महाभारत के भीष्मपर्व में लिखा है कि ब्राह्मण है अथवा क्षत्रिय अथवा वैश्य कि शूद्र, जिसने वेष वैष्णव धारण किया है वह पूज्य है और दण्डवत् करने के योग्य और वही कर्मों में युक्त है। जो शूद्र भी है तो भी ऐसा है कि ब्राह्मणों की धरती पर मिलना क्लिष्ट है, ऐसे सैकड़ों हजारों श्लोक हैं और क्यों नहीं ऐसी महिमा और बड़ाई इस वेष की होवे कि बिना इसके कोई मार्ग उद्धार के निमित्त देखने में नहीं आता। भला किसी ने संप्रदाय के भजन कीर्तन की इच्छा की तो वह भजन कीर्तन की पद्धति और पथ से करेगा, या तो यह बात होगी कि कोई राह और पद्धति नहीं मिलने के कारण से भजन कीर्तन की इच्छा छोड़ देगा और जो इच्छा दृढ़ होगी तो हारि झखमारकर किसी न किसी संप्रदाय को अङ्गीकार करेगा। काहे से कि जिस रीति व पद्धति को लेकर भजन आरम्भ करेगा वह निश्चय करके किसी न किसी संप्रदाय के अनुकूल होगा और जब कि किसी संप्रदाय के मत के अनुसार हुआ तो निश्चय पद्धति उस संप्रदाय की अङ्गीकार करनी पड़ेगी और जब कि पद्धति को अंगीकार किया तो सबसे मुख्य रीति संस्कार की है और सब वैष्णव और शैव व स्मार्त व शाक्त आदि इस बात में एकमत हैं, सो जितने ऋषीश्वर और भक्त ब्रह्मा तक जो हुये हैं सबको पहले संस्कार और गुरुमन्त्र उपदेश हुआ है। बिना मन्त्रादि किसी का उद्धार आजतक न हुआ न होगा और शास्त्र की आज्ञा प्रसिद्ध सब ठौर पर है कि ब्राह्मण बालक का संस्कार आठ वर्ष की अवस्था में और क्षत्रिय का ग्यारह बारह वर्ष के और वैश्य का सोलह वर्ष के वयक्रम में न हो जावे तो वह अपने वर्ण से पतित हो जाता है, तो सब प्रकार से संस्कारों का होना सिद्धान्त व मुख्य करके कर्तव्य है जो किसी का यह कथन होय कि ऊपर का वेष बनाने से क्या लाभ होगा, मन का वेष सँवारना चाहिये, तो जान रक्खो कि पहले तो इस सिद्धान्त में बोलचाल व प्रश्न व संदेह

की समवाई व पहुँच ही नहीं है, क्योंकि शास्त्र की आज्ञा में किसको पराक्रम वाद करने का है ? कान लटकाकर उस आज्ञा के अनुकूल साधना करना उचित है नहीं तो विचार लेना चाहिये कि किसी को आजतक जन्म के दिन से संसार में एक ही बेर बिना ऊपर के वेष व भजन को अन्तःकरण की उज्ज्वलता प्राप्त भई है जब ऊपर भजन, व्रत, नेम, जप, तप आदि करते हैं तब सैंकड़ों जन्मों में भीतर की पदवी मिलती है, सिवाय इसके प्रकट है कि पारसपाषाण लोहे को सोना कर देता है सो यह वेष ऊपर का पारसमणि के सदृश है। निस्संदेह अन्तःकरण के अवगुणों को दूर कर देगा फिर तुलसी और भगवत् के शङ्ख चक्र आदि का सत्संग है और सत्संग का माहात्म्य पहले लिख चुके हैं फिर तीर्थ के सदृश है कि हृदय को पवित्र कर देना तीर्थों का स्वभाव है व सिपाही तब कहलाता है कि जब तरवार बाँधता है, बिना ध्वजा अलग २ के ठाकुरद्वारे व शिवालय की समझ नहीं होती है। बैल पर त्रिशूल का अङ्क लगा देते हैं, शिवजी का नाँदिया विख्यात हो जाता है। कालू-कहार जो कहारों का गुरु है उसकी वार्त्ता है कि किसी राजा धर्मात्मा के राज में मछली पकड़ता रहा, राजा को आवते देखकर जाल पोखरे में छोड़ दिया। अपने प्राण की भय से तालाब की मिट्टीको तिलक लगा व जालके दानों की माला लेकर साधुओं के रूप से बैठ गया। राजा ने उसको साधु जाना दण्डवत्कर और कुछ भेटधर चला गया व कालू उसी घड़ी भगवत्शरण हुआ और यह दोहा पढ़ा।

दो० ॥ बाना बड़ो दयाल को, तिलक छाप अरु माल। यम डरपैं कालू कहै, भय मानौ भूपाल ॥ इस हेतु बहुत उचित व करनी यह चाहिये कि वेष सद्गुरुसे ले, सो पांचों संस्कार में पहले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक है उसके निमित्त अथर्वणवेद के उपनिषद् में यह आज्ञा है कि भगवच्चरण के चिह्न अर्थात् तिलक जीव के कल्याण के हेतु जो कोई धारण करता है और वह तिलक मध्य में छिद्र होवे और खड़ा हो वह मनुष्य भगवत् को प्यारा है और धर्मात्मा व मुक्तिवाला है। दूसरे पुराणों का वचन लिखदेने से वेदश्रुति के प्रमाण लिखने पर प्रयोजन न समझा सो वेद व पुराणों की आज्ञा के अनुकूल चारों संप्रदाय में प्रणाली तिलक की है, पर तिलक के स्वरूप बनाने में आपस में कुछ भेद है। श्रीसंप्रदाय में दोनों ओर बीच में ललाट के भगवच्चरणों के चिह्न बनाकर दोनों भौंह के बीच में सिंहासन लगाते हैं और बीच में रोली की पीली या लाल लकीर दीपकज्योति के आकार खींचते हैं कि उसका नाम श्री है और कारण अधिक करने श्री के निमित्त या दो विचार इसमें हैं कि यह चिह्न उन चरणकमलों का है जिनका सेवन श्री अर्थात् लक्ष्मी अनुक्षण करती हैं। माध्वसंप्रदाय में दो लकीर महीन ऊँची लगाकर दोनों भौंहों के नीचे सिंहासन लगाते हैं और सिंहासन के नीचे एक चिह्न कटार के फल के आकार नाक तक देते हैं निम्बार्कसंप्रदाय में दो लकीर महीन के बीच में एक बिन्दी छोटी

श्यामबन्दिनी अथवा श्वेत लगाने की रीति है, उसको कमल कहते हैं और सिंहासन महीन लकीर का जैसा तिलक का और विष्णुस्वामी संप्रदाय में दो लकीर महीन और नीचे उसके सिंहासन लगाकर बीच में शून्य छोड़देते हैं। व्यासजी ने जो अपनी संप्रदाय की नई परिपाटी की तो निम्बार्कसंप्रदाय से उनके तिलक में थोड़ा भेद यह है कि निम्बार्कसंप्रदाय में तिलक का सिंहासन दोनों भौंहों के नीचे लगाया जाता है और व्यासजी की संप्रदाय में सिंहासन नासिका के अग्रभाग से तिलक आरम्भ करते हैं। हितहरिवंशजी की संप्रदाय का तिलक निम्बार्कसंप्रदाय के आकार है और रामानन्दजी की संप्रदाय का श्रीसंप्रदाय के अनुसार है। चारों संप्रदायों में द्वादश अङ्ग पर तिलक करना लिखा है और सब तिलकों के मन्त्र अलग २ हैं। निम्बार्क-संप्रदाय में दोनों लकीरों के बीच में बिन्दी का लगाना और माध्व व विष्णुस्वामी के संप्रदाय में रिक्त का और श्रीसंप्रदाय में गोपीचन्दन छोड़कर और तीर्थों के जैसे चित्रकूट व तोताद्रि आदि की मृत्तिका का तिलक लगाना विधि है व तैसे ही रामानन्दसंप्रदाय में और तीनों संप्रदायों में गोपीचन्दन का व बेवश के समय दूसरे तीर्थों की मृत्तिका का पर विष्णुस्वामी संप्रदाय में केशर आदि का भी लगाते हैं ।। तिलकनिम्बार्क संप्रदाय का ।। तिलक माध्वसंप्रदाय का ।।

दूसरा संस्कार मुद्रा है और अथर्वणवेद की श्रुति की आज्ञा है कि जो कोई पुरुष भगवत् के शंख चक्र आयुध की तप्तमुद्रा दोनों भुजा पर धारण करता है सो विष्णुमहाराजके परमपद को जाता है और इसी प्रकार दूसरी श्रुति थोड़े अक्षरों के न्यूनविशेष की हैं व पद्मपुराण में भी ऐसी ही आज्ञा है, यद्यपि चारों संप्रदायवाले इस आज्ञा के अङ्गीकार में एकमत हैं, पर श्रीसंप्रदाय में तो यह रीति है कि दीक्षा देने के समय तुरन्त तप्तमुद्रा धारण करा देते हैं। गृहस्थ होय अथवा त्यागी होय और तीन संप्रदाय में एक पुराण के श्लोक के प्रमाण में शीतल मुद्रा की रीति है और यद्यपि अगिले आचार्यों ने पुराण के प्रमाण से सप्तमुद्रा धारण करना एकस्थान द्वारका में लिखा है, पर गृहस्थों में यह चलन नहीं। गृहत्याग के पश्चात् उचित व अवश्य करनी यह है, तीसरा संस्कार माला है तुलसी को अथवा कमल के फलकी विहित है। तुलसीजी का माहात्म्य बहुत जगह पुराणों में लिखा है, इसहेतु विस्तार करके तर्जुमा लिखना प्रयोजन नहीं समझा। सारांश यह है कि तुलसी के धारण करनेवाले को निश्चय भगवत् की प्राप्ति होती है और मरण के समय तुलसी की माला या तुलसीदल अथवा कण्ठी जिसके शरीर पर होय तो यमराज का भय नहीं होता, सद्गति को जाता है। पद्मपुराण में जो कदम्ब आदि वृक्षों के काष्ठ की माला वृन्दावन की बनी हुई का माहात्म्य तुलसी की माला के सदृश देखने में आया। चौथा संस्कार मन्त्र है सो उसकी महिमा सब कोई जानते हैं कि सब संप्रदायों की जड़ और सब वेदशास्त्रों का सारांश और शीघ्र भगवत् को मिला देनेवाला

और भुक्ति मुक्ति की कामना पूर्ण करनेवाला है। भगवत् में और मन्त्र में बाल बराबर भी भेद नहीं है। भगवत् मन्त्र के आधीन हैं सब वेद व पुराण उस मन्त्र की महिमा को वर्णन करते हैं, इस हेतु किसी श्रुति का तर्जुमा करना प्रयोजन न समझा सो मन्त्र चारों संप्रदाय का अलग २ है। जो यह वाद हो कि एक स्वर का मन्त्र अलग २ किस हेतु है तो यह दृष्टान्त अच्छे प्रकार उस वाद को बिरवार देता है, नाम व सम्मुख होता है इसी प्रकार वह भगवत् जिस नाम और मन्त्र से स्मरण किया जावे सम्मुख होता है। पांचवां संस्कार १ नाम २ दूसरा करने का है उसके निमित्त कुछ प्रमाण व वाद का प्रयोजन नहीं जिस वर्ग में जो कोई होता है उसी-भांति का नाम रक्खाजाता है। पलटन में भरती हो तो सिपाही कहते हैं और सवारों में हो तो सवार। चारों संप्रदाय के जो संन्यासी होते हैं त्रिदण्डी कहलाते हैं। एक दण्ड लकड़ी पलाश का दूसरा सिखा तीसरा सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत, विशेष करके नाम गिरि पुरी तीर्थ मुनि संन्यास धारण के समय रक्खेजाते हैं व कपड़ा श्वेत अथवा गेरू के रंग का या शिगरफी रंग का पहिरते हैं और संन्यास लेने के पहले सब संप्रदाय में सब रंग की पहिरन सिवाय नील आदि जो शास्त्र में निषेध है पहिनते हैं। स्मार्तसंप्रदाय जो चारों संप्रदायों से अलग है और उसके आचार्य शङ्करस्वामी हुये उसके तिलक की रीति त्रिपुण्ड्र अथवा वटाकर अर्थात् चिह्न बरगद के पत्रके सदृश चन्दन अथवा भस्म या गोपीचन्दन या तीर्थ की मृत्तिका से है।

और माला तुलसी व कमलाक्ष व रुद्राक्ष व जयापूता आदि की व गायत्री आदि सब प्रकार के मन्त्र हैं। मुद्रा लगाने की रीति नहीं त्याज्य जानते हैं नाम वही रहता है जो जन्म होनेपर धरागया और यज्ञोपवीत के समय जो संस्कार हुआ उसी को सब प्रयोजन के अर्थ बहुत कर समझते हैं, फिर गुरु नहीं करते हैं संन्यास की इस संप्रदाय में यह रीति है कि शिखासूत्र दूर करदेते हैं केवल एक दण्ड लकड़ी का रखते और नाम भी उसी समय दूसरा धराजाता है और इसकी संप्रदाय में संन्यासियों के दश नाम हैं जो कि शङ्करस्वामी की कथा में लिखेगये हैं। गेरू या शिगरफ के रङ्गका कपड़ा पहिनना व तिलक त्रिपुण्ड्र भस्म का ब्राह्मण के सिवाय और किसी के हाथ का भोजन न करना, कर्मों का करना न करना बराबर समझना और दूसरे धर्म सब संन्यासियों के बराबर हैं। मुख्य संन्यासी वे हैं जो दण्डधारण रखते हैं और सब संप्रदाय में दण्डीस्वामी बोले जाते हैं, विशेषकर जो काशीजी व मथुरा आदि में आते हैं। हे श्रीकृष्णस्वामी ! हे दीनवत्सल ! हे दीनदयालु ! हे करुणाकर ! कभी कृपा करके इस अपने घरजाये चेरे की ओर भी कृपादृष्टि करोगे। हे नाथ ! भलाहूँ कि बुरा जैसा हूँ आपका हूँ जिस प्रकार लाखों करोड़ों जन्म तक इस मेरे मन ने मुझको अपने वश में रक्खा है इसी प्रकार कभी मुझको भी तो ऐसा करदेव कि मैं मन को अपने वश में करलूँ और सच करके जो सदा

का अपराधों से भरा हूँ पर मेरी ओर देखना क्या प्रयोजन है आप अपने विरद पतितपावनता की ओर देखें कि कोटानुकोटि महापापी और पातकी एक नाम के अवलम्ब से शुद्ध और पवित्र हुये और होते हैं और यह निवेदन मेरा ऐसा नहीं कि जिसका पूरा करना कुछ क्लिष्ट हो। थोड़ीसी बात यह चाहता हूँ कि वह समाज आपका जो आरम्भ ग्रन्थ में लिख आया हूँ सदा मेरे मन में बसा रहे स्वर्ग में या नरक में कहीं रहूँ। कवित्त ॥

बसीरहै शशिछविज्यों मन चकोरन के, अलिमति मालतीसुमन में बसीरहै।
बसीरहै गजमन रेवाकी रुचिररेणु, मोरन की रुचि घनाघन में बसी रहै॥
बसीरहै श्रीपतिसदन कमलाजू जैसे, मदनक्षुधा ज्यों युवायोनि में बसी रहै।
बसीरहै त्योंही तेरे छविकी लगन कृष्ण, मूरति तिहारी मेरे मन में बसी रहै॥

कथा रसखान की ॥

रसखान जो परमभक्त भगवत् के हुये पहले मुसलमान थे अपने पीर के साथ राह चलते श्रीवृन्दावन में आपहुँचे तो अनेक जन्मों के पुण्य उदय हुये अर्थात् श्रीव्रज-चन्द महाराज के दर्शन हुये। दर्शन होते ही कुछ और ही दशा होगई, उस रूप अनूप में छककर बेसुध होकर गिरपड़े। उनका पीर उस पीर को न समझा, मूर्च्छा समझ-कर औषध करने लगा और पुकारा, आंखें खोलीं रसखान की उसी क्षण सब विद्या व काव्य सब गुण की खानि हो गये। उस मनोहरमूर्ति की छबि एक कवित्त में वर्णन की अन्त में कहा कि आंखें क्या खोलूँ वह मूरति मन में बस गई है। पीर ने कहा काबेको चलो तब बोले कि जो है सो सब यहांही प्राप्त है मैं व्रज का होचुका अब कहां जाता हूँ और एक कवित में कहा है कि पत्थर हूँ तो गिरिराज का जो पशु हूँ तो नन्दराय की धेनु में चरूँ जो मनुष्य शरीर मिले तो व्रज के ग्वालबाल में रहूँगा जो पक्षी हूँ तो व्रज के वृक्षों का। उनके पीरने चाहा कि बलसे रथ में डालकर ले जावें, वृन्दावन के वनों में भागकर जा छिपे, वृन्दावनवास करके हजारों कवित्त वृन्दावनकी शोभा के वर्णन और प्रियाप्रियतम की शोभाविहार की रचना करी। वैष्णव वेष रखते थे माला बहुत पहिनते थे। किसीने पूछा कि एक दो माला बहुत हैं इतनी माला का क्या प्रयोजन है? उत्तर दिया कि माला संसार समुद्र से पार उतार देती हैं सो जो छोटे पत्थर हैं उनको एक ही दो माला बहुत हैं और मैं कि बड़े पत्थर के सदृश हूँ मुझको बहुत माला रखना चाहिये।

कथा भगवान्दासजी की ॥

भगवान्दासजी रहनेवाले मथुरा भगवद्भजन भाव में दृढ़ व बड़े गुणवान्, भग-वत् के प्रेमी, श्रोता और रहस्य व रस के ज्ञाता, भगवद्भक्तों में विश्वास और ऐसे सुन्दर कि जिनके देखने से मन को सुख हो और भगवत् के जो धाम हैं उनके टहल करनेवाले सब भाव करके श्लाघ्य हुये। एक बेर बादशाह ने परीक्षा के हेतु डौंड़ी को

फेरवाय दिया कि जो कोई माला तिलक धारण करेगा गरदन मारा जायगा इस बात पर बहुतों ने छोड़ दिया पर भगवान्‌दासजी न डरे अपने अनुगामियों समेत और दिनसे अधिक प्रकाशित तिलक दोहरीमाला धारण कर बादशाह के सामने जान के आये। बादशाह ने बुरा मानकर आज्ञा न मानने का कारण पूछा—भगवान्‌-दासजी ने अशङ्क उत्तर दिया कि हमारे दीन में मालातिलक सहित प्राण जाय तो उद्धार होता है अब इस समय कि हमको अपनी मृत्यु ज्ञात होगई तो तिलक और माला अच्छे प्रकार धारण किये कि बिना परिश्रम उद्धार हो। बादशाह यह विश्वास दृढ़ देखकर अति प्रसन्न हुआ कहा कि जो चाहना हो सो मांगो। भगवान्‌दासजी बोले मथुराजी से बाहर जाना नहीं चाहता। बादशाह ने लिख दिया कि मथुरा की आमिली जबतक मनचाहैं तबतक करे सो बहुतकाल मथुरा की आमिली भगवान्‌-दासजी ने करी। हरदेवजी का मन्दिर औरमानसीगङ्गा पोखरा गोवर्द्धनजी में उनका बनवाया है।

कथाचतुर्भुजजी की ॥

चतुर्भुजजी राजा करौली ऐसे भगवद्भक्त साधुसेवी हुये कि उनके दृष्टान्त को कोई राजा नहीं मिलता है। भक्तों के आने का वृत्तान्त सुनकर इसप्रकार लेनेको आगे जाते थे कि जैसे सेवक व चाकरअपनेस्वामी की सेवा में जाता है। घर लाकर राजा व रानी अपने हाथों से चरण धोते, पूजा करते नगर के चारों ओर चार-चार कोस-पर चौकी थी कि जो कोई मालाधारी आवे उसका समाचार पहुँचावें। एक दूसरा कोई राजा यह वृत्तान्त वेषसेवा का सुनकर कहनेलगा कि योग्य अयोग्य की समझ नहीं तो भक्ति की बड़ाई क्या है? उसके पण्डित ने उत्तर दिया कि मन में समझ लेते होंगे, राजा ने भाट विमुख को परीक्षा के हेतु भेजा व समझा दिया कि माला तिलक धारणकर स्वामी हरिदासजी बनकर राजा के पास जाना वह भाट आया अपने स्वामी का कहना भूलगया भाटोंकी रीति फैलाई। जब प्रवेश राजा तक दुरूह देखा तब अपने राजा की शिक्षा स्मरण हुई व उसी भांति से गया द्वारपाल ने कुछ रोकटोक न किया, जब सामने गया तो राजा ने अपने स्वभाव के अनुकूल ने आगतस्वागत सब किया। भगवत्प्रसाद जिमाया भगवच्चर्चा आरम्भ किया, वह भाट हूँ हां करता रहा। राजा ने जान लिया किसी ने परीक्षा को भेजा है, बिदाई दिया और एक डिबिया में एक फूटी कौड़ी धरके ऊपर से कीनखाप व मुशज्जर से लपेट-कर ऊपर मुहरछाप लगा उसको देदिया भाट जब अपने राजाके पास आयां तो सब वृत्तान्त भक्तिभाव का राजा चतुर्भुज का वर्णन किया व सब बिदाई समेत डिबिया राजाके आगे धरदी। डिबिया खोलकर देखा भेद न पाया तब उसी पण्डित ने सम-झाया कि खुली बात है कि ऊपर वेष ऐसा और भीतर भाट है भक्ति नहीं, राजा चतुर्भुज यही कहता है। वह राजा लज्जित हुआ, उस पण्डित को भेजा पण्डित सत्संग

को धन्य मानिगया, राजा चतुर्भुज सुनकर आदर से दण्डवत् कर लेगया, बहुत दिनतक सत्संग का सुख लिया, निश्चय जब चलने की इच्छा करी राजा ने भण्डार खोलकर कहा जो इच्छा हो सो ले जाइये। पण्डित ने कुछ न लिया एक मैना पक्षी राजा को प्यारा था राजा साधुसेवी ने दे दिया। मैना लेकर राजा के समीप पहुँचा मैना सभा को भगवद्विमुख देखकर कहने लगी कि कृष्ण कृष्ण कहो जो तुम्हारा उद्धार हो, यह संसार असार व आगमापायी है, बिना कृष्णभजन किसी प्रकार उद्धार नहीं होगा, राजा ने सब वृत्तान्त पूछा पण्डित ने कहा कि एक मैना से सब समझ लेव और हम करोड़ों मुख से भक्तिभाव राजा चतुर्भुज का वर्णन नहीं कर सकते हैं। राजा को बड़ा विश्वास हुआ भगवद्भक्ति साधुसेवा अङ्गीकार की पीछे जब भाव-भक्ति राजा को होगई तब मैना बिदा होकर राजा चतुर्भुज के पास पहुँची राजा बड़ा प्रसन्न हुआ।

कथा एक राजा की ॥

एक राजा भगवद्भक्त ऐसा हुआ कि संसार के सुख और ऐश्वर्य को अनित्य समझकर सदा भगवत् के स्मरण भजन में रहता था, जिसको कण्ठी तिलक धारण किये देखता भगवद्रूप जानके दण्डवत् करता व धन भगवत् उत्साह व भक्तों के हेतु लगाता। भांड़ आदि जो भगवद्विमुख हैं इनको कुछ न मिलता, भांड़ मन्त्रणा कर साधुओं का वेष बनाकर आये। राजा ने अपने भाव के अनुसार पूजन व सत्कार किया, भांड़ साज सम्हाल राग नाच व हँसने का रूप बनाने लगे। राजा प्रसन्न होकर बोला धन्य है भगवद्भक्तों को कि अपने सेवकों को ढोल बजाकर नाच गायककर कृतार्थ करते हैं। बड़े आदरपूर्वक प्रसाद जिमाया एक थाल में मुहर भरकर बिदा के समय आगे धरदिया। भांड़ों ने विश्वास राजा का देखकर और सत्संग जो हुआ तो सब भगवत्शरण होगये।

कथा गिरिधर ग्वाल की ॥

गिरिधर ग्वालजी भगवत् में सखाभाव रखते थे और अनुक्षण भगवत् के समीप और हँसीखेल में मिले रहते थे अपने अन्तर के प्रेम को बहुत छिपाये रहते, पर भगवच्चरित्रों को कीर्तन करते वाणी गद्गद होजाती, प्रीति कहां छिपसकती है, तब वन में जाकर कीर्तन व नृत्य करने लगे। एक बेर मौजे मल्लिपुरा में भगवत् का रामचरित्र कराया व प्रेम में विवश होकर सब धन व वस्तु भगवत्भेंट कर दी। भक्तों में ऐसी प्रीति रही कि जिसको साधुवेष देखते भगवद्रूप जानते। एक बेर कोई साधु मरा देखा उसका भी चरणामृत लिया। दूसरे ब्राह्मणों ने यह स्वभाव अयोग्य विचारकर मना किया पर न माना, उत्तर दिया कि भगवद्भक्त को कबहूँ मृत्यु नहीं यह तुम्हारा अविश्वास है जो मृतक कहते हो और ग्वालपट्ट इस कारण से विख्यात हुआ कि सखा रहे।

कथा लालाचार्य की ।।

लालाचार्य रामानुजस्वामी के जमात में ऐसे भगवद्भक्त हुये कि जिनकी कथा सुनकर निश्चय भगवच्चरणों में प्रीति होती है। गुरु ने आज्ञा दी कि भगवद्भक्तों में जितनी प्रीति व विश्वास हो सो अच्छा पर बड़े भाई से कम उनको न जानना सो उस आज्ञा के अनुकूल बर्तते रहे। एक समय कोई माला तिलकधारी को नदी में बहते जाते से निकालकर अपने घर लाये और विमान बनाकर भगवत्कीर्तन करते नदीपर लेजाकर दाहक्रिया करके फिर महोत्सव में ब्राह्मणों सगोत्रों को नेवता दिया। ब्राह्मणों ने अङ्गीकार न किया कहने लगे कि इनका कोई न था जाने कौन जातिका मृतक रहा। लालाचार्य सुनकर चिन्ता करने लगे और अपने गुरु के पास गये। वे स्वामी रामानुज के पास ले गये, दण्डवत् कर सब वृत्तान्त निवेदन किया व स्वामी ने कहा कि वे लोग भगवत्प्रसाद की महिमा नहीं जानते हैं, तुम चिन्ता मत करो भोजन की सामग्री बनाओ, भगवत्पार्षद वैकुण्ठ से आकर भोजन करेंगे। सो उस दिन पर भगवत्पार्षदों का झुण्ड ऐसे स्वरूप और वस्त्र अलंकार से कि किसी ने स्वप्नमें भी न देखा हो आकर जो प्रसाद बना हुआ था अतिप्रेमसे भोग लगाया। ब्राह्मणों को पहले तो आश्चर्य हुआ कि ऐसे ब्राह्मण कहां से आये हैं, फिर द्वेषबुद्धि करके यह मन्त्र ठहराया कि जब भोजन करके आवें तो ऐसी हँसी करो कि लज्जित हों। भगवत्पार्षद उनके कुमन्त्र को जान गये, भोजन करके आकाशमार्ग होकर चलेगये। ब्राह्मणों ने जो यह चरित्र और प्रताप देखा तो बहुत लज्जित हुये और अहंकार को छोड़कर आये और लज्जा करके लालाचार्य के सामने आंखें बराबर न करसके और पनवाड़े भोजन किये हुये पार्षदों के पड़े थे उनमें से सीथ प्रसाद लेकर खाने लगे, फिर लालाचार्यके चरणों में दण्डवत् करके प्रार्थना की कि अब हमको अपना सेवक करो और कृपा करो। लालाचार्य ने कहा कि तुम्हारे ऊपर तो भगवत् की कृपा हुई कि भगवत्पार्षदोंके दर्शन तुमको हुए, इससे अधिक क्या कृपा चाहते हो ? ब्राह्मणों ने विनय किया अब हमको लज्जित करना क्या प्रयोजन अनुग्रह करना प्रयोजन है सो सब भगवत्शरण हुये और भगवद्भक्ति और वेषनिष्ठा का प्रताप सब संसार में प्रकाशित और प्रकट हुआ।

कथा मधुकरसाह की ।।

राजा ओड़छे भगवद्भक्ति में भी राजा हुये साधुवेष में अत्यन्त प्रेम व विश्वास था सच करके जैसा मधुकर नाम था वैसी ही रीति भी रही अर्थात् भ्रमर सारग्राही होता है, वैसे ही सारग्राही थे। उनकी रीति थी कि जो कोई कण्ठी तिलक मालाधारी हो उसका चरणामृत लेते और परिक्रमा करते। राजा के भाई बन्धुओं को यह बात अच्छी न लगे, एक गदहे को बहुत सी माला पहनाकर तिलक करके महल में भेज दिया, राजा उठा उसका चरण धोकर परिक्रमा करके कहा कि आज

अङ्गीकार किया, तब हरिभक्त ने घाटम को भगवन्मन्त्र उपदेश करके चेला किया। घाटम गुरु की चारों बातों पर अभ्यास रखते रहे, एकदिन घर में कुछ न था, साधु आगये खलिहान से किसी के गेहूँ चुरालाकर साधुसेवा को किया, पर सेवा करने में कुछ डर मन में हो जाता था कि पता लगाकर गेहूँवाला आकर पकड़ न ले नहीं, तो साधुओं की सेवा में विघ्न होगा, सो आँधी पानी आई कि पता पांव का सब मिटगया, सुचित्त होकर सेवा किया। एकसमय गुरुने भगवत्‌उत्साह में घाटम को बुलाया, उस समय साधुसेवा के करने से कुछपास नथा चिन्ता में डूबे हुये राजा के मकान पर आये। डेवढ़ीदारों ने पूछा तब उत्तर दिया चोर हूँ, घाटम मेरा नाम है, वे लोग पहिराव उत्तम उनका देखकर जानगये कि हँसी की राह अपने को चोर कहता है। कुछ न बोले, घोड़सार के भीतर जाकर एक उत्तम घोड़ा मुश्की रङ्ग चुन करके सवार होकर चले। द्वारपर द्वारपालों ने रोका फिर उसी प्रकार सांचसांच कहकर चले आये। गुरु की ओर चले सन्ध्या के समय एक नगर में किसी ठाकुरद्वारे में आरती होती थी वहाँ गये भजन करने लगे। राजा के यहाँ उस घोड़े की ढूँढ़ पड़ी, कोतवाल बहुत सिपाहियों सहित घोड़े के पाँव का पता लगाता हुआ उसी मन्दिर के द्वारपर जहाँ घाटम आरती में थे पहुँचा, भगवद्भक्तवत्सल महाराज को चिन्ता हुई कि यह कोतवाल घोड़े को पहिचान कर मेरे भक्तको दुःख देगा। इस हेतु घोड़े को नुकरारंग करदिया और घाटम जब सवार होकर निकले तब कोतवाल देखकर लज्जित व सोच में भर गया कि घोड़ा वही पर रंग दूसरा, अब राजा जाने हमें कैसा दण्ड करेगा। घाटमजी उनसे वृत्तान्त सब सुनकर दया करके बोले कि वह चोर मैं हूँ और यह घोड़ा भी वही है, भगवत्‌इच्छा से यह रंग हो गया मेरी रक्षा के हेतु, सो चिन्ता न करो घोड़े समेत तुम्हारे राजा के पास मैं चलता हूँ। यह कहकर राजा के पास आये राजा सब वृत्तान्त सुनकर चरण पर पड़ा और रुपया मोहर सब देने लगा। घाटमजी ने कहा घोड़े से प्रयोजन है और कुछ न चाहिये। राजा ने और कुछ सहित घोड़ा घाटमजी को भेंट किया, घाटमजी ने वह सब लेजाकर गुरुजी को भेंट कर दिया, कुछ संदेह नहीं किया। भगवद्भक्ति का ऐसा ही प्रताप है सो आप गीताजी में भगवत् ने कहा है कि किसी के आचार दुष्ट भी हैं पर मेरा भजन ऐसा करता है कि दूसरे को कदापि नहीं जानता उसको निस्संदेह साधु जानना चाहिये, काहे से कि जो निज तात्पर्य और सारांश शास्त्रों का है उसको वह पहुँच गया है व निश्चय करके बुरे आचरण भी उसके शीघ्र छूट जावेंगे और मुझको प्राप्त होगा और अर्जुन सच जान मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।

कथा नरवाहन की ॥

नरवाहनजी राधावल्लभी रहनेवाले भौगांव के हितहरिवंशजी के चेले, भगवद्भक्त, साधुसेवी परम गुरुनिष्ठ हुये। एक साहूकार की नाव को लूटलिया और उसको

और धनको लेने के हेतु बन्धन में डारा। नरवाहनजी की लौंड़ी दयावती थी, उस वणिक को खाना पहुँचाया करती। उसने उसको यह उपाय बतलाया कि आधीरात के समय राधावल्लभ हितहरिवंश राधावल्लभ हितहरिवंश पुकार पुकार कहना जिसमें नरवाहन के श्रवण में पहुँचे और जब कुछ पूछें तो हितहरिवंशजी का चेला अपने को कहना। उसने वैसाही किया नरवाहनजी सुनतेही नाम राधावल्लभ और हित-हरिवंशजी के बेसुधि दौड़े। साहूकार को दण्डवत् करके वृत्तान्त पूछा उसने कहा कि हितहरिवंशजी का चेला हूँ और राधावल्लभजी का बिना मोल का चेराहूँ। नरवा-हनजी लज्जित और ग्लानियुक्त हुये और सब धन उसका फेर दिया और अपने अपराध को क्षमा कराया व चरणों में पड़कर विनय किया कि तुम बड़े भाई हो मुझको अपना दास जानकर इतनी मेरी पालना करो कि यह वृत्तान्त स्वामीजी तक न पहुँचे। वह साहूकार यह दशा नरवाहनजी की देखकर उसी घड़ी भगवत् के शरण हुआ और हितहरिवंशजी के पास आया और चेला होकर भगवद्भक्त हो गया। गोसाइँ-जी भी नरवाहनजी के निश्चय पर बहुत प्रसन्न हुये। अब यहां एक प्रतिवाद यह खड़ा हुआ कि एक कथा तो घाटम की लिखि आये कि वह चोरी किया करता था यह नरवाहनजी की लिखी कि ठग थे तो क्या भगवद्भक्त चोरी और ठगीको पाप नहीं समझते ? उत्तर यह है कि भगवद्भक्त निश्चय करके चोरी और ठगीको पाप कर्म समझते हैं और ऐसे कर्मों के निकट नहीं जाते, भगवद्भक्तों के बराबर संयमी कोई नहीं और यह चरित्र जो घाटमजी से और नरवाहनजी से हुआ तो चोरी में नहीं गिना जाता, चोरी वह है जो अपने शरीर के हेतु होय और उससे लड़केबालों का खानाकपड़ा चलता हो अब और शङ्का उत्पन्न हुई कि इस लिखने से चोरी करना अच्छा कर्म ठहरा कि लोगों का धन भले लूटा करे और शंख झांझ बजें साधु-सेवा किया करें। उत्तर यह है कि कदाचित् चोरी करके साधुसेवा करनी उचित नहीं, सुकृत के धन से साधुसेवा करनी उचित है और अभिप्राय मेरा यह नहीं था कि जो कुछ समझकर शङ्का कर दिया, तात्पर्य यह था कि जब अन्तःकरण की निर्मलता प्राप्त होती है और यह संसार अनित्य दिखाई देने लगा हो और द्वैतका आवरण उठ-गया हो उस समय जो कर्म भक्तों से होते हैं वह सब अच्छे हैं। जो चोरी व ठगी करें तो उस दोष में वह भक्त दण्ड के योग्य नहीं होता। निश्चय इसका गीताजी के अध्याय पांचवें व श्लोक सातवें से अच्छे प्रकार होता है और घाटम की कथा भी निश्चय कराने वाली है कि भगवत् ने पांवके चिह्न दूर करने के निमित्त आंधी और मेह वर्षा दिया और घोड़े का रङ्ग मुश्की से सफेद करदिया और अपने भक्त के कर्म-धर्म व पुण्यरूप समझकर उसके पक्ष पर हुये, सिवाय इसके सब धर्म कर्म भगवद्भक्ति की प्राप्ति के अर्थ हैं जिस काम से भगवद्भक्ति हो वह चोरी में गिनती नहीं, बरु जैसे अन्य साधन सब हैं तैसे है; सो घाटम व नरवाहन दोनों से प्रसन्नता भगवत् और

गुरु की हुई, जो वे लोग चोर और ठग होते तो भगवत् कब प्रसन्न होते ? सिवाय इसके समर्थ को कुछ दोष नहीं होता जिस प्रकार गंगाजी में सब प्रकार जल मिलकर गङ्गाजल और प्रज्वलित अग्नि में सब वस्तु अग्नि हो जाते हैं तो जान रखना कि साधुसेवा वह परमधर्म है कि उसके निमित्त भगवद्भक्तों ने निज भगवत् का आभूषण उतारकर बेंच डाला है दूसरे कर्म की कौन बात है । बरु आप भगवत् साहूकार बनकर अपने भक्तों के हाथ से ठगी कराते हैं और उस चरित्र से प्रसन्न और संतुष्ट होते हैं कि निश्चय इसका हरिपाल निष्किञ्चन की कथा से होता है । प्रीति सांची और विश्वास दृढ़ उचित है, घाटम के विश्वास को देखना चाहिये कि कैसे गुरु के वचन पर स्थिर और सच्चे थे कि प्राण का भी लोभ न किया और नरवाहनजी के विश्वास को देखना चाहिये कि अपने गुरु व इष्ट का नाम सुनकर तीन लाख व तीस हजार का धन फेर दिया और अपने आपको भक्त के दुःख देने व सताने का अपराधी समझा । नितान्त अर्थ यह कि भगवद्भक्ति में विश्वास होना सब सुकर्म से शिरोमणि है । सिवाय इसके एक यह है कि जिस अपराध से बालि और रावण भगवत् के घर से निकाले गये और वध को प्राप्त हुये सोई अपराध सुग्रीव और विभीषण से हुआ पर वे भक्ति के प्रताप से महाभागवत और भगवत्सखाओं में गिने गये तो भगवद्भक्ति का यह प्रताप है कि सब अपराध उलट के पुण्य हो जाता है ।

कथा गजपति की ।।

गजपति राजा पुरुषोत्तमपुरी के भगवद्भक्त हुये । गोसाईं श्रीकृष्णचैतन्य अपने गुरु में ऐसा विश्वास दृढ़ रखते थे कि जब दर्शन कर लेते तब राज्य काज किया करते । एक दिन गुरु गोसाईंजी ने उनको दर्शन करने को आना वर्जित किया, राजा संन्यासीरूप होकर दर्शन के हेतु इधर उधर फिरने लगा, पर दर्शन न पाया । एक दिन रथयात्रा के समय देखा कि रथ के आगे गोसाईंजी नृत्य कर रहे हैं दौड़ के चरणों में पड़ा, गोसाईंजी ने राजा का प्रेम व विश्वास देखकर छाती से लगा लिया व प्रेम आनन्द में मग्न कर दिया ।

कथा चतुरदासजी की ।।

स्वामी चतुरदास परमभक्त व वैराग्यवान हुये । भगवद्भजनके आनन्द में मग्न रहकर सदा भगवत् के रङ्ग में रँगे रहते थे । मथुरा और व्रजमण्डल में फिरते हुए ठौर ठौर सत्संग के सुख को लेते रहे, गुरुभक्ति में ऐसे हुए कि कोई न होगा । उनके गुरु सदा घर पर आया करते । भगवत्रूप जानकर सेवा पूजा किया करते स्त्री स्वामीजी की नवयौवना व रूपवती थी । उसको गुरु की सेवा में तत्पर कर दिया कि जो आज्ञा हो सो सम्हारना और आप अपने धर्म पर ऐसे दृढ़ रहे कि कभी विश्वास में तनक भेद न आया । नितान्त सब सामग्री और धन व स्त्री

गुरु कौ भेंट करके दण्डवत् करके आज्ञा से व्रजमण्डल में आये। प्रभात की मङ्गल आरती के दर्शन गोविन्ददेवजी के किया करते और शृङ्गार आरती केशवदेवजी की और राजभोग नन्दगांव का देखकर गोवर्द्धनजी में राधाकुण्ड पर होते हुये वृन्दावन में आते। एक बेर नन्दगाव में मानसरोवर पर बेअन्नजल रहे सो नन्दगांव के स्वामी नन्दबाबा हैं सत्कार पथिक लोगों का कि जो उनके स्थान पर आवें उन्हीं पर उचित है! इस हेतु नन्दजी के कुमार सुकुमार भक्तवत्सल महाराज अपने मेहमान को बिनाअन्नजल न देख सके। बारह वर्ष के लड़के के स्वरूप से दूध लेकर कटोरे में स्वामी चतुरदासजी को दिया। स्वामी चतुरदास ने उस रूप के फिर देखने के लालच जल मांगा जब बहुत देर तक वह निडर चञ्चल लड़का पानी न लाया तब बहुत बेचैन व विकल हुये। भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा की कि पानी का कुछ प्रयोजन नहीं तुमको दूध सब व्रजवासियों से मिलता रहेगा। स्वामी ने विनय किया कि दूध व्रजवासियों को बड़ा प्यारा है कि यशोदाजी ने दूध के हेतु आपको छोड़ दिया था, फिर वे लोग दूध किस प्रकार देंगे ? भगवत् ने आज्ञा की कि निश्चय कर मिलेगा सो स्वामी चतुरदासको दूध सब कोई देने लगे और अबतक स्वामीके वंश में चेले जहां चहें व्रज में तहां दूध लेते हैं। सत्य है गुरुसेवा से कौन पदार्थ नहीं मिलता है।

कथा राघवदास की ॥

राघवदासजी परमभक्त भगवत् के हुये अपनी रचना में अभोग दुबरिया रखते थे, इसहेतु लोग दुबला कहते थे, पर भक्तिभाव में मोटे व महन्त थे। शास्त्रोक्त जो भगवद्धर्म है सो साधना अच्छे प्रकार से की और गुरु चेले का धर्म ऐसा निबाहा जो किसी में न होसके अर्थात् वायुपुराण में लिखा है कि जो मन्त्र है वही गुरु है और जो गुरु है वही भगवत् है। जब गुरु प्रसन्न होगा तो भगवत् आप से आप प्रसन्न व वशीभूत हो जावेगा, सो राघवदासजी ने अपने गुरु की ऐसी सेवा करी कि गुरु और भगवत् को संतुष्ट कर लिया और जिसको अपना चेला किया उसको आवागमन से छुड़ाकर भगवत् में मिला दिया और अन्तर बाहर ऐसे विमल हुये कि कलियुग की काई समीप न आई दिन रात सिवाय भगवत्चरित्र कीर्तन के दूसरा कार्य न था। कठोरवचन कभी मुख से न निकला नाभाजी ने जो दृष्टान्त उनके निमित्त हीरा का लिखा सो अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार हीरा को अहरन पर रखकर घन मारते हैं और वह टूटता नहीं उस अहरन में धँसि जाता है जब दूसरा हीरा उसका सजातीय सम्मुख करते हैं तो अहरन से निकल आता है। इसी प्रकार राघवदासजी थे कि पवन सरदी व गरमी दुःख व सुख संसार का उनके हृदय को चलायमान न कर सका

और सत्संग को देख इस प्रकार आ मिलते थे कि जिस प्रकार हीरा अपने सजातीय को देखकर आ मिलता है।

निष्ठा आठवीं।

प्रतिमा व अर्चा के वर्णन में पन्द्रह भक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी की चरणकमलों की शंखरेखा को दण्डवत् करके फिर हंसअवतार को दण्डवत् करता हूँ कि ब्रह्मपुरी में प्रकट होकर ब्रह्मा को उपदेश किया। शास्त्रों का सिद्धान्त है कि भगवत् की प्राप्ति के हेतु भगवतही की पूजा-अर्चा जप मन्त्र आदि साधन हैं और पूजा-अर्चा बिना उसके कि जिसका पूजन करना चाहिये नहीं हो सकती और बिना पूजा-अर्चा भगवत् की प्राप्ति दुरूह है। इस हेतु करुणाकर दीनवत्सल महाराजको यह सोच हुआ कि मेरी प्राप्ति पूजा जो मेरी के ऊपर सिद्धान्त ठहरा तो बिना प्राप्ति के पूजा नहीं होसकती तो उद्धार जीवों का किस प्रकार होगा ? तब आप भगवत् ने जिस प्रकार भक्तों के हेतु अवतार धारण किये थे और करता है उसी प्रकार प्रतिमारूप होकर इस संसार में प्रकट हुआ, सो बारह प्रतिमा जैसे बदरीनारायण व रंगनाथस्वामी व गोविन्ददेवजी आदि स्वयं व्यक्त हैं व जगन्नाथरायजी व वरदराज आदि कई प्रतिमा ब्रह्मा व शिवादिक देवताओं की स्थापित की हुई हैं और कोई मुनीश्वर व ऋषीश्वरों की स्थापित है। जब इन मूर्तियों से भी भगवत्ने सब किसी को प्राप्त न देखा तब शालग्रामरूप होकर प्रकट हुये कि अधिक करके सबको प्राप्त हो। पीछे जब यह देखा कि यह भी सब किसी को प्राप्त नहीं है तब आज्ञा की कि सोने चांदी और पाषाण आदिकी प्रतिमा बनाकर और वेदमन्त्रों के अनुकूल प्रतिष्ठा करके पूजन करें और सब प्रतिमाओं के पूजन और दर्शन में चमत्कार दिखाया कि जिसने अनन्य होकर आराधन किया सिद्धपद को पहुँच गया और यहाँ तक करुणा और दयालुता को विस्तार किया कि जो कोई चित्र लिखवाकर और भगवत् जानकर पूजन करता है भगवत् को प्राप्त होता है। सो इस भगवद्विग्रह पूजन दर्शन को भक्तों ने कई प्रकार पर माना है कि कोई तो उस प्रतिमा को निज स्वयं भगवत् की प्रतिमूर्ति जानकर इस प्रकार पर पूजन करते हैं कि पहिले मानसी-पूजन और फिर उस मूर्ति का और किसी का यह विश्वास है कि उस प्रतिमा को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन मानते हैं मानसीपूजन आदि का कुछ प्रयोजन नहीं और तीसरे यूथ का यह वचन है कि वास्तव मूर्ति उस सच्चिदानन्दघन की लोगों के ध्यान में शीघ्र नहीं आसकती इस हेतु मुख्य भगवत्स्वरूप में इस मन के जमजाने के निमित्त इस मूर्ति का दर्शन और पूजन करते हैं और सव कोई अपने विश्वास व निश्चय के अनुसार मनोरथ को पहुँचते हैं सो जब कि यह बात प्रकट

होगई कि आप भगवत् ने जगत उद्धार के निमित्त अपना रूप प्रतिमास्वरूप से प्रकट किया है तो अत्यन्त उचित हुआ कि भगवद्विग्रह को ईश्वर जानकर दृढ़विश्वास से दर्शन और पूजन किया करें। हजारों और करोड़ों का उद्धार प्रतिमाओं के विश्वास के प्रभाव से हुआ और होता है। भागवत का वचन है कि मुकुन्द भगवान् की मूर्ति का दर्शन और उस मूर्ति के दर्शन करनेवाले का मिलना अथवा मूर्ति के चढ़े हुये फूलों का सूँघना और तुलसीदल का खाना और भगवन्मन्दिर में जाना और दण्डवत् करना ये सब भगवत्लोक को प्राप्त करते हैं। नारदपञ्चरात्र में लिखा है कि शालग्रामजी का स्नान जिस बर्तन में कराया जाता है उसका सातवीं बेर का धोवन गङ्गाजल के बराबर का माहात्म्य रखता है, सो माहात्म्य दर्शन आदि का इसी से विचार लेना चाहिए कि कितना होगा, पर यह पूजन आराधन भगवन्मूर्ति का कुछ ऐसी सहज बात नहीं है कि राह चलते उत्तमपद को पहुँचाय देवे अर्थात् बहुत कठिन है—क्या बात है कि शास्त्रों के अनुसार भगवत् एक व्यापक और ब्रह्मस्वरूप है, जब तक अन्य विश्वास को और भांति भांति के शङ्का संदेह और मन की कचाई को हृदय से दूर करके निज उस मूर्ति में मन न लगेगा तब तक किस प्रकार मिलना भगवत् का हो सकता है और वह मन ऐसा लगे कि दूसरी ओर न जाय और न दूसरे की शरण का भरोसा होवे एक वार्ता है कि एक कोई अर्थार्थी को भगवत्पूजन से धन न मिला तो किसी के ताख में रखकर दुर्गामूर्ति का पूजन करने लगा एक दिन यह विचारा कि धूप जो दुर्गा को देता हूँ पहले भगवत् को पहुँचती होगी इस हेतु भगवत् प्रतिमा की नाक में रुई भरने लगा। उस क्षण भगवत् प्रसन्न हुये और बोले कि जो चाहना हो सो कहो ? उसने विनय किया कि पूजा से कभी प्रसन्न न हुये और इस ढिठाई से बहुत कृपायुक्त हुये इसका क्या कारण है ? बोले कि जब तू पूजन करता रहा तब पत्थर की मूर्ति जाना करता था और इस समय सब ओर से मन को खींचकर भगवन्मूर्ति को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जाना इस हेतु प्रसन्न हुये। एक बाई की कथा है कि गुजरात में भगवन्मूर्ति की आराधना वात्सल्यभाव से करती थी, जहां रहती रही उस गांव में भेड़ियों की प्रबलता हुई और कई लड़कों को भेड़िये उठा ले गये। यह सुनकर इस बाई की सुधि गई और मूसल हाथ में लेकर सारी रात जागने लगी। बहुत दिन यह दशा रही कि दिन को भोग व रसोई व शृङ्गार में भगवत् के रहती व रात को रखवारी में भेड़िये की। भगवत् को बड़ी करुणा हुई और साक्षात् प्राप्त हुये बाई ने जो ध्वनि झमझमाहट व घुंघुरू आदि आभूषण की सुनी तो मूसल उठाकर दौड़ी। देखा कि कोई लड़का श्यामसुन्दर मोहन-रूप है। पूछा कि तू कौन है ? उत्तर दिया कि मैं वही ईश्वर परमात्मा हूँ कि जिसकी मूर्ति को तू बालक जानकर आराधन करती है, सो जो तुमको चाहना हो मांगो

बाई प्रसन्न होकर बोली कि तू ईश्वर है तो यह वर मांगती हूँ कि इस मेरे लड़के को भेड़िया न ले जाय। वाह २ बाई यशोदा या कौशल्यारूप तात्पर्य यह कि निश्चय दृढ़ भगवन्तमूर्ति में इस प्रकार का हो कि जो आप भगवत् प्रकट होकर आवें तब भी अपना इष्ट उस मूर्ति को ही समझता रहे और जो दूसरी ओर मन गया तो प्रेम कहां और स्त्री को जिस प्रकार दूसरे पुरुष की शोभा वर्णन करना वर्जित है इसी प्रकार अपनी सेवामूर्ति की बराबर और किसी की शोभा मन में न लावे कि मूर्तिकी पूजा प्रकार में यह बात लिखी है और जिस प्रकार कोई सेवक अपने स्वामी को प्राण से अधिक जानता है और सब प्रकार की सामग्री बनाकर बारबार उसके आगे धरता है इसी प्रकार अपनी सेवा मूर्ति की सेवा उचित है जैसे ग्रीष्मऋतु है तो टट्टी खस की और पंखा और सुगन्ध और पानी का छिड़काव और मन्दिर हवादारऔर फूल और वस्तु अलंकार उत्तम चमक दमकवाले बना करके एक दिन में कई बार भगवत् का शृङ्गार करे और इसी प्रकार वर्षाऋतु और जाड़े की ऋतु में सामग्री सब उस ऋतु के अनुकूल किया करे अर्थात् जो कुछ अपने प्राण और सुख और अपनी शोभा के हेतु जो सजाव और बनावट सामग्री और शृङ्गार की वस्तु हर प्रकार की और खाने पीने के पदार्थ इत्यादि की वार्ता है उसमें दशगुणित भगवत् के निमित्त करे और जिस दिन कोई त्योहार जैसे होली, दिवाली, दशहरा और वसन्तपञ्चमी आदि अथवा सांझी का समय या सावन के महीने में हिंडोरा झुलानेके चरित्र और भगवज्जन्मउत्साह जैसे रामनवमी, जन्माष्टमी, नरसिंहचतुर्दशी और वामन द्वादशी इत्यादि अथवा तीर्थ और व्रत का दिन होय ऐसी धूमधाम के साथ उत्साह और शोभा की सजावट इत्यादि किया करे कि जिस प्रकार अपने लड़के के विवाह में अथवा पुत्र के जन्म होने के दिन किया करते हैं, कहाँ तक वर्णन किया जाय कि यह बात अपने हृदय की प्रीति से सम्बन्ध रखती है और भगवत् कृपा भाग्य के उदय से होती है। यह उत्सव और देश में स्वप्नप्राय व आश्चर्य है दक्षिण में अथवा मथुरा, वृन्दावन व अयोध्याजी आदि में है। एक कोई गोसाईं वृन्दावनी ने एक कोई कामवाले के स्थान पर देश पंजाब में वसन्तपञ्चमी के दिन फूलडोल बनाया। वेश्या जब कारदार के घर पर उस त्यौहार के इनाम के लिये आईं तो उसने गोसाईंजी के संकोचवश राग न सुना और बिदा कर दिया। गोसाईंजी ने कहा कि भगवत् के सामने राग क्यों नहीं होता ? कारदार ने पूछा कि क्या भगवत् के सामने भी वेश्या का नाचराग होता है ? गोसाईंजी ने कहा कि जो भगवत् नाच और राग के प्रेमी न होते तो संसार में यह फैलने क्यों पावता ? जो कुछ सुख आनन्द का साज व समाज गुप्त व प्रकट की आँखों को जहाँतक देखने में आता है सब भगवत् के हेतु है कि मूल सब कार्यों का भगवत् से है। सोलह उपचार जो पूजन के विख्यात हैं सो भगवन्मूर्ति

और मानसीपूजन के निमित्त बराबर हैं भेद इतना है कि मूर्तिपूजन के निमित्त तो सामग्री प्रकट करनी पड़ती है और मानसीपूजन के निमित्त मन में सब सोलह प्रकार में पहले आवाहन सो आवाहन उस देवता का करना पड़ता है कि जिसकी कभी कोई दिन पूजा करनी हो और भगवत्पूजन का आवाहन इतना ही मानते हैं कि प्रभात अपने स्वामी को जगाना और दण्डवत् करना और श्लोक व पद जगाने का पढ़ना, गान करना, दूसरा आसन सिंहासन पर बिछावना सुन्दर बिछावना और मन्दिर की झाड़ बहारी करनी, तीसरा पाद्य भगवत् का चरण अँगोछे से पोंछना, अर्घ हाथ मुँह धोलना, पांचवां आचमन दँतवन कुल्ली करानी, छठवां स्नान कराना अँगोछे से शरीर पोंछना धोती कराना, सातवां वस्त्र अलंकार से भूषित कराना, आठवां यज्ञोपवीत स्वर्ण का अथवा पाट का या सूत्र का पीला रंगकर पहिनाना, नवां गन्ध अर्थात् सुगन्ध जैसे चन्दन और केशर, कस्तूरी व इत्र इत्यादि लगाना, दशवां पुष्प अर्थात् फूल भगवत् के मुकुट और झूमक आदि में गूंथना और माला फूलों की बनानी, ग्यारहवां धूप अगुरु आदि की धूम की देना, बारहवां दीप गोघृत कर्पूरादि से प्रकाशित करना, तेरहवां नैवेद्य अर्थात् सबप्रकार के पवित्र मधुर भोजन कराना व आचमन कराना, जल पिलाना, कुल्ला कराना, हाथ धुलाना, अँगौछा से हाथ मुँह पोंछना, बीड़ी बनाकर देनी, चौदहवां दक्षिणा अर्थात् भेंट आगे धरना, पन्द्रहवां नीराजन अर्थात् आरती करनी, प्रदक्षिणा करनी अर्थात् अपनपौ को वारि जाना और पुष्पाञ्जलि देनी अर्थात् फूल ऊपर बखेरना, सोलहवां विसर्जन और यहाँ अभिप्राय विसर्जन से यह है कि पलंग, तोशक, बिछौना, तकिया, चादर व दुलाई आदि सजाना, इत्र, पान व कुछ भोजन के पदार्थ व पीने के पलँग के समीप रखदेना और शयन के समय भगवत् का चरण पलोटना। जाने रहो कि इस सोलह प्रकार का आराधन जैसे जगन्नाथरायजी, बदरीनारायणजी, अयोध्या, रंगनाथ व वृन्दावन में नित्य सात बेर होता है और कोई जगह पांचबेर और बहुत जगह तीनबेर अर्थात् एक प्रभातकाल मङ्गल आरती, द्वितीय मध्याह्नकाल राजभोग, तृतीय सायंकाल नियत आरती, सो पूजन और दर्शन करनेवाले को सातबेर आराधन अति प्रयोजन है नहीं तो तीन बेर से कम न हो और जाने रहो कि तन्त्रशास्त्र व पुराणों के बचन के अनुसार जो मूर्ति स्वयंव्यक्त जैसे बदरीनारायण रङ्गनाथस्वामी व गोविन्ददेव इत्यादि शालग्राममूर्ति पुष्कर व नीमखार आदि तीर्थ हैं वे बारह २ कोस तक शुद्ध व पवित्र करते हैं और जो मूर्ति कि देवताओं ने स्थापित किया वे चार चार कोस तक और जिन्हें ऋषीश्वर और सिद्ध लोगों ने विराजमान किया वे दो २ कोस तक और जो मूर्ति दूसरे लोगों से शास्त्रविहित मन्त्रों के अनुसार स्थिर हुई वह एक २ कोस तक और जो मूर्ति केवल घरमें विराजमान करलेते हैं वह उसी घर को पवित्र और शुद्ध

निहाल कर दिया, पीछे प्रसाद जिमाकर बिदा कर दिया। दुष्टों को लज्जा हुई और विश्वास हुआ राजा ने जो वचन निहाल करने का कहा तो अभिप्राय यह है कि मेरे बड़े भाग्य हैं जो मेरे राज्य में गदहे भी मालातिलक धारण करते हैं। जो कोई मालातिलक धारण नहीं करता निस्संदेह बेदुम का गदहा है बरु गदहे से भी बदतर है।

कथा हंसप्रसंग की ॥

एक राजा को कुष्ठ था, औषध बहुतेरी हुई रोग न छूटा। किसी वैद्य के कहने के अनुसार राजा ने व्याधों को हंस पकड़ने को मानसरोवर में जहां रहते हैं भेजा। जब हंस इन व्याधों के हाथ न आवें तब सब साधु का रूप बनाकर गये। हंस व्याधों का कपट जान गये पर वेष को न मानना भगवद्धर्म से बुरा जानकर जानिके पकड़ गये, व्याध उनको बन्धनमें करके राजा के पास लाये। तब तक भक्तवत्सल महाराज वैद्य बनकर आये, नगर के बाजार में अपनी बैदाई की दूकान अच्छी लगाई, फिर राजा के पास पहुँचे। राजा ने अपने दुःख का वृत्तान्त और हंस पकड़वा मँगाने का सब वर्णन किया। वैद्य महाराज ने उनको आश्वासनकर कहाकि तुम्हारा बहुत शीघ्र दुःख दूर होजायगा, इन पखेरुओं को बन्धन से छोड़ों, बन्दी में डाल रखना कुछ प्रयोजन नहीं, कुछ औषध को शरीर पर लगवा दिया। तुरन्त शरीर निर्मल होगया राजा ने तुरन्त आनन्द होकर हंसों को छोड़ दिया। राजा ने वैद्य के आगे हाथ जोड़कर विनय किया कि यह राज्य व सम्पत्ति सब आपका है, वैद्य ने कहा सच करके सब हमारा है अब तुम भगवद्भक्ति और साधुसेवा अङ्गीकार करके मनुष्य शरीर जो कि बड़े क्लेश से मिला है उसको सुफल करो। फिर तो राजा ऐसा भक्त हुआ कि सब राज्य में भक्ति की प्रवृत्ति हुई यह हंसप्रसंग समझने योग्य है कि जानवरों को तो ऐसी भक्ति हो और मनुष्य जो कि ज्ञान करके युक्त है सो विमुख होवे तो वह मनुष्य जानवर है कि नहीं और वह नरकगामी होगा कि नहीं।

निष्ठा सातवीं।

गुरु की महिमावर्णन जिसमें ग्यारह भक्तों की कथा ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की गोपद रेखा को दण्डवत करके पृथु अवतार को दण्डवत् करता हूँ कि अयोध्याजी में प्रकट होकर सब धर्म की मर्याद फेर से नवीन बांधी और धरती को बराबर करके सब औषधी निकालीं। शास्त्र का वचन है कि गुरु तीन हैं प्रथम गुरु पिता, दूसरा संस्कारकर्त्ता कि जिसने यज्ञोपवीत आदि दिया हो, तीसरा भगवत्मन्त्र और भगवद्धर्म का उपदेश करनेवाला और एकवचन से स्त्री का गुरु उसका पति है, सो यद्यपि मर्याद और महिमा में बराबर है पर इस निष्ठा में उस गुरु का वर्णन होता है कि जो गुरु भगवत् के मिलने के हेतु किया जावे,

सो जाने रहो वेद व सब शास्त्र इस बात पर युक्त हैं कि गुरु और भगवत् में कुछ भिन्नता नहीं। भागवत् के एकादश में भगवत् का वचन है कि गुरु को मेरा रूप जान, भक्तमाल के कर्ता का वचन पहले ही लिखा गया कि भक्त और भक्ति और गुरु और भगवत् कहनेमात्र को चार हैं पर सत्य करके एक स्वरूप हैं, गुरु कैसा ही कामी क्रोधी लोभी मोही बुद्धिहीन कुरूप होवे उसको भगवद्रूप जानना चाहिये। किसी पुराण में वर्णन है कि जो गुरु कामी है तो श्रीकृष्णस्वरूप है जो क्रोधी है तो नृसिंहरूप, जो लोभी है तो वामनस्वरूप और जो धर्मात्मा है तो रामरूप। भागवत में लिखा है कि जो कोई मनुष्य भगवत् के ज्ञान देनेवाले गुरु को अन्य मनुष्य के सदृश जानता है उसकी बुद्धि हाथी के सदृश है कि अन्हायके फिर धूल मस्तक पर डालता है। आजतक न किसी को देखा न सुना कि बिना गुरु ईश्वर को प्राप्त हुआ हो और विचार करने की ठौर है कि प्रकट विद्या सब बिना गुरु के प्राप्त नहीं होती, तो भगवत् बिना गुरु कैसे मिलेगा ? महाभारत में लिखा है कि जब तक गुरु नहीं करते तब तक कुछ प्राप्त नहीं होता। इसहेतु गुरु करना निश्चय प्रयोजन है और आज्ञा है कि वेद, पुराण, शास्त्र, जप, तप आदि बिना गुरु निष्फल हैं और वेद की आज्ञा है कि बिना गुरु उपदेश के जो पूजा इत्यादि करते हैं सब व्यर्थ है, तो उचित है कि जो भगवत् और भक्त की प्राप्ति की चाहना हो तो गुरु के शरण हो। कोई जातों में परम्परा है कि संस्कार होने पीछे गुरु नहीं करते और कोई जाति में यह रीति है कि संस्कार भये पीछे भगवत्प्राप्ति के अर्थ गुरु अलग करते हैं, सो ज्ञात हो जाने प्रयोजन व नहीं प्रयोजन दूसरे गुरु करने का व लाभहानि के निमित्त एक दृष्टान्त स्मरण होआया है कि अँधरी कोठरी में एक सुई सूक्ष्म है उसको एक तो इस भांति जानता है कि निश्चय सुई इस कोठरी में है और दूसरे यह कि वह सुई ठीक २ जिस जगह दीवार में गड़ी हुई है, ज्ञात है दोनों के चेले उस सुई के ढूँढ़ने को गये पहले का चेला तो ढूँढ़ता फिरने लगा मिलगई तो मिलगई नहीं तो हारकर चला आया, जो ढूँढ़ता रह गया तो जाने मिले या न मिले और मिले तो जाने कबतक और दूसरे का चेला अपने गुरु का पता बतलाये हुये के अनुसार सीधा चला आया और बिना परिश्रम वह सुई मिल गई और यह नहीं हो सकता कि न मिले। अभिप्राय इस लिखने से यह है कि संस्कार होजाने पीछे जब कुछ समझ हो तो भगवत् के जाननेवाले को गुरु निश्चय करके करे। बिनागुरु कुछ नहीं हो सकता और जो उस गुरु से भी कुछ सन्देह रहजाय अपने लाभ व इच्छा की पूर्णता को प्राप्त न हो तो दूसरा गुरु करते हैं, कुछ हानि नहीं शास्त्र की आज्ञा है, जैसे देखो दत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये। यद्यपि धर्म गुरु और चेले के शास्त्रों में बहुत लिखे हैं पर गुरु के चार धर्म आवश्यक निश्चय हैं। एक तो शास्त्र को जानने वाला हो, दूसरे भगवद्भक्त, तीसरे समदर्शी, चौथे वेद की आज्ञा के अनुकूल बर्तने वाला। इसके ऊपर

एक धर्म सब जगह लिखा है कि गुरु अज्ञान के दूर करने के निमित्त है, तो जिस प्रकार हो सके चेले को भगवत्सम्मुख कर देवे और इस आज्ञा को आप गुरुशब्द का अर्थ निश्चय करता है। गुरु जो अज्ञान व अन्धकार को दूर करे वह गुरु है, इसी प्रकार चेले के निमित्त चार धर्म दृढ़ हैं। प्रथम सेवा गुरु की तन मन से करे, दूसरे सेवा के समय सुख स्वाद का त्याग, तीसरे गर्व का त्याग, चौथे गुरु में दृढ़ विश्वास सो वेद की श्रुति कहती हैं कि जिसकी भक्ति भगवत् और गुरु में बराबर है तो उस महात्मा को सब मनोरथ आपसे आप प्राप्त होजाते हैं, सो वह विश्वास ऐसा हो जैसे भगवद्भक्तों को भगवत् में होता है और सेवा ऐसी हो कि जिस प्रकार अज्ञानी अपने शरीर की करते हैं। महाभारत के आदिपर्व में लिखा है कि धौम्य ऋषीश्वर के चार चेले थे चारों दृढ़ विश्वास व गुरु की सेवा करके केवल गुरु के आशीर्वाद से सब विद्या के ज्ञाता और दोनों लोक के फल को प्राप्त होगये, जो यह प्रतिवाद हो कि बिना परिश्रम केवल विश्वास से कैसे सब विद्या इत्यादि लाभ हुईं तो जान रक्खो कि गुरु में जो विश्वास किया तो भगवद्रूप जानकर किया सो भगवत् ने गुरुद्वारे से उनके मनोरथ सिद्ध करदिये व सिवाये इसके कई जगह वर्णन होता है कि अमुक ऋषि ऐसे प्रतापवान् थे कि उनके स्थान में बकरी व व्याघ्र एक जगह पानी पीते थे, सो व्याघ्र का ऐसा स्वभाव हो जाना यह प्रभाव उस स्थान का है जो व्याघ्र को व्याप गया। इसी प्रकार गुरु का भी अपने प्रताप के प्रभाव करके एक क्षण में वाञ्छित पद को पहुँचा देता है। बहुत ऐसा हुआ और कुछ अयुक्त नहीं कि निर्मल जल कपड़े के मैल को दूरकर विमल कर देता है। भले का आशीर्वाद व शाप शीघ्र व्याप जाता है, इस सिद्धान्त से यह सिद्ध हुआ कि गुरु महात्मा योग्य चाहियें और ऐसे गुरु इस समय में नहीं मिलते पर ऐसे हैं कि उनको केवल द्रव्य आकर्षण में प्रयोजन है। चेला चाहे नरक में जाय या स्वर्ग में छमाही अथवा साल में पधारे और उस पर दुकानदारी फैलाई जो हाथ आगया सो ले गये और जो किसी चेलेने कोई बात अपने संदेहनिवृत्ति के हेतु पूछी तो उसके उत्तर का तो कुछ ठिकाना नहीं और उसको बेविश्वास व नास्तिक व कथनी कथनेवाला ठहराया व सबसे उसकी निन्दा कहते फिरने लगे और चेलों का यह वृत्तान्त है कि गुरुजी की शिक्षा ग्रहण करना और मन्त्रको जपना तो कुछ बातही नहीं जो वर्ष दो वर्षपर गुरुजी रामभक्त करते पधारे तो मानो यमदूत दिखाई पड़े इस हेतु की पांच चार दिन रहेंगे भोजन अच्छे लेंगे और बिदाई भी देनी पड़ेगी। भला जब इस समय के गुरु चेलों की यह गति हो तो कहां गुरु व कहां चेला और यह भी जानो कि गुरु बहुत मिलते हैं पर चेलों की आंखें बन्द हैं कि उनको देखें जो थोड़ासा भी परलोक का भय करके भगवत् और गुरुको ढूँढ़ें तो ऐसा नहीं कि न मिलें। लोकोक्ति है कि "जिन ढूँढ़ा तिन पाइयां" और जब कि घर से पांव बाहर नहीं निकलता और

परलोक का भय नहीं और न भगवत् की चाह है तो कहां से गुरु मिले कि किसी को छप्पर फाड़कर धन नहीं मिलता अब इस लिखने से कोई ऐसा न समझ लेवे कि जब गुरु योग्य मिलेंगे तबही गुरु करेंगे। यह समय का वृत्तान्त है निज अभिप्राय इस लिखने का यह है कि गुरु निश्चय करना चाहिये जैसा मिले केवल इतना देख लेना बहुत है कि उपासना का जाननेवाला हो और उसको मन्त्र गुरुदीक्षा से मिला हो यह नहीं कि पोथी देखकर मन्त्र दे दिया, चेला बना लिया और गुरु के उपदेशवचन पर दृढ़ विश्वास हो बस, वह गुरु है, तिसको हाथोंहाथ संसारसमुद्र से उतार देगा। धर्मकर्म उस गुरु के बुरे हों या भले इस पुरुष को सब धर्मरूप हैं काहे से इसका विश्वास दृढ़ है व गुरुरूप भगवत् आप हैं, वही राह दिखाकर दोनों लोक के अर्थ को सिद्ध कर देगा, जो विश्वास न होगा तो कैसाही महात्मा गुरु हो मिले कुछ लाभ न होगा और विचार लेना चाहिये कि जो मनुष्य भगवत् से विमुख हो उसको तो गुरु के अवलम्ब से ईश्वर मिल सकता है और जो गुरु न किया अथवा उसके वचन पर विश्वास न किया तो फिर कहां ठिकाना है? बहुधा ऐसा हुआ है कि चेलों के विश्वास से गुरु भी तर गये हैं कि गुरुभक्ति कोई कोई की इस निष्ठा में लिखी जावेगी उनके सिवाय एक और वार्त्ता है, किसी खत्री के लड़के ने अपने गुरु से सुना कि श्रीनन्दनन्दन महाराज व्रज में नित्य रहते हैं जो मन लगाकर ढूंढ़े तो मिल जाते हैं। यह लड़का अत्यन्त दर्शन का आकांक्षी होकर व्रज में गया और ढूँढ़ा, कुछ पता न लगा, लोगों से पूछा किसी ने कहा गोलोक में हैं और किसी ने वैकुण्ठ को बतलाया और किसी ने कहा कि जो व्रज में हैं तो देखने में नहीं आते और किसी ने कहा परमधाम को गये। इस लड़के को किसी के वचन पर विश्वास न हुआ और कहने लगा कि मेरे गुरु का वचन कभी झूंठा नहीं पर मेरे ढूंढ़ने का आलस है, तब खाना सोना सब छोड़कर बेचैन होकर ढूंढ़ने लगा जब कुछ दिन बीता न खाया, न सोया, न बैठा जहां तहां फिरता ही रहा तो करुणाकर, दीनवत्सल प्रकट हुये और कहा कि जिसको तू ढूंढ़ता फिरता है वह मैं हूँ यह लड़का रूपमाधुरी और छवि अनूप देखकर चरणों में गिर पड़ा और विनय किया कि कुछ संदेह नहीं आप वही हैं कि जिनको मैं ढूंढ़ता था पर मैंने सुना है कि आप चोर और छलिया भी हैं, जब तक मेरे गुरु तुमको पहिचान कर निश्चय न कर देंगे तब तक हमको विश्वास नहीं। भक्तवत्सल महाराज उसके प्रेम व विश्वास के वश होकर कुछ न कह सके साथ हो लिये और उस लड़के ने छल व कपट के डर से हाथ पकड़ लिया। बस तुरन्त जहां उनके गुरु रहे आन पहुँचे, आधी रात थी गुरुजी अटा पै शयन में थे, इस लड़के ने पुकारा कि महाराज! व्रजसुन्दर मनमोहन महाराज को लाया हूँ आप पहिचान कर लें। दो चार बेर के पुकारने में गुरुजी को सुन पड़ा उसके वचन को मिथ्या समझा पर उजरा मुख झलक व आभूषण शोभा-

धाम की जो विलक्षण चांदनी सी छिटक रही थी झरोखों की राह से देखा तो घबराकर उठे और दरीबे से झांका तो क्या देखते हैं कि सच है कि नटनागर व्रजचन्द्र छविसमुद्र है कि मुखारविन्द के झलक की चांदनी चारों ओर खिल रही है और घूँघरवाली अलकें छूटी हुई अरसीली आंखों में काजल की रेख मोरमुकुट जड़ाऊ जवाहिरात का शिर पर है, कानों में कुण्डल कि उसके मोतियों की झलक कपोलों पर और कपोलों की झलक मोतियों पर पड़ती है। नाक में छोटासा बुलाक कि उसमें सब्जा पड़ाहुआ है कण्ठा, पचरङ्गी माला, जवाहिरात और मोतियों और सुगन्धवारे फूलों के गले में हार और सुकुमार शरीर में बागा सुनहरी तार की उस पर मुक्केश में मोती गूँथकर गोपियों ने झालर की भांति लगा दिये हैं, उसके ऊपर हैकल जड़ाऊ झलकती है, धानीरंग दुपट्टा जरी का उसको कटि में कसे हुये हाथों में कंगन पहुँची और बाजूबन्द जड़ाऊ, अंगुलियों में अंगूठी घुटन्ना गुलेनारी गुलबदन का कि गोटे और पट्टे की गुलकारी उस पर हो रही है। शोभायमान चरणों में महाउर लगा हुआ उस पर घुंघुरू और कड़े हैं और किसी गोपिका के साथ जो कुछ छेड़छाड़ करी थी और उसने केसर के छींटे दे दिये थे वह मुखारविन्द पर झलक रहे हैं और उस गोपिका के छेड़ने की और उससे उत्तर पाने की हँसी अबतक नहीं गई, फूल जहां तहां गुथे हुये हैं और मुरली फेंट में। बस, यह देखकर गुरुजी विवश होकर पुकारे कि अरे ! तू किस ढिठाई से हाथ पकड़ रहा है यह नन्दनन्दन महाराज पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं और मैं भी आता हूँ यह कहकर गुरुजी तो आते ही रहे कि आप नटनागर महाराज उस लड़के सहित अन्तर्धान हो गये गुरुजी जो आये तो कुछ नहीं देखा कभी अपने चेले के विश्वास पर दृष्टि करके अपने ऊपर धिक्कार और कभी दर्शन पाने से अपने भाग्य को धन्य कहकर त्यागी हो गये व अपने चेले के निश्चय के प्रभाव करके भगवत् को प्राप्त हुये। सो गुरुमें विश्वास करना ही उद्धार का कारण है, रे मन, मूरख ! कभी तो उस स्वरूप की ओर तू सम्मुख हो जो ऊपर लिख आया और विचारकर कि भगवच्चरणकमलों के बिना किसी को भी कुछ प्राप्त हुआ है ? ब्रह्मादिक देवता तो जिसके चरणकमलों की रज को अपने धन्यभाग्य समझते हैं और तू ऐसा असावधान कि कभी उस ओर न लगे तो तेरी अभाग्य दशा यह है, दूसरी बात नहीं सो तू अब भी समझ और कृपा करके उस रूप अनूप का चिन्तन किया कर कि सबसे पहले तेरी नाव उस किनारे पर पहुँचे।

कथा पादपद्माचार्य की ॥

पादपद्माचार्यजी परमभगवद्भक्त गुरुनिष्ठ गङ्गाजी के तटपर गुरुसेवा में रहा करते। एक समय गुरु तीर्थ को जाने लगे तब पादपद्माचार्य को अपने वियोग से विकल देखकर आज्ञा की कि गंगाजी को हमारा ही रूप ध्यान करना। पद्माचार्यजी

गंगाजी का पूजन करते व चरण गंगा में नहीं रखते कूपजल से स्नानादिक्रिया करते। दूसरे साधु वहां थे वे लोग इस बात में प्रसन्न न थे। जब गुरु आये तब सबने निन्दा करी, गुरु पद्माचार्य के हृदय की जानगये कि मर्याद के भय से चरण गंगा में नहीं देते पर सबका मोह दूर करने को एक दिन गुरु ने गंगा में स्नान करते में पद्माचार्य से अँगौछा मांगा। पद्माचार्य को इधर गुरुरूप गंगा में चरण देना ढिठाई उधर गुरुआज्ञा साधना इसी चिन्ता में सोचते ही थे कि कमलके फूल गंगा में प्रकट हो आये उसी पर चरण देते जाकर अँगौछा दिया व फिर तटपर लौट आये। गुरु ने यह विश्वास व प्रभाव देख छाती से लगाया व चरण भी पकड़ लिये, पादपद्माचार्य नाम धरा।

कथा विष्णुपुरी की ॥

विष्णुपुरी ऐसे भगवद्भक्त हुये कि भागवतधर्म के आगे और सब धर्म असार समझते थे। श्रीमद्भागवत जो समुद्र है तिसमें से श्लोकरूपी अमूल्य रत्नों को निकाला और कलि के जीव इस धन के दरिद्र हैं तिनको निहाल करदिया यह विष्णुपुरी जो माध्वसंप्रदाय में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चेले हुये जगन्नाथपुरी में बात चले पर दूसरे साधुओं ने प्रतिवाद किया कि मुक्ति होनेके हेतु काशीपुरी में टिके हैं। श्रीकृष्ण महाप्रभुजी ने उत्तर दिया कि उनको न मुक्ति से प्रयोजन है न किसी देवतासे न काशी से, सिवाय श्रीकृष्णचरणकमलों के किसी ओर भूलकर भी उनके चित्तकी वृत्ति नहीं जाती। केवल सत्संग के अर्थ काशी में टिके हैं पर लोगों ने न माना तब महाप्रभु ने विष्णुपुरी से रत्न की माला के भेजने के हेतु चिट्ठी भेजी। विष्णु-पुरीजी ने हृदय की समझकर भागवतसमुद्र से पांच सौ श्लोकरूपी रत्न चुनकर और भक्तरत्नावली नाम रखकर अपने गुरु को भेजा। साधुओं ने जो देखा पढ़ा भक्तिरस में मग्न होगये विश्वास हुआ कि विष्णुपुरीजी परम अनन्य भक्त हैं, तैसेही गुरुनिष्ठा में हैं जाने रहो भक्तरत्नावली के तेरहें अध्याय में अलग २ क्रम से नवधा भक्ति व ज्ञानवैराग्य का वर्णन है।

कथा पृथ्वीराज की ॥

पृथ्वीराज कछवाहे आमेर के राजा ऐसे भक्त व गुरुनिष्ठ हुये कि घरबैठे द्वारकानाथ महाराज के दर्शन पाये और शङ्खचक्र का छाप शरीर पर प्रकट हुआ और कृष्णदासजी की कृपा से सब धर्म व उपासना के ज्ञाता होगये। भीष्मपितामह के सदृश निष्पाप व युधिष्ठिर के सदृश धर्मात्मा व पूजा करनेवाले प्रह्लाद के सदृश हुये। जैसे चेले कृष्णदासजी के हुये सो कृष्णदासजी की कथा में कहा है। पृथ्वीराज ने जब कृष्णदासजी के साथ द्वारका जानेकी इच्छा व सजाव सब किये तब राजमन्त्रियों ने कृष्णदासजी से विनय किया कि राजा के जाने से इस देश में भक्ति का प्रकाश बढ़ता जाता है सो घटती होने लगेगा। कृष्णदासजी ने अपने राज्य पर रहने की आज्ञा

दी। राजा ने विनय किया व उदास होकर बोले कि एक तो आपके चरण का संग, दूसरे द्वारकानाथ का दर्शन, गोमती का स्नान व भगवत्शस्त्रों का चिह्न प्राप्त होने का लाभ था सो अब मैं उन लाभों से विमुख होता हूँ। कृष्णदासजी ने आज्ञा की कि सोच करना कुछ प्रयोजन नहीं वह सब तुमको इसी जगह प्राप्त होजायगा यह कह-कर चलेगये। राजा साथ के वियोग से धारधार रोने लगा तीनदिन बीते थे अर्द्धरात्रि के समय राजा ने कृष्णदासजी का पुकारना सुना, दौड़कर गया देखा आप द्वारकानाथजी महाराज हैं। प्रेम में विवश हुये दण्डवत् परिक्रमा करी, फिर आज्ञा पाकर गोमती में स्नान किया। शरीर पर शङ्खचक्र के चिह्न अङ्कित हो गये, रानी भी राजा की आज्ञा से गोमती में स्नान करके कृतार्थ होगई। प्रभात को यह वृत्तान्त सारे संसार व देश देश में फैला नगर के लोग व जहां तहां के सन्त महन्त दर्शनों के लिये भेंट नाना प्रकार की आगे धरे गुरुभक्ति व भगवद्भाव का विश्वास दृढ़ हुआ। पीछे राजा ने मन्दिर बनवाया मूर्ति विराजमान करके दिनरात सेवापूजा में रहने लगा। एक अन्धा ब्राह्मण बैजनाथजी के द्वार पर सूझने के लिये पड़ा रहा, बहुत दिन बीते तब शिवजी ने दया करके कहा कि पृथ्वीराज का अँगौछा आँखों पर मल दे, खुल जायँगी। ब्राह्मण आया राजा ने नवीन अँगौछा अपने शरीर पर लगाकर दिया कि तुरन्त आँखें खुलगईं।

कथा तत्त्वा जीवा की॥

तत्त्वा जीवा दोनों भाई ब्राह्मण पद्मनाभदेश जो कमल के सदृश है तिसको प्रफुल्लित अर्थात् भक्त करने को सूर्य के सदृश हुये अथवा भगवद्भक्ति जो अमृत का समुद्र है तिसके दोनों तट हुये जिनके प्रभाव करके लाखों को भगवद्भक्ति प्राप्त हुई। रघुकुलवालों के सदृश भये, एक लकड़ी सूखी द्वारपर गाड़े थे व प्रण था कि जिसके चरणामृत से यह लकड़ी हरी हो जावे उसको गुरु करेंगे, सो कबीरजी के चरणामृत से हरी होगई, कबीरजी के चेला हुये। कबीरजी चलते समय कह गये जब प्रयोजन पड़े तब हमको स्मरण करना तिसके पीछे ब्राह्मण व उनके सगोत्रियों ने जुलाहे के चेला होने से उनको जाति से निकाल दिया और उनकी लड़की का ब्याह लेना अङ्गीकार न किया। चिन्ता में होकर संदेशा गुरु के पास कहला भेजा। कबीरजी ने उत्तर भेज दिया कि ये लोग भगवत् से विमुख हैं तुम्हारे सम्बन्ध योग्य नहीं। तुम लोग दोनों भाई आपस में अपने लड़कों का सम्बन्ध करलेव उस आज्ञा के अनुसार इच्छा को किया। सब घबराये और सबने इकट्ठे होकर दोनों भाइयों से कहा कि ऐसी रीति उचित नहीं उत्तर दिया कि हमको सिवाय अपने गुरु की आज्ञा के दूसरा कुछ करना अङ्गीकार नहीं है। वे सब लोग इस विश्वास के वश होगये फिर इस बात के बन्द करने को विनय किया तब दोनों भाइयों ने कबीरजी से जाकर कहा। तब कबीरजी ने आज्ञा की कि जो वे लोग भक्ति अङ्गीकार करें तो

करो चिन्ता नहीं। सो उन लोगों ने भगवद्भक्ति स्वीकार करी तब नातेदारी होने लगी, जब सबने भक्तों का समाज व प्रभाव भक्ति का देखा तब सब भगवत्शरण होकर कृतार्थ हो गये।

कथा खोजी की ॥

खोजी परमभगवद्भक्त और गुरुनिष्ठ रहे उनके गुरु ने एक घण्टा स्थान में लटका दिया था और चेलों को समझा दिया रहा कि हम जब परमधामको जावेंगे तब यह घण्टा बजेगा। जब गुरुने देह त्यागा तो घण्टा न बजा चेलोंको चिन्ता हुई खोजी वहां उस समय न थे जब आये तो सुना तब जिस जगह गुरु ने देह त्याग किया लेटकर देखा तो एक आंब पक्का लगा है उसको तोड़कर टुकड़ा किया तो देखा कि एक कृमि उसमें है और उसी क्षण वह कीड़ा मरगया और घण्टा बजा सबको निश्चय हुआ सो इसमें गुरु ने चेलों को एक उपदेश करदिया कि अन्तकाल में जहां मन लगेगा सोई होगा गीताजी में भगवद्वचन है तिसको निश्चय कराया।

कथा गुरुनिष्ठ की ॥

एक गुरुनिष्ठ भगवद्भक्त ऐसे हुये कि गुरु के सिवाय दूसरे साधुसन्त की सेवा नहीं जानता। गुरु की इच्छा यह रही कि साधुओं की भी सेवा करे तो अच्छी बात है, पर बिना परीक्षा इस बात के कि आज्ञा करें या न करें कह नहीं सके। यह परीक्षा विचारी कि जब वह तीर्थ को जाने लगा तब उससे कहा कि जब तुम आवोगे तब एक बात कहकर शिक्षा करेंगे। तीर्थ करके जिस दिन वह पहुँचने को था तब गुरु ने प्राण छोड़ दिये। लोग जलानेको ले गये तबतक गुरुनिष्ठ पहुँचा, सुनकर रोता दौड़ा लोथ को रोका कि हमारे गुरु का वचन है जब तीर्थ कर आवेगा तब कुछ शिक्षा कहूँगा सो वचन मेरे गुरु का मिथ्या नहीं। नितान्त किसी प्रकार गुरु के शरीर को फेर लाकर सिंहासनपर धरायके विनय किया कि अपने वचन को पालन करिये, मेरी आशा लगी है। गुरुजी उसके विश्वास पर अतिप्रसन्न होकर जीकर उठबैठे। साधुसेवा के निमित्त शिक्षा करी गुरुनिष्ठ ने विनय किया कि आप तो परमधाम को जाते हैं मेरी साधुसेवा कौन देखेगा? गुरु इस वचन और चतुराई से प्रसन्न होकर एक वर्ष और जीते रहे।

कथा घाटम की ॥

घाटम जाति के मीना रहनेवाले गांव घोड़ी राज जयपुर के गुरुभक्त व वचन के निश्चय से उत्तमपद को पहुँचे और कृतार्थ होगये, ठगी का रोजगार करते थे कुछ मन में विवेक आया किसी हरिभक्त के पास गये, उसने शिक्षा किया चोरी ठगी छोड़ देव। घाटम ने कहा मेरी जीविका वही है। हरिभक्त ने कहा उसके बदले चार बात अङ्गीकार करो १ एक सत्यबोलना २ दूसरी साधुसेवा ३ तीसरी भगवत्अर्पण किये पीछे कुछ चीज खाना ४ चौथी भगवत् आरती में जा मिलना। सुनते ही चारों बातों को

करती है। भगवत् ने कृपा करके सब सामग्री को इस जीव के उद्धार के हेतु बनाय दिया कि किसी प्रकार मन चरणारविन्द में लगे पर कोई ऐसा कर्म कठोर और न करे, आगे आये रहे हैं कि ऐसे सुगम मार्ग पर भी मन नहीं लगता, कोई नगर और ग्राम नहीं कि वहाँ भगवन्मन्दिर और ठाकुरद्वारा न हो परन्तु पुजारी के सिवाय क्या बात है कि कोई दर्शनों के निमित्त जावे। विशेष करके धनवान् और उनमें भी नौकरी करनेवाले घूमने और देखने शोभा चकले के हेतु जहाँ तक कोई ले जावे हजारमन और चरणों से चले जायँ और जो कोई ठाकुरद्वारे के चलने को कहे तो मानो दम निकल गया है और घूमते फिरते जो राह में कोई मन्दिर आजाय तो यह कहें कि अजी संध्या हो गई, सावकाश नहीं फिर किसी समय दर्शन करेंगे और जो घुणाक्षर न्याय कभी जाने का संयोग हो भी गया तो सारे संसार के झगड़े और बकवाद डिगरी डिसमिस आदि की बातें वहाँ स्मरण हो आईं। जब तक बैठे रहें यही बात रही कौन बात है कि एकबेर भगवन्नाम मुख से निकले, वरु जो दूसरा कोई भजन करता होय तो उसको भी अपनी ओर सावधानयुक्त कर लें। यह वृत्तान्त कुछ सुना ही नहीं है आँखों की देखी है, कहाँ तक लिखूँ कि ग्रन्थ के विस्तारभय से और अप्रसन्न होने उन लोगों के कि जो मेरे लिखे को अपने ऊपर समझ लेवें। व्यापवान् है उनमें पहले गणना इस मतिमन्द की है सो क्या वर्णन करूँ कि कर्म तो ऐसे सुन्दर और कामना वह कि निश्चय परमधाम को जावेंगे, क्यों न सद्गति होगी? अरे मन, पापी! अब भी लजावो, ध्यान करके देख कि मनुष्य शरीर बार २ नहीं मिलता, न जाने कौन पुण्य से यह शरीर मिला है, इस देह को पायके श्रीनन्दनन्दन स्वामी के चरणकमलों में न लगा तो तुझसे अधिक और कौन भाग्यहीन है? बहुत रुपया उत्पन्न करना, झूठ सच बोलकर लोगों को वश कर लेना, तुलसीदासजी ने कहा है कि यह ढंग वेश्याओं को भी अच्छे प्रकार आता है और जो यह शरीर संसार के विषयभोग ही के निमित्त समझ रक्खा है तो शूकर और कूकर व गर्दभ आदि को भी सब सुख विषयभोग के प्राप्त हैं। मनुष्यशरीर और उन शरीरों में इतना भेद है कि इस शरीर के प्रभाव से भगवत् की प्राप्ति होती है जो भगवच्चरणों में मन न लगा तो शूकर और कूकर आदि से भी अधिक अधर्मी व पापी है क्योंकि उन शरीरों में आगे के निमित्त पाप नहीं लगता, केवल अगिले पापों को भोगते हैं और मनुष्यों को तो नहीं करने भगवद्भजन के हजारों पाप मुण्डपर चढ़ते हैं तो इससे अब तुझको उस रूप अनूप का चिन्तन करना उचित है।

सवैया॥

मोरपखा शिरऊपर राजत केशरखौर दिये रचि भालहि।
अञ्जनसे दोउ रञ्जित कीन्हे जु खञ्जन कञ्ज से नैन विशालहि॥

गोल कपोलन पै कलकुण्डल रूप अनूप प्रताप रसालहि।
रे मनमन्द ! अनन्द को कन्द तू क्यों न भजै नँदनंदगोपालहि ॥

कथा राजा चन्द्रहास की ॥

राजा चन्द्रहास बालपने से ऐसे भगवद्भक्त हुये कि महाभागवतों में गिने गये और अबतक उनका यश चाँदनी की भाँति शास्त्रों में लिखा है। च्यवन अश्वमेध में लिखा है कि मेधावी नाम राजा केरलदेश के घर जब चन्द्रहास का जन्म हुआ तो एक पाँव में छः अँगुली थीं कि सामुद्रिक में अपलक्षण लिखे हैं। जन्म में थोड़े ही दिन बीते पर कोई शत्रु चढ़ आया और मेधावी उस लड़ाई में मारा गया। चन्द्रहास की माता सती हो गई और धाय उनको लेकर कुन्तलपुर में चली आई। कुन्तलपुर के राजा के वजीर का नाम धृष्टबुद्धि था उसके घर रहने लगे, फिर वहाँ धाय भी मरगई और चन्द्रहासजी अनाथ पाँच वर्ष के नगर में फिरने लगे, जो कोई कुछ देता उसी से उदरपालन कर लेते एक दिन नारदजी आये एक शालग्रामजी की प्रतिमा देकर आज्ञा की जो कुछ भोजन आदि करो सो इस प्रतिमा को दिखला लेना चन्द्रहासजी उस मूर्ति को मुख में रखते और नारदजी की आज्ञा के अनुकूल बर्तते रहे। थोड़े दिन में भगवत् की प्रीति होगई, एक दिन उस वजीर के घर में ब्रह्मभोज में ब्राह्मण आये थे। उसने ब्राह्मणों से पूछा कि मेरी लड़की को वर कौन और कैसा मिलेगा ? उन्होंने चन्द्रहासजी को बतलाया कि यह लड़का इसका पति होगा। वजीर को बड़ी ग्लानि आई कि हाय मेरी लड़की दासीपुत्र की भार्या होगी। वध करनेवालों को बुलाकर कहा कि इस लड़के को जङ्गल में लेजाकर मार डालो। वे सब जङ्गल में ले गये और वजीर की आज्ञा सुनाकर कहा कि अब तुम्हारा रक्षक कौन है ? चन्द्रहासजी को तनक शोच व चिन्ता अपने वध की न हुई और कहा कि एक घड़ी मेरे वध में धीर धरो। पीछे शालग्रामजी का पूजन किया और बधिकों को संज्ञा वध करनेकी करके भगवद्ध्यान की समाधि को लगाय लिया। भक्तरक्षक भगवत् महाराज ने उन बधिक निर्दयों के हृदय में ऐसी दया डाल दी कि एक अँगुली अधिक जो रही वजीर को दिखलाने को काट लेगये और चन्द्रहासजी को उसी जङ्गल में छोड़ गये। चन्द्रहासजी तीन दिन तक भगवद्ध्यान में मग्न और आनन्दित फिरते रहे, जिस समय धूप लगती तो पक्षी अपने परों से छाया करते और रात्रि के समय व्याघ्रादिक उनकी रक्षा के निमित्त चौकी देने को आते। संयोगवश कलिन्दनाम राजा चन्दनावती नगरी का शिकार खेलता उस वन में आया। चन्द्रहासजी को अपने घर लेगया, उसके कोई लड़का नहीं था, इन्हीं को अपना बेटा जानकर सब विद्या पढ़ाकर युक्त किया और पीछे राज्य-तिलक देकर सम्पूर्ण राज्यभार सौंप दिया और आप भगवद्भजन करने लगा। यह राजा कलिन्द कर देनेवाला राज्य कुन्तलपुर का था, जब समय पर कर न पहुँचा तो धृष्टबुद्धि वजीर सेना सजिके आया। राजा कलिन्द सुनकर मिलने के निमित्त गया,

बड़ी रीतिमर्यादा से नगर में लाया। चन्द्रहासजी से भेंट कराई और राज्य देनेका वृत्तान्त सब कहा। वह धृष्टबुद्धि चन्द्रहासजी को पहिचान कर बड़े शोच में होकर मारने के उपाय में हुआ और यह उपाय सूझा कि चन्द्रहासजी को कुन्तलपुर में भेजकर वहाँ मरवा डालना चाहिये। इस हेतु राजा कलिन्द को डरपाया कि तुझको उचित नहीं था बिना हमारे राजा की आज्ञा चन्द्रहास को राजतिलक कर देना। अब चन्द्रहास को अपने मदननामा पुत्र के नाम के पत्रसहित कुन्तलपुर भेजता हूँ कि वह राज्यतिलक अङ्गीकार करा देगा। सो चन्द्रहासजी पत्रीसमेत चले और कुन्तलपुर के निकट उसी वजीर के बाग में ठहरे, स्नान पूजा करि भगवत्प्रसाद भोजन करके पथश्रम से सोगये। संयोगवश उसी वजीर की लड़की विषयानामा बाग की शोभा देखने को आई। सखियों से अलग होकर जहां चन्द्रहासजी सोते थे तहाँ पहुँची, चन्द्रहासजी की शोभा देखतेही तुरन्त आसक्त होगई और भगवत् से प्रार्थना की कि यह पुरुष मेरा पति होय। फिर जो निगाह उसकी चन्द्रहासजी की कमर की ओर गई तो एक पत्री कमर में देखकर निकाल ली और पढ़ा, अर्थ उसका यह था कि हे मदन! चिट्ठी ले जाने वाले को तुरन्त विष दे देना, जो विलम्ब होगा तो हमारे क्रोध का हेतु होगा। वजीर की लड़की ने पढ़कर शोच किया कि हाय यह महबूब मनोहर बृथा बिन अपराध मारा जायगा और फिर यह विचार किया कि मेरा बाप बहुत दिनों से सुन्दर पुरुष के ढूंढ़ने में मेरे निमित्त था और चलती बेर बहुत शीघ्र विवाह करदेने का मुझसे वचन दे गया था, सो इस पुरुष को मेरे निमित्त भेजा है और जल्दी में लिखा है इस हेतु अक्षर (या) जो विष के पीछे लिखना था सो भूल गया, सो अक्षर बना देना चाहिये, सो अपनी आँखों के काजल की स्याही से बना-कर पत्री चन्द्रहासजी की कमर में रखकर चली आई। चन्द्रहासजी मदन के पास पहुँचे और पत्री दी, वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसी घड़ी चन्द्रहास का विवाह अपनी बहिन के साथ कर दिया। जब वजीर ने अपने बेटेके पत्र से यह वृत्तान्त सब जाना तो अत्यन्त खिन्नमन व क्रोधयुक्त हुआ और दुःख से दुःखी हो उसी क्षण चलके अपने घर आया। अपने लड़के को धिक्कार आदि कहने लगा। मदन उसके लड़के ने उसकी पत्री आगे धरदी और अपना कुछ अपराध नहीं जो लिखा सो किया। वजीर ने अपने मन में यह निश्चय किया कि लड़की विधवा रहे तो रहे पर चन्द्रहास का बध करना उचित है। इस हेतु वध करनेवालों को बुलाकर आज्ञा दी कि प्रभातसमय जो कोई दुर्गाभवन में आवे उसको मार डालना और चन्द्रहासजी से कहा कि हमारे कुल में विवाह के पीछे दुर्गापूजन उचित है, तुम प्रभात दुर्गापूजन कर आओ। दुर्बुद्धि वजीर ने तो यह उपाय रचा और भगवत् की यह इच्छा भई कि कुन्तलपुर का राज्य भी चन्द्रहासजी को मिल जावे। इस हेतु कुन्तलपुर के राजा के मन में ज्ञान दिया कि राज्य और शरीर दोनों नाशवान् है और भगवद्भजन से अधिक दूसरा

कोई काम नहीं आता, सो यह राज्य तो वजीर का दामाद चन्द्रहास जो कि लायक और योग्य है देना चाहिये और जो कुछ वयक्रम शेष है सो भगवद्भजन में लगाना उचित है। प्रभात को जिस प्रकार से चन्द्रहास दुर्गापूजन को चले तो राजा ने मदन जो वजीर का लड़का था उससे बुलाकर कहा कि हम राजतिलक चन्द्रहास को देते हैं, उसको शीघ्र लाओ। वह इस आनन्द से कि राज्य अपने घरमें आता है शरीर में न समाया और चन्द्रहासजी के पास आकर उनको तो राजा के पास भेज दिया और स्वयं दुर्गाभवन में पूजा करने को गया। राजा ने चन्द्रहासजी को तुरन्त राजतिलक कर दिया, मदननाम वजीर का बेटा जब दुर्गभवन में पहुँचा तो मारा गया और वजीर मदन का मारा जाना सुनकर शिरपर धूल डालता हुआ उसके शरीर के पास पहुँच कर पत्थर से शिर मार कर मर रहा। यह वृत्तान्त चन्द्रहासजी ने सुना और दुर्गा-भवन में आकर दया और करुणा से विह्वल होगये, पीछे उन सबके जीने के हेतु दुर्गाजी की अस्तुति की। जब कुछ उत्तर न पाया तो तरवार निकालकर अपने को घात करने को उद्यत हुये। दुर्गा महारानी प्रकट हुईं, हाथ पकड़ लिया और कहा कि धृष्टबुद्धि शठ दुष्ट सदा तुम्हारे मारने के उपाय में रहता था कि उस कर्म के फल से पुत्र सहित मारा गया, अब जिला देना उचित नहीं चन्द्रहासजी ने विनय किया कि सत्य है पर आपको यह भी तो सामर्थ्य है कि उनके मन को निर्मल करके भगवद्भक्त कर देवें कि फिर किसी के साथ दुष्टता न करें। दुर्गा महारानी प्रसन्न हुईं दोनों को जिला दिया, वजीर ने जो प्रताप भगवद्भक्ति और भक्तों का देखा तो विश्वासयुक्त हुआ और चन्द्रहासजी के चरणों में बड़ी प्रीति से गिरकर भगवच्छरण होगया चन्द्र-हासजी ने तीनसौ वर्ष राज्य किया, भगवद्भक्ति का प्रचार चलाया कि सब देश भक्त होगया। जब राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया और घोड़े को चन्द्रहासजी ने पकड़ लिया तो भगवत् श्रीकृष्ण महाराज ने समझा कि भक्त को कोई जीत न सकेगा तब अर्जुन से मेल कराके घोड़ा छुड़ा दिया। पीछे चन्द्रहासजी अपने बड़े पुत्र को राजतिलक देकर आप राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में आनिमिले। अब विचार करना चाहिये कि कैसी शिक्षा भक्तों के निमित्त है, पहले तो प्रतिमानिष्ठा का फल दूसरे यह कि भगवद्भक्त मृत्यु से भी नहीं डरते, तीसरे यह कि कोई कठिन आपत्ति के आने पर भी भगवद्भजन नहीं छोड़ते, चौथे यह कि कोई उनके साथ दुष्टता करता है उसको भी सुखही देते हैं। सिवाय इसके यह बात तो विख्यात है कि भगवत् अपनी प्रसन्नता से अधिक मानते हैं सो चन्द्रहासजी से आप यज्ञ के घोड़े को छुड़ाया। जाय के मेल कराया बल को कुछ न चलने दिया नहीं तो एक क्षण में करोड़ों ब्रह्माण्ड की सृष्टि और लय कर सकते हैं।

कथा नामदेव की ।।

नामदेवजी चेले ज्ञानदेवजी के विष्णुस्वामी संप्रदायवाले संसार में भक्ति के

प्रकाश करने को सूर्य के सदृश हुये। बालपन में अपने भक्तिभाव से भगवत् को वश करलिया। भगवत् अंश से उनका जन्म है उसका वृत्तान्त यह है कि पाण्डरपुर में वामदेव नामे जाति की छीपी भगवद्भक्त था उसकी लड़की बालविधवा होगई जब बारह वर्ष की हुई तो वामदेव ने भगवत्-सेवा-पूजन की शिक्षा करके कहा कि जो हृदय की प्रीति होगी तो तेरा सब मनोरथ व चाहना भगवत् पूर्ण कर देगा। उस लड़की ने उसी दिन से अतिभक्ति व विश्वास से ऐसी पूजा अंगीकार करी कि थोड़ेही दिनों में भगवत् प्रसन्न होगये, यहां तक कि जवानी के आने से जो उसको चाहना काम की हुई तो वह भी भगवत् ने पूर्ण करी और उस लड़की के गर्भ रह गया सारे संसार व जाति भाई में यह बात विख्यात हुई और लड़की से पूछा कि यह क्या अभाग्यता तेरी है, उसने कहा कि तुमने कहा था कि सब चाहना तेरी भगवत् से प्राप्त होगी सो जो कुछ हुआ वह भगवत् से हुआ। वामदेव इस सुखसमाचार से ऐसे आनन्दित हुये कि शरीर में न समाये और जब लड़का उत्पन्न हुआ तो सब धन सम्पति को उसके जन्म उत्सव में लुटा दिया। नामदेव नाम रक्खा और प्राण से अधिक प्यारा जाना। बेविश्वासी और अयोग्यों की शंका व संदेह दूर करने के हेतु पुराणों की कथा आदि से अलग भगवत् का वचन स्मरण हो आया। भागवत के दूसरे स्कन्ध में लिखा है कि निष्काम अथवा कामना अथवा मुक्ति के हेतु मुझको दृढ़भाव से जो सेवन करते हैं तो आप मैं सब कामना पूर्ण करता हूँ। एकादश में लिखा है कि अपने भक्तों को मुक्तिपर्यन्त सब देता हूँ, संसारी कामना की तो कितनी बात है और इसको अलग रहने देव जब कि भगवत् अपने भक्तों के हेतु अपना निजधाम छोड़ करके चले आते हैं और ऐसे शरीर बना लेते हैं कि जो बुद्धि व विचार में न आसके तो किसी अपने भक्त कामसुख की चाहना करनेवाले की कामना पूर्ण करी तो क्या आश्चर्य है? जो भगवत् के अवतार व गोपिका व कुब्जा आदि के चरित्रों पर विश्वास है तो नामदेव का जन्म होना निज भगवत् से सर्वथा सच और युक्त है। कथा संक्षेप जन्म ही से नामदेवजी को भगवत् का प्रेम हुआ, जब दोचार वर्ष के हुये तो खेल भगवत्आराधन के खेलते अर्थात् भगवत्मूर्ति बनाकर आभूषण वस्त्र पहिनाकर जिस प्रकार उनका नाना सेवा आरती किया करता था तब यह कहता था कि यह भगवत्मूर्ति मुझको दे देवे और वह बालक जानकर बहाना कर दिया करता। एक दिन कहा कि मैं किसी गांव जाता हूँ चार दिन में आऊँगा तुम सेवा पूजा कीजियो। जो भगवत् ने तुम्हारा भोग लगाना अङ्गीकार कर लिया तो सेवा तुमको सौंप देंगे। नामदेवजी बहुत प्रसन्न हुये और दिन गिनने लगे नाना से नित्य जाने का दिन पूछा करते और बहुत अपने मन में आनन्द हुआ करते। जब वह दिन आया उनका नाना सब रीति भगवत् सेवा की समझाकर चला गया, नामदेवजी को सन्ध्या ही से प्रेम हुआ और जब गऊ के आने में विलम्ब हुआ तो

आप वन में जाकर लाये, फिर माता ने अनुशासन किया कि दूध पिलाने का समय आगया, इस हेतु दूध बहुत शीघ्रता से उष्ण किया और सुगन्ध व मिश्री मिलाकर बड़े प्रेम और उत्साह से कटोरा भगवत् के आगे ले गये, पर यह डर मन में रहा कि मुझसे कुछ अपराध न होगया हो, भगवत् के सामने हाथ जोड़कर बड़ी दीनता से विनय किया महाराज दूध है मुझको अपना दास जानकर पान कीजिये और अपने दास को परम आनन्द दीजिए। दूध न पिया नामदेवजी लड़के थे यह बात जानते थे कि भगवत् भी जैसे सब लड़के दूध पिया करते हैं पीते हैं। इस हेतु भगवत् के चुप रहने से बहुत उदास हुये और सामने से अलग होकर बहुत शोच करने लगे। जब निराश हुये तो रोने लगे और कहा कि महाराज अच्छे प्रकार गरम किया है मिश्री बहुत डाली है, जब न पिये तो रोते २ बिना भोजन किये भूखे प्यासे पड़े रहे। इसी प्रकार दो दिन बीते तीसरे दिन कि उसके भोर उनका नाना आनेवाला था, यह विकलता हुई कि दूध न पियें तो सेवा मुझको न मिलेगी। इस हेतु दूध बनाकर सामने ले गये, कई बार विनय किया, नहीं माने तब छुरी निकालकर अपना गला काटने पर तत्पर हुये। भगवत् ने जो यह दृढ़ विश्वास देखा तो एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से कटोरा दूध का उठाकर पीने लगे जब कटोरे में दूध थोड़ा रहा तब नामदेवजी ने कहा नित्य भर भर कटोरा पीते हो मैं तीन दिन का भूखा हूँ कुछ भी तो छोड़ो। भगवत् हँसे अपना अधरामृतयुक्त महाप्रसाद दिया। निश्चय स्कन्दपुराण का वचन है कि भगवत् न काष्ठ की मूर्ति में हैं न पाषाण की न दूसरी जगह केवल इस पुरुष के विश्वास में विराजमान हैं। इस हेतु विश्वास दृढ़ चाहिये। भोर को नामदेवजी का नाना जब आया तब सब वृत्तान्त सुना तो परम आनन्द में मग्न होगया और कहा कि हमको भी तो दिखलाओ। नामदेवजी उसी प्रकार कटोरा दूध का सँवार कर ले गये, कुछ विलम्ब हुआ तो वह चाकू दिखलाया कहा कि मेरे पास है। भगवत् ने तुरन्त पान किया वाह वाह भगवद्वत्सलता और प्रेम की रिझवारता कि जिसको वेद नेति नेति कहते हैं और शिवादिक जिस हेतु भाँति भाँति की समाधि लगाते हैं वह अपने भक्तों की भक्ति और प्रीति के ऐसा वश में है कि उनके मनोरथ के अनुकूल सब कुछ करता है इस बात की ख्याति हो गई। बादशाह ने बुलाकर कहा कि तुमको ईश्वर मिला है सो हमको भी दिखाओ अथवा अपनी सिद्धाई दिखादेव। नामदेवजी ने कहा हमारे में सिद्धाई होती तो छीपी की आजीविका क्यों करते और दिन भरते जो कोई साधु सन्त आ जाता है आधसेर आटा बांट खाते हैं कि उसके प्रभाव करके आपने बुला लिया है। बादशाह बोला कि तेरे कपट की बातें कुछ नहीं सुनते, गऊ मरी है इसको जिला देव नहीं तो तुमको कतल कर देंगे। नामदेवजी ने एक विष्णुपद बनाया, पहला तुक यह है। बिनती सुनु जगदीश हमारी। तुरन्त सुनते ही उस विष्णुपद के गऊ जी उठी और

बादशाह चरणों में पड़ा, कहा कि द्रव्य व गाँव परगना जो आज्ञा हो, नामदेवजी बोले कि हमको कुछ प्रयोजन नहीं, विदामात्र का प्रयोजन है। बादशाह ने एक पलँग सोने का जड़ाऊ भेंट किया उसको मूँड़ पर रखकर चले और बादशाह के भृत्यलोग जो साथ आये थे सबको बिदा कर दिया। राह में एक नदी थी उसमें पलँग को डाल दिया बादशाह ने सुनकर उसी पलङ्ग को माँग भेजा, इस बहाने कि उस नमूने का बनवाया जायगा। नामदेवजी ने उस पलँग से उत्तम उत्तम पलङ्ग अगणित नदी से निकालकर डाल दिये और आदमियों से कहा कि अपना पहिचानकर ले जाव, तब तो बादशाह की बुद्धि गई आकर चरणों में पड़ा। नामदेवजी ने कहा कि फिर किसी साधु को क्लेश न देना और न कभी हमको बुलाना। एक दिन पण्ढरपुर के ठाकुरद्वारे में दर्शन को गये बड़ी भीड़ लोगों की देखकर दर्शन में दुचिताई रहे यह विचार करके जूती कमर में बांधकर मन्दिर में गये। संयोगवश किनारा जूती का किसी ने देख लिया, मारते मन्दिर से बाहर कर दिया। नामदेवजी मन्दिर के पीछे बैठे रहे और भगवत् से विनय करी कि दण्ड किया तो उचित किया पर मुझको आपके सिवाय कुछ ठिकाना नहीं और न कुछ चाहना है। जो दर्शन और लोगों को है तो कान मेरे कीर्तन की ओर हैं यह विनय करके कीर्तन करने लगे और विष्णुपद व्यङ्ग लिये और अपनी हिनाई को भी गाया। पहली तुक यह है। हीन है जाति मेरी यादवराय। भगवत् सुनते ही करुणा से विह्वल होकर मन्दिर को जड़ से फेरिकै द्वार उसका नामदेवजी की ओर कर दिया यह चरित्र देखकर सब चकित हो रहे और महन्त आदि ने चरणों में पड़कर अपराध क्षमा कराया, अब तक द्वार उस मन्दिर का दक्षिण मुँह है। एक दिन अचानक नामदेवजी के घर आग लग गई तो जो वस्तु घर से अलग थी आग में डालने लगे और विनय किया कि सबको अङ्गीकार करिये। भगवत् बहुत हँसे और कहा कि क्या आग में भी मुझको जानता है? कहा कि यह घर आपका है दूसरा कौन स्पर्श कर सकता है। भगवत् ने प्रसन्न होकर आप नवीन छप्पर ऐसा सुन्दर छा दिया कि किसी ने न देखा था। जब लोगों ने देखा तब पूछा कि किसने यह छाया है और मजूरी क्या लेता है? नामदेवजी ने कहा मजूरी बड़ी कड़ी है अर्थात् तन मन चाहता है और पहले वह मजूरी ले लेता है तब दिखाई देता है पण्ढरपुर में एक साहूकार ने तुलादान किया सारे नगर में सोना बहुत बांटा किसी के कहने से नामदेवजी को भी बुलाया। नामदेवजी ने दो बार कहला भेजा हमको द्रव्य का प्रयोजन नहीं तीसरी बार गये साहूकार ने कहा कि कुछ थोड़ा आप भी अङ्गीकार करें कि मेरा भला होय। नामदेवजी ने मन में सोचा कि इसका गर्व धन का दूर होगा तब भला होगा, इस हेतु एक तुलसीदल पर 'रा' अक्षर कि भगवत् का नाम है लिखकर उसके बराबर सोना मांगा। पहले साहूकार ने जैसे बलि वामन जी से कहा उसी प्रकार

बोला, पीछे घर का व औरों से मांग मांग कर धरा बराबर न तुला तब लज्जित हुआ। नामदेवजी ने विचारा कि धन का गर्व तो दूर हुआ पर पुण्य इसने किया है तिसका गर्व दूर किया चाहिये। बोले कि जो तू ने अपनी अवस्था भर पुण्य किया है सो भी संकल्प करदे, क्या जाने बराबर हो जाय, साहूकार ने वह भी संकल्प कर दिया जब तराजू में बराबर न तुला तो संकुचित होकर कहने लगा कि जो है सोई लेजाव। नामदेवजी बोले अरे अज्ञानी। यह धन हमारे कौन काम का है, एक भगवद्भक्ति धन चाहिये कि जिसके आधीन सब देवता और सब ऐश्वर्य दोनों लोक के हैं, साहूकार लज्जित होकर विश्वासयुक्त भगवद्भक्त हो गया। इसके पश्चात् भगवत् ने एकादशी व्रत की परीक्षा के हेतु एक अतिदुर्बल ब्राह्मण के रूपसे आय नामदेवजी से भोजन मांगा। उन्होंने एकादशी व्रत जानकर न दिया ब्राह्मण बोला भोजन बिना अब मेरा प्राण निकला चाहता है शीघ्र भोजन देव। नामदेवजी कहें कि आज एकादशी को न देंगे इसी हठाहठी में दोनों झगड़ पड़े। शोरगुल हुआ लोग बटुर आये सबने कहा रसोई बनवाय के खिलादेव। नामदेवजी ने न माना, संध्या के समय ब्राह्मण मर गया। लोगों ने कहा नामदेवजी को हत्या हुई नामदेवजी को कुछ भय न था चिता में ब्राह्मण की लोथ समेत बैठकर लोगों से कहा आग लगा देव। इतने में भगवत् हँस पड़े, विश्वास पर नामदेवजी के प्रसन्न हुये। लोग यह चरित्र देखकर नामदेवजी के चरणों में पड़े, नामदेवजी के घर पर एकादशी को जागने में हरिभक्तों को जलतृषा हुई, बावली में एक बड़ा प्रेत रहता था उस डर से कोई न जासका। नामदेवजी कलश लेकर आधीरात को वहां गये वह प्रेत विकराल व भयंकररूप आया नामदेवजी ने यह पद ताज लेकर किया तुक उसका यह है—ये आये मेरे लम्बकनाथ। धरती पांव स्वर्ग लौं माथो योजन भर भर हाथ।। भगवत् उसी भूत में प्रकट हुये और वह भूत भी नामदेवजी की कृपा से भगवद्धाम को पहुँचा। नामदेवजी एकादशी के जागरण में ऐसे दृढ़प्रेमी शिरोमणि हुये कि अब तक रीति है कि जहां जागरण एकादशी का होता है पहले नामदेवजी का पद मङ्गलाचरण गाते हैं।

कथा अल्हजी की ।।

अल्हजी परम भगवद्भक्त हुये, तीर्थयात्रा में कहीं एक राजा के बाग में उतरे, सेवा पूजा को किया आम के नीचे बागवान से आम मांगा, भगवत् को भोग लगाने को, उसने कहा जो आम खाये बिना नहीं रहा जाता है तो तुम तोड़ लेव। बस तुरन्त आम की डाली सब ऐसी झुक गईं कि आम सिंहासनपर व भूमि पर आगये, आम ठाकुरजी को भोग लगाया। उस बागवान ने जाकर राजा से यह चरित्र कहा, राजा दौड़ा आया चरणों में पड़कर विनय किया आपके चरणों के प्रभाव से मैं और यह बाग व सब देश पवित्र हुआ अब कुछ कृपा विशेष करना चाहिये। अल्हजी

ने दया करके उसको भगवच्छरण व भक्त कर दिया। जाने रहो भगवद्भक्ति और भक्तों का यह प्रताप है कि शिव ब्रह्मादिक जिनके चरणों में अपना मस्तक झुकाते हैं जो एक वृक्ष झुका तो क्या आश्चर्य है।

कथा पृथ्वीराज की ॥

पृथ्वीराज राजा बीकानेर बेटाकल्याणसिंह के भगवद्भक्त हुये। कवित्त दोहा भाषा में श्लोक संस्कृत में रचना करके अतिप्रेम से कीर्तन किया करते थे। पिङ्गल इत्यादि के बड़े ज्ञाता व काव्य बड़ी ललित उनकी थी, भगवत्सेवा में बड़े निष्ठ थे और इन्द्रियसुख के ऐसे त्यागी थे कि अवस्थाभर स्त्री की ओर नहीं देखा था। कहीं परदेश में संयोगवश गये थे तो मन्दिर में सेवा मूर्ति का ध्यान मानसी करते थे। दो दिन ध्यान में वह स्वरूप न देखा, तीसरे दिन दर्शन मानस में हुआ पर वृत्तान्त बूझने के हेतु सांड़िनी दौड़ाई तो राजमन्त्रियों ने पत्री लिखी कि मन्दिर की मरम्मत होने से दो दिन श्रीनाथजी दूसरे स्थान में थे, मन्दिर में नहीं गये, राजा का तब सन्देह दूर हुआ और बड़े आनन्द हुये। राजाने अपने मनमें मथुराजी में देह त्यागने का प्रण किया था, इस वृत्तान्त को बादशाह ने सुनकर द्वेष करके उनको काबुल की लड़ाई पर तैनात कर दिया। राजा को इस यात्रा से एक एक दिन कल्प के समान बीतते थे क्योंकि अवस्था जीने की थोड़ी आय रही थी। जब दिन उनके प्रण का निकट आया तो भगवत् ने उसदिन राजा को जनाय दिया। तुरन्त साड़िनी पै बैठकर मथुराजी में आये और प्रण पूर्ण हुआ, शरीर त्याग करके परमधामको पहुँचे। जय जय की ध्वनि सारे संसार में पहुँची और निर्मलयश भगवद्भक्ति और भक्तों का संसार में विख्यात हुआ। एक वृत्तान्त राजा का और भी तीसरे तर्जुमा करनेवाले ने लिखा है कि एक-बेर विदेशयात्रा में संयोगवश जङ्गल में वास हुआ और वहां लश्कर को कुछ सामां खानेपीने की न मिली। भगवत् ने भक्तवत्सलता करके एक नगर बड़ा भारी प्रकट कर दिया कि सब प्रकार से सुख सारे लश्कर को हुआ।

कथा धनाभक्त की ॥

धना जाति के जाट परमभक्त हुये। उनके भक्त होने का वृत्तान्त यह है कि जब लड़के थे तब उनके घर एक ब्राह्मण भगवद्भक्त आया। भगवत् की सेवापूजा करता था, धनाभक्त ने उससे कहा कि मूर्ति हमको भी देव कि जैसी तुम सेवा पूजा करते हो हम भी करें। पहले बहाना किया, जब हठ देखा तो एक छोटासा काला पत्थर दे दिया। धनाजी ने बड़ी प्रीति से शिर व नेत्रों से लगाया। सेवा प्रारम्भ की, पहले आप स्नान किया और फिर भगवत् को स्नान कराकर तालाब की मिट्टी का तिलक लगाया और तुलसीदल के स्थान पर हरी पत्ती चढ़ाई और बड़ी प्रीति और हर्ष से साष्टाङ्ग दण्डवत् की। जब उनकी माता रोटी लाई तो भगवत् के आगे रखकर और आँखें बन्द करके बैठ गये। बड़ी देर तक बाट जोहते रहे कि भगवत् भोग लगावें, पर जब

न खाई तब उदास व दुःखित होकर बार-बार हाथ जोड़े। तब फिर लड़कई हठ करके बहुत प्रार्थना किया तो भी भोजन न किया, तो रोटी को तालाब में डाल दिया और आप भी बेअन्नजल रह गये कई दिन इसी प्रकार बीते और भूख प्यास से विह्वल होकर मरने के निकट पहुँचे। भगवत् को द्रव हुआ, प्रकट होकर रोटी खाना प्रारम्भ किया। जब आधा भोजन किया तब धनाजी बोले क्या सब तूही खाजायगा कुछ मुझको भी देगा कि नहीं ? भगवत् ने हँसकर बची रोटी धनाको दी। इसी प्रकार नित्य की व्यवस्था हो गई, धनाजी ने जो, परममनोहर रूप भगवत् का देखा तो ऐसी प्रीति होगई कि एक क्षण उस रूप को ध्यान में अथवा प्रकट में न देखें तो बेचैन हो जाते। भगवत् ने देखा कि जिसकी रोटी बेपरिश्रम खाते हैं उसकी टहल भी कुछ किया चाहिये कि बिना परिश्रम किसी का खाना अच्छी बात नहीं, सो धनाभक्त से पूछकर गऊ चराय लाया करते। एक बार वही ब्राह्मण आया, सेवापूजा धना को करते कुछ न देखा, कारण पूछा ? धनाजी ने कहा कि महाराज भली पूजा दे गये थे कि कितने दिनों मुझको भूखों मारा। अब बड़ी कठिनता से ऐसा सीधा हुआ है कि गाय तक चराय लाता है। ब्राह्मण को आश्चर्य हुआ कहा कि हमको भी दिखला। धनाजी ने ब्राह्मण को भी दर्शन कराया, वह ब्राह्मण भी कृतार्थ होगया और धनाभक्तजी भगवत् की आज्ञा से काशीजी में रामानन्दजी से मन्त्र उपदेश लेकर गुरु की आज्ञा के अनुसार घर में आयके साधुसेवा में लीन रहे। एक दिन खेत बोने को गेहूँ लिये जाते रहे, साधु आयगये, वह गेहूँ साधु सेवा में लगा दिये। माता पिता की भय से खेत को जैसा बोने पर बनाके छोड़ देते हैं वैसाही करके छोड़ दिया। भगवत् ने विचारके सबसे अच्छा उस खेत को जमाया कि सब लोग बड़ाई करने लगे। धनाजी ने लोगों की बड़ाई करना खेत के जमने की हँसीठट्ठा समझा। एक दिन जो खेत की ओर गये तो कहना सबका सत्य देखा। भगवत् की कृपा से बार-बार जाके प्रेम व आनन्द में डूब गये और अधिक भगवत् और भक्तों की सेवा में लवलीन हुये। अरे राजा इन्द्र ! तू कैसा ज्ञानवान् व बुद्धिमान् है कि वज्र के बनाने के हेतु दधीचिऋषीश्वर को दुःख दिया। मेरे इस अभागे मन को क्यों न उठाकर लगाया कि कठोर वज्र से भी कठोर है जो यह कथा धनाभक्त की कहकर और करुणा और भक्तवत्सलता और रिझवारता परमदयालु की सुनकर तनक भी नरम नहीं होता।

कथा देवाजी की ॥

उदयपुर के निकट एक मन्दिर रूपचतुर्भुज स्वामी का है, वहाँ का पुजारी देवा नाम ब्राह्मण वृद्ध हुआ। एक दिन जब राना उदयपुर की गद्दी का मालिक आय गया और देवा रात को शयन के समय भगवत् को शयन कराके माला फूलों की उतारी तो अपने शिरपर लपेटकर कपाट मन्दिर के बन्द कर चुके थे। देवा ने वह माला उतारकर, जब राना मन्दिर में पहुँच गया, राना के गले में डाल दी। संयोगवश एक

केश सफेद उस माला में राना को देख पड़ा, देवा पुजारी से पूछा क्या भगवत् के केश श्वेत हो गये ? देवा ने कहा हाँ महाराज सफेद होगये। राना ने कहा हम भी प्रभात देखेंगे। यह कहकर चला गया, देवाजी के मुख से जो यह बात निकल गई तो भययुक्त होकर सिवाय भगवत् के और दूसरा रक्षक न देखा। बहुत दुःखी होकर कहने लगे कि हे हृषीकेश! हे स्वामिन्! न आपकी भक्ति मेरे में है न सेवा पूजा में विश्वास पर आपके चरणकमलों के सिवाय कोई शरण व रक्षा का स्थान भी नहीं कि वहाँ जाऊँ, अब मेरी लज्जा आपही को है चाहो सो करो। भगवत् ने यह बिनती अपने भक्त की सुनकर करुणायुक्त होकर उसी क्षण अपने श्रीअङ्गपर श्वेतकेश धारण कर लिये। प्रभात को देवा ने मन्दिर के कपाट खोले और श्वेतकेश श्रीअंग पर देखते ही भगवत् की करुणा व दयालुता के प्रेम में ऐसे बेसुधि होगये कि कुछ सुधि-बुधि शरीर की न रही। पीछे सुधि भई भगवत् की करुणा दीनवत्सलता आदि गुणों को और अपनी विमुखता को सोचते भक्ति और भाव में छके हुए भगवत् की महिमा अपने मन में वर्णन कर रहे थे कि राना आया और भगवत् के शरीर पर केश सफेद देखकर ध्यान में आया कि इस ब्राह्मण ने किसी के बाल लगा दिये हैं। परीक्षा के हेतु एक केश खींचा भगवत् को क्लेश पहुँचा और नासिका को चढ़ाई फिर वह केश टूट गया और रुधिर की धार इस वेग से निकली कि राना के कपड़ों तक पहुँची। राना यह वृत्तान्त देख मूर्च्छा खाकर गिर पड़ा, एक पहरतक अचेत पड़ारहा, फिर उठकर देवा के चरणों में पड़ा और क्षमा करने अपराध के निमित्त विनय व प्रार्थना की। तब आज्ञा हुई कि अबसे राना के वंश में जब तक कुँवर रहे तबतक दर्शन को मन्दिर में आवे और जब से राजतिलक होय तबसे मन्दिर में न आवे, जावे सो अब तक यह रीति वर्तमान है।

कथा दो लड़कियों की ॥

एक लड़की किसी जमींदार की और दूसरी राजा की भगवत्कृपा के प्रभाव करके उस पदवी और भक्ति को पहुँची कि जिनकी कथा अब तक भक्तों के मुख से होती है। वृत्तान्त यह है कि एक बेर राजा के गुरु आये थे दोनों लड़कियों ने भगवत्मूर्ति मांगी। उन्होंने बालापन देखकर एक टुकड़ा पत्थरका देकर नाम शिलपली बतला दिया और इतना उपदेश कर दिया कि मन लगाकर सेवा पूजा करती रहो, संसारसमुद्र से पार हो जाओगी। वे दोनों बड़भागिनी अत्यन्त विश्वास और प्रेम से सेवा पूजा करने लगीं। यहां तक कि भगवत् का रूप उनके हृदय में प्रकाशित हुआ। इतनी कथा दोनों की इकट्ठी वर्णन हुई अब अलग २ लिखी जाती है। जमींदार की लड़की का चचा अपने भाई से अर्थात् उस लड़की के बाप से शत्रुता रखता था वह उसपर चढ़ आया, गांव को लूट ले गया उस लूटने में उस लड़की की सेवा की मूर्ति भी गई। वह लड़की अत्यन्त विकल भई व सारा संसार उसको अँधियारा होगया और जी

में प्राणपीड़ा हो गई, जब सोना, खाना, पीना सब छूट गया तब सबके कहने से अपने चचा के पास जहाँ वह अपने चौबारे में बैठा था और गांव के सब आदमी भी थे वह लड़की गई और मूर्ति मांगी, वह बोला पहिचान कर ले जा। किसी ने कहा तू टेरदे जो ठाकुर को तेरे साथ प्रीति होगी तो आप चले आवेंगे। वह लड़की कि रोते रोते आँखें सूज आई थीं व गला पड़गया था, बड़े कष्ट से दीन होकर पुकारा हे शिलपली महाराज ! अपनी दासी को क्यों छोड़ आये कहां हो ? भगवत् शब्द के सुनते ही तुरन्त आकर उस बड़भागिनी की छाती से लिपट गये और उसको प्राणदान देकर जिवाय लिया और दोनों गाँव वालों को निश्चय अपनी भक्ति का किया और राजा की लड़की भगवत् प्रेम में ऐसी रँगि गई कि रङ्गीन होगई, परन्तु एक भगवद्विमुख आदमी के साथ उसका विवाह हो गया था। वह ले जाने को आया, उसको बड़ी चिन्ता भगवत् सेवा की हुई। नितान्त जब माता ने बिदा कर दिया अपने प्राणप्रीतम को डोला में बैठा लिया और कोई लौंड़ी बांदी को साथ न लिया। राह में वह विमुख पास आया और बोलने बोलाने को चाह से बोलाया। वह कुछ न बोली तब उसने कहा तुम क्यों नहीं बोलती हो और तुमको कौन दर्द है कि उसका उपाय किया जाय ? उस लड़की ने उत्तर दिया कि तुमको चाहना हमसे बोलने की है तो भगवद्भक्ति अङ्गीकार करो नहीं तो हमको स्पर्श न करो। उसको क्रोध आया और पिटारी भगवत्सेवा की नदी में डाल दी। यह लड़की अतिव्याकुल व स्वामी के वियोग से दुःखित हुई और अन्न जल विष होगया। उस विमुख ने उसको प्रसन्न करने को अनेक उपाय रचे पर कुछ काम न आया, अपने घर में आया तब राह का यह वृत्तान्त सब जना दिया। स्त्रियों ने बहुत भांति समझाया और सासु अपने हाथसे भोजन कराने लगी, परन्तु उस बड़भागिनी का मन भगवच्चरणों में दृढ़ लग रहा था, किसी की कुछ न सुनी और कुछ न खाया पिया। जब सब उपाय करके सासु इत्यादि हारीं तब सब उसी नदीपर आये जहां पिटारी को पानी में डाल दिया था और वह बड़भागिनी करुणा से भरी हुई रुदन करती हुई पुकारी कि हे स्वामी, शिलपली महाराज ! कहां हो, आप दासीसे किस हेतु रूठगये हो, जो बहुत पानी में नहाना आपको था तो मैं गङ्गाजी में स्नान कराती, अब कृपा करो दर्शन देव। भगवत् अपने भक्त के पराधीन ऐसे हैं जैसे कामीपुरुष सुन्दरी नायिका के आधीन व वशीभूत होता है, वह शब्द करुणा से भराहुआ सुनकर तुरन्त अपनी वियोगिनी विरहिनी को दर्शन देकर प्राण को रखलिया। सबको भक्ति का विश्वास हुआ और भगवत्भक्ति व साधुसेवा सब कोई करके कृतार्थ होगये।

कथा सन्तदासजी की ॥

सन्तदासजी निवाई गाँव में विमलानन्द के प्रबोधनवंश में परमभक्त हुये। जिस प्रकार राजा पृथु ने अपनी स्त्री समेत भगवत्सेवा करी उसी प्रकार सन्तदासजी ने

करी। अपनी वाणी की रचना में भगवत् और भक्ति और भक्तों का प्रताप बराबर लिखा और काव्य उनका सूरदासजी के बराबर था। भगवत् के जन्म, कर्म, लीला व चरित्रों को ऐसी मधुर व ललित वाणी में बनाया कि निश्चय मन नरम होकर भगवच्चरणों में लग जाता है। एक बेर उनके मन में यह आया कि भगवत् को छप्पन प्रकार का भोग लगाना चाहिये, सो ध्यान में भोग लगाया। जगन्नाथरायजी ने अपने सच्चे भक्त का मानसी भोग अङ्गीकार किया और पुजारियों का धरा थाल भोग न लगाया और राजा को स्वप्न में आज्ञा की कि सन्तदास के घर हमारा नेवता था, उसने ऐसा भोजन कराया कि स्वादिष्ट व मधुरता से बहुत खागये कि भूख नहीं है। राजा ने सन्तदासजी का भक्ति व प्रताप का विश्वास किया और भक्तों को भगवद्भक्ति और भाव की वृद्धि हुई।

कथा साखीगोपाल की ॥

दो ब्राह्मण गौड़देशके रहनेवाले उसमें एक बूढ़ा व कुलीन और दूसरा जवान और सामान्य कुल का तीर्थयात्रा में एक साथ रह जहाँ तहाँ दर्शन करके जब वृन्दावन में आये तो बूढ़ा ब्राह्मण बीमार होगया। जवान ब्राह्मण ने उसकी सेवा को अच्छे प्रकार से किया। जब आराम हुआ तो उसने प्रसन्न होकर ब्याह कर देने अपनी लड़की का वचन दिया और जवान ब्राह्मण ने बहुत कहते सुनते अङ्गीकार किया। साक्षी चाहा तो वृद्धब्राह्मण ने श्रीगोपालजी को साक्षी दिया। जब दोनों अपने घर आये तब उस युवा ब्राह्मण ने कहा कि वचन पूरा करो तो स्त्री व पुत्र ने बूढ़े ब्राह्मण को अपनी कुलीनता व प्रतिष्ठा के कारण से न माना, तब पञ्चाइत बटुरी पञ्चों ने साक्षी माँगा। उसने उत्तर दिया कि जहाँ गोपालजी साक्षी हैं तो और साक्षी का क्या प्रयोजन है? पञ्चों ने कहा कि जो गोपालजी आयकर गवाही देवें तो निस्संदेह विवाह होजावे और इस बात का लिखना भी होगया। वह ब्राह्मण वृन्दावन में आया श्रीगोपालजी के मन्दिर में जाकर चलने के निमित्त निवेदन किया, कितने दिनतक इसी आशा में फिरता रहा जब भगवत् ने अच्छे प्रकार विश्वास मन का देख लिया तब बोले कि प्रतिमा भी कहीं चलती है? तब ब्राह्मण ने विनय किया कि जो चलती नहीं तो बोलती कैसे है? योगेश्वर भगवान् निरुत्तर हुये और साथ हो लिये पर उस ब्राह्मण से कहने लगे कि जब तू पीछे फिरकर देखेगा उसी जगह खड़ा हो जाऊँगा। उसने कहा कि जो ऐसा ठग हो कि हजारों उपाय और परिश्रम से भी महादेव इत्यादि के मन में से भाग जाता है और जिसने गोपियों का माखन और दही चुराकर अच्छे प्रकार से खाया और उन्होंने पकड़ने का मन किया फिर भाग गया, उसका कैसे विश्वास होवे कि पीछे पीछे आता है या नहीं, इस हेतु साथ साथ चलना चाहिये। भगवत् ने हँसकर कहा कि हमारे नूपुर की ध्वनि तेरे कान में पड़ती रहेगी उसने मान लिया। जब घर के समीप पहुँचा तो

ब्राह्मण को कामना हुई कि अब तो रूप अनूप को आँखभर देखलेना चाहिये सो इस चाहना में प्रबन्ध की बातको भूल गया और पीछे फिरकर देखा तो भगवत् वहीं खड़े होगये और ब्राह्मण आज्ञा पाकर गाँव में गया। वृत्तान्त आने आप श्रीगोपालजी महाराज का कह करके पञ्चों को ले आया और भगवत् ने दोनों ब्राह्मणों में जो प्रबन्ध था सो कह दिया। सबको भगवत् और भक्ति और भक्तों का विश्वास हुआ और उस ब्राह्मण का विवाह बड़े हर्ष से हुआ। अबतक श्रीगोपालजी महाराज घुड़दान गाँव में श्रीजगन्नाथरायजी के मन्दिर में पाँच कोस पर विराजमान हैं और नाम साखी-गोपाल विख्यात है जो कोई जाता है दर्शन पाता है।

कथा सीवांजी की ॥

सीवां बेटा सांगन राजा अपनी कावा जाति के द्वारकादेश में परम भक्त हुये। यद्यपि कामध्वजजी बड़े त्यागी विख्यात हैं परन्तु यह राज्यकाज करते हुये और सब पदार्थ ऐश्वर्य पायके कामध्वज से अधिक त्यागी मन से थे। वीर, उदार व पराक्रमी ऐसे थे कि भगवत् की सहाय करी। वृत्तान्त यह है कि अजीजखां नामी बादशाही नौकर बड़ा कटक लेकर द्वारका पर चढ़गया। रनछोरजी के मन्दिर और पुरी में आग को लगा दिया और लोगों पर नाना प्रकार का उत्पात प्रारम्भ किया। भगवत् ने सीवां से सहायता चाही, सीवां ने कुछ सवारों समेत द्वारका में पहुँचकर सबों का बध किया, बड़ा युद्ध किया अजीजखां को यमलोक में पहुँचाय के आप भगवत्-लोक में वास किया।

कथा सदनजी की ॥

सदनजी जाति के कसाई परमवैराग्यवान् भक्त हुये, जिस प्रकार सोना कसौटी से अवगुणरहित होजाता है इसी प्रकार सदनजी ने पिछले जन्मों के पाप दूर कर दिये। मांस औरों से मोल लेकर बेंचा करते थे, हिंसा नहीं करते थे। शालग्राम की मूर्ति पास थी उसी से सेर अथवा मन जो चाहता था तौल देते थे। एक वैष्णव ने देखकर मन में कहा कि यह मूर्ति ऐसी वृत्तिवाले के पास कहाँ उचित है, इस हेतु सदनजी से माँगी। उन्होंने तुरन्त दे दी साधु को स्वप्न में कहा कि जहाँ से लाया तहाँ ही पहुँचादे। साधु ने कहा कि महाराज कसाई के यहाँ आपका निवास अयोग्य है तब आज्ञा हुई कि हमको उससे बड़ी प्रीति है। हमको पलरे पर रखता है तो हम झूला झूलते हैं व मोल की जो जो बातचीत करता है सो हम कीर्तन मानते हैं। साधु ने जाकर सदनजी से सब वृत्तान्त कहकर शालग्राम की मूर्तिको देदिया। सदनजी घरबार त्यागकर उस मूर्ति को शिरपर रखके जगन्नाथरायजी को चले, राह में कहीं एक स्त्री सदनजी को सुन्दर व युवा देखकर आसक्त होगई, अपने यहाँ टिकाया, अच्छा भोजन कराया, रात को कहा कि हमको अपने साथ ले चलो। उन्होंने कहा कि मेरी गर्दन काट डालो तब भी यह नहीं होगा। उसने कुछ और ही समझकर तुरन्त घरमें

जाकर अपने पति का शिर काटकर फिर आकर वृत्तान्त कहा कि अब बेखटके तुम साथ ले चलो। सदनजी ने कहा कि ऐ मतिहीन ! यह हमसे कदापि न होगा। उसने शोर किया कि इस आदमी को साधु जानकर टिकाया सो मेरे पति का शिर काटकर हमको साथ लेजाने को कहता है। सदनजी पकड़कर हाकिम के यहां गये पूछा गया तब सदनजी ने कहा हां हमसे अपराध हुआ। हाकिम ने हाथ सदन का कटवा दिया। ऐसे कष्ट में भी सदन अपने पूर्वपाप का फल समझकर भगवत् के ध्यान स्मरणसे आनन्द रहे व जगन्नाथजीको चले। जगन्नाथराय महाराज ने प्रसन्न होकर निज सवारी की पालकी सदनजीके निमित्त भेजी, पर सदनजी मर्यादको देखकर न चढ़े। जब सबने बहुत कहा तब भगवत् आज्ञा का उल्लंघन करना उचित न जानकर सवार होके श्रीदरबार में पहुँचे और भगवत् के दर्शन को पाकर कृतार्थ अपने आपको जानकर दण्डवत् किया। उसीक्षण हाथ जैसे थे वैसे हो गये और सब दुःख जन्मान्तर के दूर होगये। निश्चय करके भगवद्भक्ति का ऐसा ही प्रताप है सो महाभारत में भगवत् का वचन है कि जिसको मेरी भक्ति नहीं और चारों वेद पढ़ा हो वह हमको प्यारा नहीं और जो कोई मेरा भक्त है यद्यपि वह चाण्डाल भी है पर हमको अत्यन्त प्यारा है और वही पूजा योग्य है और एकादशस्कन्ध में भगवत् ने उद्धव से इसको श्लोक की भांति कहा है।

कथा कर्मानन्दजी की॥

कर्मानन्दजी जाति चारण रजवाड़े में भगवद्भक्त और वैराग्यवान् हुये। काव्य उनका ऐसा प्रभावयुक्त है कि कैसाही कठोरचित्त हो पढ़ सुनकर द्रवीभूत होजाता है। उन्होंने संसार को असार व अनित्य जानकर त्याग किया और तीर्थयात्रा को चले। भगवत्सिंहासन शिर पर और हाथ में एक छड़ी ले ली जहां कहीं टिकते वह छड़ी धरतीपर गाड़देते और बटुवा शालग्रामजी का उसकी शाखा पर झूले के भांति विराजमान कर देते। एकबेर वह छड़ी भूल गये चित्त भगवच्चरणों में था इस कारण राह में भी सुधि न हुई। टिकान्तपर पहुँचे जब प्रयोजन भगवत् के विराजमान करने का हुआ तब स्मरण हुआ और अत्यन्त प्रेम से कहने लगे कि झाड़ू देनेवाला, पानी भरनेवाला, रसोई व सेवा करनेवाला व सवारी देनेवाला निश्चय करके यह दास है। क्या जो कार्य कि आपको अधिकार है वह भी इस सेवक को सौंपा गया ? अर्थात् अन्तःकरण के प्रेरक तो आप हैं छड़ी भूलगई न स्मरण हुआ तो विचार कर लें कि इसमें दोष किसका है, भगवत् ने जो बोली प्रेमयुक्त सुनी तो प्रसन्न हुये व तुरन्त छड़ी को मँगा दिया।

कथा कूल्ह अल्ह की॥

कूल्ह व अल्ह दोनों भाई रजवाड़े में हुये। कूल्ह भाई बड़े आदि से भगवद्भक्त वैराग्यवान्, त्यागी व भगवत्रूपमाधुरी के ध्यान में मग्न और भगवच्चरित्र और

गुणों के कीर्तन करनेवाले हुये व अल्हजी छोटे भाई मद्यमांस के पीने खाने में रहकर बहुत से राजाओं के यश के कवित्त बनाया करते और कभी घुणाक्षरन्याय भगवच्चरित्र का भी कीर्तन करते, पर बड़े भाई की आज्ञा में रहते थे। एक दिन बड़े भाई ने कहा कि यह मनुष्य जन्म दुर्लभ वृथा जाता है और यह संसार अनित्य है। उचित है कि द्वारकाजी में भगवत् के दर्शन कर आवें, सो दोनों भाई द्वारकामें आये। कूल्ह बड़े भाई ने अपने बनाये कवित्त और छन्द भगवत रनछोरजी की भेंट किये और अल्ह छोटे भाई ने अतिलज्जा से शिर नीचे करके आंखों में आंसू भर लिये और अपने अपकर्मों को शोच के विकलचित्त होकर दोचार कवित्त पढ़े। भगवत् ने जो अत्यन्त प्रीति हृदय की देखी और अपने पापकर्मों की लज्जा से लज्जित देखा तो प्रसन्न होकर अल्हजी के कीर्तन पर सावधान हुये और हुँकारी भरने लगे। अभिप्राय यह कि हम सुनते हैं कुछ और कहो और पुजारीको निजमाला देनेके निमित्त आज्ञाको किया। अल्हजी ने विनय किया कि कूल्हजी बड़े भाई इस कृपायोग्य हैं मैं अपराधी इस योग्य नहीं। पुजारी ने उत्तर दिया इस दरबार में बड़ाई छुटाई हृदय की प्रीतिकी देखी जाती है और हमको केवल आज्ञा पालन उचित है, यह कहकर माला को अल्हजी के गले में डाल दिया। कूल्हजी को अति दुस्सह हुआ और अपनी बेमर्यादी समझकर बड़े दुःख व ईर्षा से डूबने का मनोरथ करके समुद्र में कूदपड़े, मुख्यद्वारका में जा पहुँचे, भगवत् का दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये। जब भोजन करने गये तब भगवत् ने आज्ञा की कि दो पनवाड़ों में पारस करो। कूल्हजी ने पूछा दूसरा पारस किसके निमित्त है। भगवत् ने कहा तुम्हारे छोटे भाई के हेतु। सुनतेही बड़ा दुःख फिर हुआ और विषके समान होगया। भगवत् ने कहा दुःखकी कुछ बात नहीं है तुम्हारा छोटा भाई मेरा परमभक्त है और वृत्तान्त उसका यह है कि अगिले जन्म में राजा था और राज्य छोड़ कर जङ्गल में हमारे स्मरणभजन में रहा करता था, संयोगवश एक राजा वहां आयेके टिका और उसकी सजावट भोगविलास व रागरङ्ग इत्यादि को देखकर उस सुख की चाहना को किया, इस हेतु यह शरीर पाया। अब वह तुम्हारे विश्लेष से खाना, पीना, सोना सब छोड़कर मृतप्राय है, शीघ्र जाकर सुधिलेव। कूल्हजी प्रसाद लेकर अपने डेरे पर जहां टिके थे एक क्षण में पहुँचे और अल्हजी को वहां न पाया, घरजाने की सुधि पायकर गृह को चले। अल्हजी अपने भाई के वियोग से महादुःखित रोया करते थे, कूल्हजी को कुशलपूर्वक पत्थर के साथ आते सुनकर अतिहर्षित होकर आगे जाकर लिया, दण्डवत् करके दोनों भाई प्रेम से भरे हुये मिले। कूल्हजी ने सब वृत्तान्त कहा दोनों भाई ऐसे प्रेम में पूर्ण हुये कि घरबार त्याग करके वन में चले गये भगवत् सेवा भजन में शरीर समाप्त किया।

कथा जगन्नाथजी की ॥

जगन्नाथजी रहनेवाले थानेसर परमभक्त और श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के सेवक

पार्षद के सदृश हुये। सेवक होने का यह वृत्तान्त है कि तीन दिन तक महाप्रभु को अपने घर पर विराजमान देखा और उनके प्रताप का प्रभाव घर में प्रकट पायके आधीन व विश्वासयुक्त हुए और सेवक होकर कृष्णदास नाम पाया पर लोग कृष्ण-नाम कहा करते थे। बहुत काल मानसी पूजा और ध्यान करते रहे। एक दिन यह अभिलाषा हुआ कि जो अर्चा मूर्ति भगवत् की मिले तो स्थापन करके सर्वकाल सेवा-पूजा में रहा करूँ। भगवत् ने कृपा करके अपना स्वरूप एक कुएँ में बतलाया, उसको लाकर स्थापन किया और ऐसी सेवापूजा में लवलीन रहा करते थे कि रात्रि दिन भगवत् के शृंगार, रागभोग, उत्साह और लाड़ लड़ाने के सिवाय दूसरा कुछ काम न था। उनके पुत्र का नाम रघुनाथजी था वह लड़काईं से ऐसा भक्त और प्रेमी हुआ कि भगवत् ने स्वप्न में एक श्लोक अपने प्रेम और भक्ति का शिक्षा किया।

कथा रामदासजी की ॥

रामदासजी रहने वाले डाकौर द्वारका के निकट बड़े प्रेमी भक्त हुये। एकादशी व्रत बड़ी प्रीति से रहकर जागरण के हेतु रनछोरजी के मन्दिर में द्वारका जाया करते, जब वृद्ध हुए तब रनछोरजी ने आज्ञा की कि अब तुम घरही में स्मरण-भजन किया करो। रामदासजी ने यद्यपि वचन अङ्गीकार किया पर जब तरङ्ग प्रेम की उठे तो बेवश होकर चले जाते। भगवत् से राह का परिश्रम व क्लेश आनेजाने का अपने भक्त का सहा नहीं गया और आज्ञा की कि तुम एक गाड़ी लेआवो हम तुम्हारे घर चलेंगे। रामदासजी अगिली एकादशी को गाड़ी लिये आपहुँचे और लोगों ने जाना कि बुढ़ाई के कारण से गाड़ी पर आया है। द्वादशी के दिन बतलाये हुये भगवत्मन्दिर में गये और गाड़ी पर सवार कराकर चले, पर गहने सब भगवत् के मन्दिर में छोड़ दिये। प्रभात को पुजारीलोगों ने मन्दिर खोला व भगवत् को न देखा तो जानगये कि रामदास लेगये। सब पीछे पड़े और रामदासजी को उनके आने से चिन्ता हुई। भगवत ने कहा कि समीप ही एक बावड़ी है उसी में हमको छिपादेव, रामदासजी ने वैसा ही किया। वे लोग जो आए तो पहले रामदासजी को मारा पीटा, घायल किया, जब गाड़ी में न देखा तो लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। पीछे किसी के बतलाने से बावड़ी को देखा कि रुधिर से भरी है चकित हुए। भगवत् ने कहा कि रामदास हमारी आज्ञा से हमको लाया है, तुमने जो उसको घाव दिया सो हमने अपने शरीर पर रोका है, इस हेतु बावड़ी रुधिर से भरी है अब तुम फिर जावो तुम्हारे साथ न जायँगे। पुजारियों ने बड़ी प्रार्थना व करुणा से विनय किया कि महाराज जो आप न चलें तो हमारी क्या गति होगी। भगवत् ने कुछ न सुना बहुत कहते सुनते यह ठहरा कि भगवत् मूर्ति बराबर सोना तौलदे, सो पुजारीलोग इस बात पर मानिगए। रामदासजी ने कहा कि महाराज ! मेरे घर सोना कहाँ है ? भगवत् ने कहाकि तुम्हारी स्त्री के कान में बाली सोने की है हमारे

तौलकी बराबर वही बहुत है। जब उस सोने की बाली के साथ भगवत्मूर्ति को तौलने लगे तो बालीवाला पलरा धरती पर हो गया व भगवत्मूर्तिवाला पलरा स्वल्पता से ऊपर उठ गया। पुजारी सब लज्जित होकर अपने घर को चले गये। रामदासजी ने भगवत् को अपने घरपर लाकर विराजमान किया और सेवा भजन करने लगे। इस चरित्र से प्रकट है कि राजा बलि के यहां तो उसके बांधलेने के पीछे उसके यहां टिके और यहां तो रामदासजी के घायल होनेके पीछे टिके और सदा भगवत् के यहां रहनेका यह चिह्न है कि अब भी भगवत्मूर्ति किसी और आदमी से नहीं उठती, जब कोई रामदास के वंश में का उठाता है तो तुरन्त उठ आती है। मन्दिर की मरम्मत के समय इस बात की परीक्षा होचुकी है।

निष्ठा नवीं।

जिसमें महिमा लीलानुकरण अर्थात् रामलीला व रासलीला इत्यादि सब भक्तों की कथाएं हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की चक्ररेखा को दण्डवत् करके कमठ अवतार को दण्डवत् करता हूँ, कि समुद्र मथने के समय वह अवतार समुद्र में प्रकट करके मन्दराचल पहाड़ को अपनी पीठपर धारण किया और देवताओं के दुःख दूर किये। रासलीला, रामलीला व नृसिहलीला बनाकर जो भगवत् का आराधन पूजन करते हैं उसका नाम लीलानुकरण है। यह निष्ठा परमपुनीत ऐसी है कि सैकड़ों हजारों महापापी जिसके प्रभाव करके भगवत्-परायण हुये और भागवत से प्रसिद्ध है कि जब रासलीला के प्रारम्भ में भगवत् गोपियों से अन्तर्द्धान हो गये तो वे मतवारी विरह व बावरी रूप अनूप की होकर वन और कुञ्जन में सब द्रुम और लता गुल्म से पूछती हुई ढूँढ़ने लगीं और रोना, आंसू बहाना, विनय-प्रार्थना, गिड़गिड़ाना व स्तुति जो कुछ उपाय सूझ पड़ा सब करीं, पर भगवत् प्रकट न हुये। नितान्त सब गोपियां भगवत् के किये हुये चरित्रों को करने लगीं, अर्थात् कोई गोपी तो श्रीकृष्णरूप बनी और कोई बालक और कोई गऊ और कोई बछड़ा और जिस प्रकार जन्मोत्सव से लेकर जो जो लीला भगवत् ने करी थी सब करीं, भगवत् प्रसन्न होकर प्रकट हुये, तो सिद्धान्त यह बात होगई कि भगवत् अपने लीलानुकरण से ऐसे रीझते हैं कि आप प्रकट होआते हैं। किन्तु रासलीला भगवत ने आप आज्ञा देकर संसार में प्रकट करी कि यह वृत्तान्त नारायणभट्टजीकी कथा में लिखा गया, इससे भी निश्चय होता है कि भगवत् को अपनी लीलानुकरण अपने निज चरित्रों के सदृश प्यारा है और प्रसिद्ध है कि शास्त्रों में मूर्ति की उपासना व पूजन के निमित्त आज्ञा है और वह मूर्ति पाषाण, दारु व धातु इत्यादि की होती है और आदमी आप उनको बना लेते हैं और बहुत

भीति इत्यादि पर चिह्न खींचकर अथवा वेदी व पीठ बनाकर पूजा इत्यादि करते हैं और उसी के प्रभाव से अपने विश्वास के अनुरूप अपने वाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं। अब विचार करना चाहिये कि यह लीलानुकरण मूर्ति पहले तो ब्राह्मण बालक होते हैं, कि भगवत् व वेद के वचन से जन्म से ही भगवत्रूप हैं फिर उन्होंने अपना शृङ्गार भी भगवत् के सदृश बनाया तो जो कोई विश्वास करके उनका पूजन करेगा तो क्यों न अपने मनोरथ को पहुँचेगा, बरु दूसरी मूर्ति से तो विलम्ब करके मनोरथ सिद्ध होता है और इन लीलामूर्तियों से तो शीघ्र हृदय की निर्मलता व भगवत् की प्राप्ति होजाती है। इस हेतु कि अर्चामूर्ति आदि से भगवत् की प्राप्ति तब होती है कि पहले तो उस मूर्ति में अच्छे प्रकार मन लगे कि दूसरी ओर न जाय, दूसरे भगवच्चरित्रों का श्रवण कीर्तन व सत्संग होय, सो दूसरे मूर्ति शिलाआदि में ऐसा मन बड़ी प्रीति से कम लगता है कि जिसको दृढ़ स्नेह कहते हैं सो घुणाक्षरन्याय और श्रवण व कीर्तन व सत्संग यह खोजने से मिलता है और लीलानुकरण मूर्तिपूजन सेवन से वह सब बात एक जगह एकसमय प्राप्त हो जाती हैं। क्या अर्थ कि प्रत्यक्ष सुन्दरता और वस्त्रालंकार चमक दमक के कारण से प्रीति तो तुरन्त उत्पन्न होती है और भगवच्चरित्रों का कीर्तन, श्रवण और भगवत् भक्तों का सत्संग बिना खोजे प्राप्त रहता है, सिवाय इसके पूजन भगवत्मूर्ति का इस हेतु है कि उसके सहारे से मुख्य भगवत्मूर्ति के ध्यान में मन दृढ़ हो जाय। सो जब कि लीलानुकरण मूर्ति के अवलम्ब से मुख्य भगवत् की प्राप्ति होना बहुत शीघ्र निश्चय होय तो इस लीलानुकरण निष्ठा से और कौनसी मूर्ति व निष्ठा उत्तमतर है? इस हेतु बहुत उचित और अतिप्रयोजन होने वाली बात है कि भगवत् लीलानुकरण मूर्ति को निजमूर्ति भगवत् की जान करके मन विश्वासयुक्त करके पूजा करे, बिना संदेह अपने वाञ्छित अर्थ को पहुँच जायगा। कलियुग के महापापात्मालोगों के उद्धार के हेतु भगवत् ने सब कुछ उपाय सहज से सहज बनाया कि तुरन्त बेड़ा पार होजावे, पर हमारे लोगों की अभाग्यता को हजार धन्य है कि उन मूर्तियों को भगवत्रूप जानना और चरित्रों में चित्त लगाना तो एक ओर रहा, ढिठाई व बेविश्वासी इस प्रकार अधिक है कि जिसका वर्णन विस्तार का कारण है बरु वे कहें अच्छा बिना संदेह ऐसे महापापी विश्वास-हीन व ठीक नरक में जा पड़ेंगे और किसी प्रकार पापों से न छूटेंगे और जाने रहो कि मनुष्य का विश्वास ही मुख्य साधन है। जो अच्छा विश्वास हुआ तो उत्तमपद को गया जो अनिष्ट हुआ तो पाताल को पहुँच गया, क्योंकि वेद-शास्त्रों ने भगवत् को अच्छे व बुरे कर्मों के फल देने में कल्पवृक्ष के सदृश लिखा है, इस हेतु एक दृष्टान्त कल्पवृक्ष का लिखना उचित हुआ। कल्पवृक्ष का स्वभाव है कि वाञ्छित फल देता है, एक पथिक संयोगवश कल्पवृक्ष के नीचे पहुँचा और मनोरथ किया कि

ठंढी पवन चलती तो अच्छा था सो पवन ठंढी चलने लगी फिर शीतलजल से पूर्ण एक तड़ाग व एक हरे बाग की चाहना करी, वह भी प्राप्त हो गया फिर दिव्यवस्त्र, आभूषण, सामग्री भोगविलास, रागरंग व सुन्दरी नायिकाओं की चाहना हुई, वह भी सब प्राप्त हुये। जब उन नायिकाओं के साथ सुख व विलास में लीन हुआ तो यह चिन्तना हुई कि ऐसा न हो कि इनका मालिक दण्ड देने लगे, सो तुरन्त जूती पड़ने लगीं और शिर पिलपिला हो गया। इसी प्रकार भगवत् विश्वास के अनुसार सब फल देता है और गीताजी में भगवत् का वचन है कि निश्चय मन ही मनुष्यों को बन्ध और मोक्ष का कारण है। भगवत् का वचन है कि जो कोई जिस विश्वास से मन लगाता है वैसा ही फल उसको मिलता है। विश्वास ही मूल है यद्यपि कथा उन भक्तों की कि जो लीलानुकरण के प्रभाव करके परमपद को गये विस्तार करके लिखी जायँगी पर दो एक बात यहां भी लिखता हूँ। मीरमाधवजी जो भगवद्भक्त विख्यात हैं उनकी भक्ति का आरम्भ व कारण लीलानुकरण से हुआ। वृत्तान्त यह है कि अमीर कबीर थे व मजहब महम्मदी रखते थे। राह चलते मथुरा वृन्दावन में पहुँचे अपने मुन्शी से कि भगवत् उपासक था बड़ाई रासलीला की सुनकर देखने की चाह हुई। मुन्शी ने उनकी बड़ी प्रीति देखकर पूजा करना व मर्याद से बैठालना व बैठना यह सब ठहराकर रास करने वालों को बुलाया और अमीर ने प्रेम व मर्याद से सब भगवच्चरित्रों को देखा। मन और प्राण चाह करनेवाले वास्तव स्वरूप श्रीनन्दनन्दन महाराज के हो गये और माल व रुपया सब भगवत् के आगे भेंट कर दिया, पीछे घरबार संसार-व्यवहार त्याग करके पीछे कपड़े पोशाक सबको त्याग कर दिया। श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण कहते श्रीवृन्दावन की कुन्जन में अपने प्राणप्यारे को ढूँढ़ते फिरने लगे, अनुक्षण नाम जो भगवत् का मुख से निकलता था इस हेतु लोगों ने मीरमाधव नाम रख दिया और भगवद्भक्तों में गिना। उनकी काव्यरचना में बालचरित्र भगवत् के बहुत हैं, उसमें से एक कसीदे की पहली तुक फारसी में है सो यह है–ताके जे खुदरानी सखुन श्रीकृष्णगो श्रीकृष्णगो। बुगजारकब्र व मावो मन श्रीकृष्णगो श्रीकृष्णगो॥ अर्थ इसका यह है कि जब तक वचन बोलना तेरे आधीन है श्रीकृष्ण कहु श्रीकृष्ण कहु अभिमान व हम व हमारा यह सब छोड़ श्रीकृष्ण कहु श्रीकृष्ण कहु। थोड़े दिनों में भगवत् का रूप उनके हृदय में प्रकट हुआ और सिद्ध हो गये। उस रूप अनूप के रस में मत्त रहने लगे और श्रीमद्भागवत सुनने की इच्छा हुई, पर किसी ने मन्दिर में न जाने दिया। भगवत् ने एक अपने भक्त गोसाईं को सुनाने की आज्ञा दी। उन्होंने बड़े आदर से कथा सुनाना आरम्भ किया, एक बेर कथा कहते बहुत रात बीत गई और मीरमाधव मन्दिर में सो रहे। आधी रात को भूख लगी, भगवत् ने विचार किया कि आज मीरमाधव हमारे पाहुन हैं, बड़े सोच की बात है कि भूखे रहें। इस

हेतु अपने निज भोग के थाल में लड्डू व जलेबी और लोटे में जल दश बारह वर्ष के लड़के के स्वरूप से लेकर आये और कहा कि गोसाईंजी ने भेजा है । मीरमाधवजी ने लेकर खा लिया और सो रहे । प्रभात को थाल सोने का व लोटा न पाया तो पुजारी खोजने लगे । मीरमाधवजी के पास पड़ा हुआ देखकर पुजारियों ने अज्ञान से अच्छा मारा फिर जो भगवत्मन्दिर में गये तो सब वस्त्र भगवत् के टुकड़े टुकड़े पाये और भगवत्मूर्ति की भी चेष्टा अति उदास व क्रोधयुक्त देखी, तुरन्त गोसाईंजी के पास गये सब वृत्तान्त कहा । गोसाईंजी नंगे पाय दौड़ आये और मीरमाधवजी के चरणों में शिर रखकर बहुत विनय व प्रार्थना को किया, जब मीरमाधवजी ने पुजारियों का अपराध क्षमा किया तब भगवत् भी प्रसन्न हुये । शिक्षा हुई कि मेरे भक्त को मुझसे कम न समझा करें कथा के श्रोता लोगों को गोसाईंजी पर संदेह हुआ कि मुसल्मान को अपने पास बैठाकर कथा सुनाते हैं । एक दिन गोसाईंजी ने परीक्षा के हेतु श्रोताओं से पूछा कि कल कथा कहां तक हुई थी किसी ने कुछ न बतलाया, मीरमाधवजी ने कथा के आरम्भ से अन्त तक सब श्लोक और अर्थ और जो अक्षर गोसाईंजी के मुख से निकले थे सुना दिये, सब संदेह करनेवाले लज्जित हुये । एक बेर किसी राजा ने अतर श्रीविहारीजी को भेजा । मीरमाधवजी ने हरकारे से लेकर धरती पर डाल दिया सब मन्दिर के भीतर सुगन्ध छाय गई व विहारीजी का श्रीअङ्ग व वस्त्र अतर से तर हो गया, जैसे हरिदासजी का वृत्तान्त लिखा है वैसी ही बात हुई । दूसरी एक बात चन्दनामे डाकू की यह है कि वह ठगी व डाकामारी किया करता था । एक बड़े आदमी के यहां रासचरित्र होने का समाचार पाया और यह भी सुना कि लाख रुपये का जेवर व असबाब रास होने के समय इकट्ठा होगा । पीठा ठोंक पांच सौ आदमी हथियारबन्द के समेत आय पहुँचा और उसके आते ही रास में हलचल व शोर पड़ा, देखनेवाले अपना अपना जीव लेकर भाग गये । भगवत्स्वरूप जो रास में थे उन्होंने उस बड़े आदमी से पूछा कि क्या शोर गुल है ? उसने वृत्तान्त डाकू के आने का कहा । भगवत्मूर्ति ने कहा कि क्या डर है आने देव इसी कहने सुनने में थे कि डाकू सीधा बेडर निर्भय सिंहासन के समीप आ पहुँचा और चाहा था कि गहने व असवाब पर हाथ डाले आप भगवत्मूर्ति ने सिंहासन पर से उठकर और हाथ चन्दा का पकड़कर एक मुष्टिक मूँहपर मारी और कहा कि इतनी ढिठाई सो वयक्रम भगवतस्वरूपका दश बारह वर्ष से अधिक न था, पर वह पहलवान् डाकू मुष्टिक की चोट से ऐसा लोट गया कि लँगोट की भी सुधि न रही और उसके साथी ज्ञान हाथ से खोकर पांव से माथे तक चित्र की पुतली होगये । पीछे जब उस डाकू की मूर्च्छा जगी तो अपने हथियारों को भगवत् के आगे रखकर चरणकमल इस प्रीति व प्यार से पकड़ लिया कि फिर हृदय से न छोड़ा और सब त्यागकर भगवद्भक्त व परायण होगया । तीसरा और एक वृत्तान्त कि किसी बड़े आदमी ने

यमुनाजी के किनारे पर रासलीला कराई। काली के नाथने का जो चरित्र आरम्भ हुआ तो उसने लोगों से पूछा कि क्या भगवत्स्वरूप यमुना में कूदेंगे ? जो कमर कसते हैं यह बात भगवत्स्वरूप के भी कान में पड़ी और आप बोले कि हां और यह कहकर यमुनाजी में कूद पड़े और एक सांप ऐसे भारी को जो दश बीस आदमी से न उठ सके पकड़ लाये। उस घड़ी उस बड़े आदमी ने भगवत्स्वरूप का प्रकाश व झलक ऐसा देखा कि आंखें चकाचौंध के औंध गईं और बेसुध होकर गिर पड़ा। पीछे जब शरीर का ज्ञान हुआ तो कृष्णचरण का ध्यान हृदय में धरके सब त्याग दिया, भगवत्परायण होगया। काशीजी में पाठकजी परमभक्त रघुनन्दन महाराज के हुये, भगवत् से साक्षात् दर्शनों की वाञ्छा की शिक्षा हुई की रामलीला में दशहरे के दिन भरतमिलापमें दर्शन होंगे और परीक्षा इसकी तब जानना कि जब कोई वस्तु हम आप तुमसे माँगें, तो जिसदिन भरतमिलाप का दिन आया पाठकजी भी देखने गये थे। मिलाप होने पीछे जिस समय भरतजी आंखों से आनन्द व प्रेम का जल बरसाते हुये श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणारविन्द पकड़ रहे थे उस समय उस राम-मूर्ति ने पाठकजी को बुलाया, लोगों के ढूँढ़ने से आये, भगवत्स्वरूप ने आज्ञा की कि कुछ मिठाई प्रसाद के निमित्त और थोड़ा जल लावो। पाठकजी ने तुरन्त प्राप्त किया भगवत् ने थोड़ा भोग लगाकर और जल पीकर पाठकजी को वह महाप्रसाद दिया और ऐसी झलक उस मनोहरमूर्ति की कि जैसी शास्त्रों में लिखी है पाठकजी ने देखी कि बेसुध हो गये। इसी प्रकार की कितनी कथाएँ हैं कि विस्तार के भय से नहीं लिखते और दो चार बेर रामलीलामें कितने मनुष्य ऐसे देखने में आये कि अत्यन्त प्रेम करके अचेत व बेसुध हो जाते थे और कितने मनुष्य ऐसे देखने में आये कि प्रेम से रासलीला में अत्यन्त बेसुध बुध हो जाते थे और कितने ऐसे देखने में आये कि पहले केवल देखने के निमित्त सांझी बनाने रामलीला के हुये, पीछे उसी प्रभाव से निन्दित पथ छोड़कर कुछ भगवत् की ओर सम्मुख हो गये। क्या अच्छी बात हो कि यह मेरा मन पापी अपने चञ्चल स्वभाव को छोड़कर इसी लीला-नुकरण के अवलम्ब से भगवत् के सम्मुख हो और बड़ा आश्चर्य यह है कि संसार के सहस्रों प्रकार के दुःख प्रतिदिन देखता है पर कभी उनका भय करके भगवच्चरणों में नहीं लगता। जो सुख और धन इत्यादिक आपसे आप प्राप्त होनेवाले हैं उनके हेतु सहस्रों प्रकार के उपाय और अधर्म व मिथ्या बोलना इत्यादि करता है और जो भगवत् कि करोड़ों जन्मों तक नहीं मिलता उससे ऐसा असावधान व विमुख कि निर्मूल उसका चिन्तन भी नहीं करता। वाह रे मन तेरी बुद्धि व चतुराई अरे अभागे ! अब भी चेत और उस समाज और शोभा को कि जो ग्रन्थ के मङ्गला-चरण में कह आये हैं सदा चिन्तन किया करता कि यह जन्म-मरण की अपार नदी सूखजाती और दुःखसुख संसार का छूटकर परम आनन्दरूप हो जाता।

दो० नीलसरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम।
लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि कोटि शत काम ॥

कथा अलीभगवान् की ॥

अलीभगवान् पहले रघुनन्दनस्वामी में निष्ठा रखते थे पर वृन्दावन में आकर उनकी कुछ और ही गति होगई अर्थात् जब रासचरित्र में भगवत् का मनमोहनी स्वरूप देखा तो वह छविमाधुरी के प्रेम से अपनी इष्ट उपासना सब भूलगये और श्रीप्रिया-प्रियतम के रूप अनूप में मग्न होके उसी ओर के होरहे। बिहारीजी का चरित्र और रासलीला के चिन्तन और पूजा में मन लग गया और वही स्वरूप हृदय में बस गया। उनके गुरु ने जो यह वृत्तान्त सुना तो वृन्दावन में आये अलीभगवान् किसी वन में चले गये और वहां गुरु के दर्शन हुये। दण्डवत् करके विनय किया कि महाराज! मेरे गुरु और स्वामी आप हैं पर बरबस व्रजनागरजी ने मेरे मन को अपनी ओर लगालिया है, गुरु ने जो दृढ़ प्रीति देखी तो प्रसन्न हुये और श्रीकृष्ण-स्वामी के चरित्रों और प्रेम का उपदेश करके चले आये। जाने रहो कि गुरु के आने का अभिप्राय यह था कि अलीभगवान् पहले तो श्रीरामउपासक था अब रासलीला को देखकर कृष्णउपासक हो गया। कल्ह को किसी और मत मतान्तरवाले के पास बैठेगा तो उसी ओर हो जायगा। इसमें किसी ओर का भी न होगा और दोनों लोक से जाता रहेगा, काहे से कि स्वरूप भक्ति का शास्त्रों में यह लिखा है कि मन की वृत्ति अचल एक ओर लगी रहे सो जब अलीभगवान् के मन को दृढ़ देखा तो प्रसन्न हुए।

कथा विपुलबिट्ठल की ॥

विपुलबिट्ठलजी स्वामी हरिदासजी के चेले निधिवन में भगवद्भक्त माधुर्य उपासक हुये। जब स्वामी हरिदासजी भगवत् के परमपद को गये तो उनके चरण-कमलों के वियोग से अत्यन्त शोकयुक्त रहा करते। एकबेर रासलीला में हरिभक्तों ने उनको भी बुलाया। हरिभक्तों की आज्ञा उल्लङ्घन न कर सके। जब वहाँ गये और प्रिया-प्रियतम के स्वरूप का देखा तो भगवत् को नृत्य और कीर्तन और भाव मन में समाय गया और निज भगवत्स्वरूप में मग्न और तद्रूप होगये। स्वामी हरिदासजी के दर्शन उसी दशा में हुये और परम आनन्द द्विगुण हुआ फिर तो भगवत् के छविसमुद्र में ऐसी डुबुकियां लगाईं कि फिर न निकल सके उसी रूप और भाव में मिलकर भगवत् के नित्य विहार में जा मिले।

कथा रामराय की ॥

रामराय राठौर बेटा राजा खेम्हाल के परमभक्त हुये। भगवद्भक्ति और भाव को ऐसा देश में प्रवृत्त किया, सबको भक्ति सहज होगई। जिस प्रकार शिवजी महाराज ने इस परमधर्म को संसार में फैलाया और आप आचरण किया इसी

प्रकार रामरायजी हुये, जो लोग भगवद्भक्ति से विमुख थे उनका त्याग किया और जिनको योग्यउपदेश के जाना उनको उपदेश कराकर बड़ी पदवी पर किया। प्रताप राजा भरत के सदृश था कि जिनका बेटा लड़काईं में व्याघ्र का कान पकड़कर जंगल से लेआया था, अर्थात् उस समय में और कोई राजा उनके दृष्टान्त के योग्य न था और किस प्रकार उनके भाव की बराबरी किसी से होसके कि अपनी लड़की को गन्धर्व विवाहको रीति से भगवत्मूर्ति के अर्पण कर दिया। वृत्तान्त यह है कि शरद्पूनों अर्थात् जिस रात व्रजचन्द्र महाराज ने रासचरित्र किया था राजा ने समाज रासलीला का कराया। भगवत् के स्वरूप, चरित्र, राग-रङ्ग और नृत्य को देखकर प्रेम में विह्वल होगये। एक ब्राह्मण जो मन्त्री था उससे पूछा कि भगवत् को क्या वस्तु भेंट करनी चाहिये ? ब्राह्मण ने कहा जो वस्तु आपको प्यारी हो राजा चुप होगया, विचार करके बोला म्हांको म्हांकी डावरी प्यारी छे, अर्थात् हमको अपनी लड़की प्यारी है। यह कहकर महलमें गये और लड़की को शृङ्गार आभूषण आदि से शृङ्गार करके लेआये और गान्धर्वी रीति से भेट किया। पीछे धन व असबाब इतना दिया कि जीवन पर्यन्त सैकड़ों वर्ष वह लड़की को दुःख न होय, नेवछावर करके भक्तिभाव का अन्त इस संसार में सूर्य के सदृश प्रकाशित कर दिया।

कथा खड्गसेन की ॥

खड्गसेनजी जाति कायस्थ रहनेवाले ग्वालियर, भगवद्भक्त रासनिष्ठा और प्रेमी हुये। पदरचना बहुत ललित करते थे ब्रजगोपिका व ब्रजग्वालों के मा बाप का नाम ग्रन्थ से ढूंढ़ ढूंढ़कर एक ग्रन्थ बनाया और दानलीला और दीपमालिका का चरित्र ऐसा ललित बनाया कि जिसके पढ़ने सुनने से भगवत् में निश्चय करके प्रीति हो जाती। सम्पूर्ण अवस्था को श्रीव्रजचन्द्र महाराज के और उनके सखा सखियों के चरित्रों में व्यतीत किया और श्रीनन्दनन्दन स्वामी के चरणकमलों में ऐसी प्रीति और लगन थी कि सिवाय उनके चरित्रों के और कोई बात नहीं रुचती थी और रासलीला और दूसरे चरित्रों का समाज उत्साह सदा रहा करता था, पर शरदपूनों को यह प्रण दृढ़ था कि बहुत द्रव्य लगा करके रासलीला कराया करते थे। एक बेर प्रिया-प्रियतम के रासविलास की दशा में हँसी और खेल व राग-नृत्य और परस्पर देखना व मुसक्याना व सकुचाना और श्रीलाड़िलीजी का मान और आप श्रीलालजी का मनाना देखकर ऐसे बेसुध व तदाकार होगये कि देह को उस रास-लीला के प्रियाप्रियतम के नेवछावर करके प्राण मुख्य रसरास और नित्य विहार में प्राप्त किये और प्रेम की दशा और रासनिष्ठा की महिमा कि उसके प्रभाव करके नित्य रासविलास और भगवत्स्वरूप प्राप्त होता है लोक में प्रकट करके भगवद्भक्ति और भाव को शिक्षा किया।

कथा वल्लभ की ॥

वल्लभजी चेले नारायणभट्टजी के ऐसे भक्त और प्रेमी हुये कि जिन्होंने उस व्रजवल्लभ महाराज परमानन्दघन को जो आनन्द का भी आनन्द और सुख का भी सुख है रामचरित्र में नृत्य और कीर्तन से और अपनी आँखों के हाव भाव और मन्द मुसक्यान से आनन्द और सुख दिया अर्थात् रासचरित्र में कभी ललिता और कभी विशाखा का रूप बना करते और ऐसे प्रेम और प्रीति से भगवत् को रिझाया करते कि तद्रूप ललिता व विशाखा के होजाते। वृन्दावन वास करके अपने भक्ति-भाव और उदारता व प्रभाव से लोगों का उद्धार किया और भगवत् के महोत्साह करके लोगों को परमआनन्द दिया।

कथा नाथभट्ट की ॥

नाथभट्टजी फणी अर्थात् शेषजी के वंश में परमभक्त हुए। फणीवंशका यह अर्थ है कि बलदेवजी महाराज शेष का अवतार हुये और बलदेवजी का अवतार नित्यानन्दजी सो नित्यानन्दजी के वंश में जो होय उसको फणीवंश अर्थात् शेषजी का वंश कहना योग्य है, सो नित्यानन्दजीके चेले सनातनजी और सनातनजी के कृष्णदास, कृष्णदासजी के नारायणभट्ट और नारायणभट्ट के चेले व पुत्र गोपालभट्ट और गोपालभट्ट के पुत्र नाथभट्ट जो हुए ऊँचेगाँव में रहते थे। तन्त्रशास्त्र व वेद पुराण और सब शास्त्रों को विचारकर उनका जो सार व अभिप्राय भगवद्भक्ति और प्रेम है उसको अपने मन में दृढ़ स्थित किया। रूप और सनातन व जीवगोसाईं व नारायणभट्ट ने जो कुछ अपनी काव्यरचना में भगवत् का माधुर्य व शृङ्गाररस वर्णन किया है उसको अपना सर्वस्व जानकर उसके अनुसार आचरण किया और शृङ्गार वा माधुर्य भाव के स्वरूप हुये। रसिकविहारी महाराज की रासलीला आनन्द व विश्वास से बनाते और रासनिष्ठा में परम प्रेम और निश्चय था, विमल हृदय व प्रिय वचन बोलने में एकही थे व रास उपासना के भक्तों में मुख्य अर्थात् राजा हुये और जाने रहो कि रासनिष्ठा नाथजी के घराने में प्राचीन इस काल-पर्यन्त संगृहीत बनी है।

दशवीं निष्ठा ॥

दया व अहिंसा के वर्णन में कथा छः भक्तों की है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमल के स्वस्तिक अर्थात् सथिये की रेखा को दण्डवत् करके धन्वन्तरि अवतार को दण्डवत् करता हूँ कि जगत् के उद्धार के हेतु समुद्र में अवतार धारण करके फिर इस संसार में प्रकट हुये, दया भगवत् का स्वरूप है। महाभारत में लिखा है कि सब धर्मों में दया परमधर्म है, जबतक दया नहीं तबतक कोई धर्म नहीं गिनेजाते हैं। भागवत व स्कन्दपुराण में दया के गुण वर्णन करके अन्त में कहा है कि जिसको दया है उसने सब धर्म कर लिये। नारदजी से भगवत्

ने सब धर्म वैष्णवों के वर्णन करके कहा है कि दया व भजन व साधुसेवा सब धर्मों में मुख्यतर है और उनमें भी दया का स्वरूप यह है कि दूसरे किसी जीव के दुःख देखकर हृदय द्रवीभूत और दुःखित होना और वह दुःख व द्रव्य बिना कारण व सम्बन्ध के हो और जब तक उसका दुःख दूर न हो लेवे तब तक द्विगुण दुःख उस दयावान् को रहे। उस दया के दो प्रकार हैं, एक संसारी दुःख देखकर किसी का अपने को दुःख व दया होना और उसके दूर करने का उपाय मन, कर्म व वचन से करना और क्रोध को न आना व मधुरवचन बोलना और किसी को दुःख न देना और उदारता व दातव्य और किसी का न्यून शोचना, धरती को देखते चलना इसीप्रकार और दूसरे कार्य सब कि जिससे किसी को दुःख न होय अथवा किसी का दुःख दूर होता होय यह सब अङ्ग दया के हैं। दूसरा पारमार्थिक दया अर्थात् पारलौकिक दुःख देखकर दया होना और वह यह है कि अनादि काल से जो जीव जन्म-मृत्यु नरकादि अनेक भाँति के दुःख व यातना में फँसा है उन दुःखों को देखकर दया होना और जिस प्रकार से हो सके भगवत् के सम्मुख उस जीव को करके जन्म-मरण के दुःखों से छुड़ाकर कृतार्थ करदेना। सोई दोनों प्रकार में पहिला प्रकार तो साधक को होता है और सिद्ध और भगवद्भक्तों और विरक्तों को दोनों प्रकार का शास्त्रों में महिमा दान व कृपा आदि एक अंग दया के इस भाँति लिखे हैं कि उनमें से किसी एक पर दृढ़ होजाय तो उसके सहारे से भगवत् मिल जाता है। जो कोई दया पर दृढ़ है उसकी महिमा किससे वर्णन हो सकती है। एक साहूकार कालके फेर करके दरिद्री होगया, चार यज्ञ उसने किये थे, किसी ऋषीश्वर के उपदेश से एक यज्ञ के फल लेने को धर्मराज के पास चला। एक काल के भोजन की सामग्री पास थी उसकी रसोई बनाकर जब खाने को बैठा तब एक कुतिया उसी घड़ी की जनी हुई भूख से विकल आई। साहूकार को दया उत्पन्न हुई, चौथाई भोजन उसको दे दिया पर भूख न गई तब दूसरी चौथाई दी फिर भी वही दशा रही फिर चार बेर में सब भोजन देदिया और पानी पिला दिया, संतुष्ट होकर चली गई और साहूकार भूखा प्यासा धर्मराज के पास पहुँचा। हिसाब के समय धर्मराज ने कहा कि पांचयज्ञ में एक यज्ञ अक्षय है जिसका कभी नाश न हो, तू किस का फल चाहता है? साहूकार ने चकित होकर विनय किया कि महाराज! मैंने चार यज्ञ किये हैं पांचवां यज्ञ कौनसा है? धर्मराज ने कहा कि पांचवाँ अक्षय यज्ञ वह है कि तूने कुतिया पर दया करके अपना सब भोजन देदिया। अभिप्राय यह है कि थोड़ीसी दया यज्ञ के फल को देती है कोई का सिद्धान्त यह है कि जो दया होगी तो जीवघात करने से आपसे आप किनारा करेगा और कोई यह कहते हैं कि दया अहिंसा का एक अङ्ग है और गीताजी में भगवत् ने अहिंसाधर्म अलग गिना और दया अलग सो, इनके विरोध का निर्णय व वाद लिखना सब व्यर्थ है। शास्त्र में जो

दया व अहिंसा के अङ्ग सब सुनने में आये तो बराबर हैं, इसहेतु दोनों को वट व वटबीज न्याय समझलेना चाहिये। सो यह अहिंसा धर्म वह है कि जिसके वर्णन में शास्त्रों ने यह कहा है कि अहिंसा सब धर्मोंका नायक है सोरह अध्याय भगवत्गीता में भगवत् ने सब धर्मों से प्रथम अहिंसा को वर्णन किया और इसी प्रकार दशवें अध्याय में पतञ्जलि महाराज ऋषीश्वर ने जहां आठसिद्धि वर्णन कीं तहाँ सबसे प्रथम अहिंसासिद्धि लिखी है, इस कारण से कि जो अहिंसासिद्धि सिद्धि होजावे तो अन्य सिद्धि आप से आप प्राप्त होजावें, किस कारण से कि जब अहिंसासिद्धि की ओर मन दृढ़ हुआ तो सब जीव भगवत्रूप विचार में आवेंगे और जब भगवत्को सब जगह प्राप्त देखा तो भगवत् मिलगया और जब भगवत् मिला तो सब कुछ मिल गया। जाने रहो कि अहिंसा आदि आठ सिद्धि पतञ्जलि में भगवत् की प्राप्ति होने के हेतु हैं और अणिमादिक आठ सिद्धि संसार के अर्थ उनसे अलग ठग व डाकू भगवत्प्राप्ति की राह के हैं। अरे मन ! विचार कर कि यह समय फिर हाथ नहीं आवेगा सो अब भी श्रीकृष्णस्वामी के चरणों में न लगा तो फिर कहीं ठिकाना नहीं और विचारकर कि हिरण्यकशिपु व रावण व सहस्रबाहु आदिक सैकड़ों ऐसे २ होगये कि जिन्होंने यमराज को भी अपने वश में करलिया था जब कि वे सब मृत्यु से न बचे तो तेरीं क्या गिनती है ? जिनके साथ तू प्रीति करके अपना जानता है वे केवल इस शरीर और अपने सुख के साथी हैं। संसारसमुद्र के उतारने में कोई तेरा सहाय करनेवाला नहीं, फिर तू उनके हेतु क्यों अपने परलोक का नाश करता है ? अब अपनी हानि-लाभ को समझ और इस समाज के चिन्तनमें रहाकर कि दोनों लोक तेरे बनें। जिस समय जनकपुरवासियों के करोड़ों जन्मों के जप, तप, पुण्य के फल उदय भये और राजा जनक के ज्ञान वैराग्य के वृक्ष फले अर्थात् श्रीरघुनन्दन स्वामी शोभाधाम ने उन लाखों राजाओं की सभा में कि जो सुमेर व कैलास को राई के दाने के सदृश उठा सकते थे और उस राजमण्डप में कि जिसके द्वार व दीवार सब स्वर्णमय भाँति २ के जवाहिरात से जड़े थे और चँदोवा जरी का कि जिसमें झालरें मोतियों की लगी थीं छाईथीं शिवजी का धन्वा तृण के सदृश तोड़कर डाल दिया और धरती आकाश से फूलों की वर्षा व जय जयकार व नेवछावर व बधाव बजना आरम्भ हुआ। उस समय अखिल ब्रह्माण्डेश्वरी जनकनन्दिनी जयमाला पहिराने को चलीं। जगज्जननी की शोभा यह मतिमन्द तो क्या लिखसकता है, इस ध्यान में शारदा गूँगी और शेषजी बिना जीभ के हैं। सखियों के समाज में कि वह सब शोभा व छविकी मूर्ति थीं, धीरे धीरे बड़े उत्साह और उमंग से मन परमानन्द से भराहुआ गुरुजन लोगों की लज्जासे लजाती हुई, शोभाधाम महाराज के सम्मुख पहुँचीं और कहने से सखी सहेलियों के दोनों हस्तकमल उठाकर जयमाला दशरथनन्दन महाराज के गले में पहिराई। जिस समय

दोनों का मुख चन्द्रमा एक से एक बराबर हुआ सब ओर मन एकाग्र होकर परस्पर रूप अनूप देखने में नयन एक से एक का मिलकर रह गये, उस समय का समाज और सामां देखकर देवता आदि तो अपने २ स्थान पर भीत के चित्र से होगये और जनक आदि को महाआनन्द व प्रेम से बेसुधिता होगई। दशरथनन्दन के श्यामसुन्दर कपोलों पर कुण्डल के मोतियों की झलक ऐसी छवि देती थी कि बरबस मन हाथ से जाता था और ऐसा ही भाल पर केशर व गोरोचन का तिलक विराजमान, शिरपर जवाहिरात जड़ा किरीट मुकुट, आँखें अरसीली व रसीली की चञ्चल चितवन, गले में कण्ठी व फूलों की माला, बागा धानी जरी का शोभायमान कमर कसे हुये, हैकल जड़ाऊ दोनों ओर पड़े हुये, एक ओर तरकस शोभित है और दूसरी ओर कमान व जनकदुलारी के दोनों हाथ माला लिये कांधे पर आये हुये और मन्द मुसक्यान दोनों सम्मुख परस्पर विराजमान हैं।

कथा शिवि की ॥

राजा शिवि की कथा पुराणों में और विशेष करके महाभारत में लिखी है कि दया, दान व शरण देनेवाले और धर्मात्मा हुये, अश्वमेधादिक बहुत यज्ञ करके ब्राह्मणों को हरएक प्रकार के दान दिये। भगवत्प्रेरणा करके राजाइन्द्र को दया व शरणागत वत्सलता की परीक्षा की चाहना हुई। अग्नि देवता को कबूतर बनाकर आप बाज का रूप धरके आया। कबूतर ने बाज के भयसे काँपता राजा के दामन में शरण ली व बाज से व राजा से बड़ा वाद हुआ बाज कहे कि हमारा आहार छीनते हो, राजा कहे कि शरण में आये को न रक्षा करना अधर्म है। नितान्त अपने शरीर के मांस देनेपर बाज मान रहा, जब मांस पलरेपर काटके धरा तो कबूतर का पलरा धरती न छोड़े मांस काट-काट धरते-धरते नहीं बराबर हुआ तब राजा शिर काटकर धरने लगा तब दोनों देवता प्रकट हुये वरदान देकर स्तुति की व शरीर जैसा था वैसा करके चले गये। भगवद्भक्त भी भगवत्रूप हैं जो कुछ करें आश्चर्य नहीं।

कथा राजा मयूरध्वज की ॥

राजा मयूरध्वज और उनकी धर्मपत्नी और ताम्रध्वज उनका पुत्र ऐसे परम-भक्त दयावान् हुये कि भगवत् ने घर बैठे दर्शन दिया और परीक्षा से दृढ़ देखा। वृत्तान्त यह है कि जब राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया और अर्जुन की रक्षा के निमित्त साथ करके घोड़ा यज्ञ का छोड़ा तो उसी समय राजा मयूरध्वज ने भी यज्ञ आरम्भ किया था व ताम्रध्वज घोड़े के साथ था। राहमें दोनों का भटभेरा हुआ, ताम्रध्वज ने उस अर्जुन को कि जिसने महाभारत में विजय को पाया था और उन श्रीकृष्ण महाराज को कि शुद्ध सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म हैं और जिनके नाम की कृपा से जय का नाम भी जय है, जीत के घोड़े को बल से छीन लिया। भक्तानुकूल

महाराज ने देखा कि यहां दोनों भक्त हैं, एक को जय दी जाय तो दूसरे की अभिलाषा भङ्ग होगी, इसहेतु परीक्षा के निमित्त आप वृद्ध ब्राह्मण बनि और अर्जुन को लड़के का रूप बनाकर राजा मयूरध्वज के द्वारपर गये। राजा यज्ञशाला में था दण्डवत् करके आदर व विनयपूर्वक पूछा कि आगमन का हेतु क्या है? ब्राह्मण ने कहा कि जंगल में एक व्याघ्र है उसने न इस बालक के खाने की इच्छा की, बहुत मैंने कहा कि इसके बदले हमको खा ले पर उसने न माना, कहा कि तू बूढ़ा है तेरा मांस मेरे काम का नहीं। नितान्त बड़ी प्रार्थना व रोदन करने से यह ठहरा कि जो राजा का आधा शरीर ला दे तो इस बालक को छोड़ देवेंगे। इस हेतु तुम्हारे पास आया हूँ जो बन सके तो इस बालक की रक्षा करो। राजा को बड़ी दया आयी और कहा कि निश्चय यह शरीर एकदिन जानेवाला है, ऐसे काम में आवे तो इससे अच्छा क्या है? ब्राह्मण ने कहा कि एक वचन व्याघ्र का यह भी है कि जिस आरे से राजा का शरीर चीरा जाय वह आरा एक ओर राजा के बड़े बेटेके हाथ में होय और दूसरी ओर राजा की स्त्री के हाथ में होय और किसी प्रकार का किसी को शोक व दुःख न हो। राजा ने इस बात को भी अङ्गीकार किया। ताम्रध्वज ने ब्राह्मण से कहा कि शास्त्र के मत से बेटा भी बापका रूप है, जो मेरा आधा शरीर लिया जाय तो अच्छी बात है। ब्राह्मण ने कहा कि तू राजा नहीं फिर राजा की स्त्री ने कहा कि मैं भी राजा की अर्द्धाङ्गी हूं जो राजा के आधे शरीरके बदले मुझको ले जावे तो व्याघ्र की और अधिक सन्तुष्टता होय। ब्राह्मण ने कहा कि तू स्त्री है राजा नहीं। फिर तो ब्राह्मण ने ताम्रध्वज को राजा के सामने इस कारण कि परस्पर देखकर मोह उत्पन्न होजाय व पीठ पीछे स्त्री को खड़ा किया और दोनों आरा राजा के शिर पर रखकर खींचने लगे जब आरा राजा की नाक तक पहुँचा तो वामनेत्र से राजा के पानी निकला। ब्राह्मण ने कहा बस, यह शरीर मेरे कार्य के योग्य नहीं कि राजा दुःखित होकर देता है। राजा ने विनय किया कि महाराज! कृपा करो क्रोध न करिये, जिस ओर की आंख से पानी निकला है उस ओर के शरीर को यह दुःख है कि मैं बड़ापापी हूँ कि किसी काम में न आया। दाहिना अँग बड़ा बड़भागी है कि ब्राह्मण के काम आया। भगवत् करुणासिन्धु इस वचन के सुनते ही भक्ति और विश्वास से अत्यन्त प्रसन्न हुये कि प्रेम में विह्वल हो गये और राजा को आरे के नीचे से उठाकर छाती से लगा लिया और निज रूप से राजा को दर्शन दिया। भगवत् के स्पर्श होते ही राजा के शिर का घाव अच्छा हो गया और भगवत् ने कहा कि तुम्हारी धर्मनिष्ठा से बहुत प्रसन्न हूँ जो चाहना हो सो कहो, पूर्ण करूँगा। राजा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि हे करुणासिन्धु, महाराज! आपने अनुग्रह किया तो और कौन पदार्थ अब रह गया जो माँगूं? केवल चरणकमलों की प्रीति चाहता हूँ और एक प्रार्थना यह है कि कलिकाल आगे पर आने वाला है सो अब

ऐसी परीक्षाओं से भक्त बचे रहें। भगवत् ने अङ्गीकार किया और फिर अर्जुन और राजा का भेंट मिलाप कराकर मेल करा दिया। राजा ने बहुत हर्ष से घोड़ा फेर दिया। इस चरित्र से भगवत् को कुछ अर्जुन का गर्व दूर करना प्रयोजन था सो भी हो गया।

कथा भवनजी की ॥

भवन राजपूत चौहान के राना सरकार में दो लाख रुपया के उत्तम पदवीवाले राजसेवक और भगवद्भक्त दयावान् और साधुसेवी हुये। एक बेर राना के साथ शिकार में एक हरिणी के पीछे घोड़ा डाला और उसको तलवार से मारा वह गर्भ से थी बच्चे सहित दो टुकड़े हो गई। भवन को बड़ी दया और लज्जा हुई मन से कहने लगे कि प्रकट में तो मैं ऐसा कि भगवद्भक्तों में गिना जाता हूँ और आचरण यह कि जो भगवद्विमुख भी न करे। उसी समय प्रण किया कि लोहे की तलवार रखनी प्रयोजन नहीं, सो एक तलवार काठ की और मूठ उसकी लोहे की बनवा ली। जब कभी राना के दरबार में जाते उसी तलवार को साथ लेजाते। एक पट्टीदार भाई को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, राना से कह दिया। राना को विश्वास न आया, उसने सौगन्द खाकर कहा तब भी राना ने इसके निर्णय करने में एक वर्ष बिताया। जब उस चुगुलीखोर ने यह हठ किया कि जो झूठ ठहरे तो मुझको बध का दण्ड दिया जाय तब एक जगह सभा की और सब उत्तम राजसेवक इकट्ठे हुये। पहिले राना ने अपनी तलवार निकालकर लोगों को दिखलाया फिर बारी के साथ सबकी तलवार देखी, जब बारी भवन महाराज की पहुँची तब तलवार निकालकर यह कहा चाहते थे कि जो चाहो सो करो तलवार मेरी दारु अर्थात् काठ की है, पर भगवत् इच्छा से यह वचन मुख से निकला कि सार अर्थात् फौलाद की है। यह कहकर तलवार को मियान से खींचा और ऐसी निकली कि मानों हजार बिजली एक बेर बादल से निकलीं, उजेरी व तड़प से सबकी आंखें बन्द होगईं। राना ने कहा कि मारो चुगुल अभागे के सिर पर और यह कहकर उसके बध की इच्छा की। भवन ने विनय किया कि इसने कुछ मिथ्या नहीं कहा है भगवत् की इच्छा से यह तलवार फौलाद की होगई है नहीं तो वास्तव करके लकड़ी की थी। राना को भक्ति का विश्वास हुआ और चाकरी के परिश्रम से छुट्टी करके पट्टा जागीर का सदाकाल का लिख दिया और बिनती की कि जो दर्शन देनेको आया करो तो मेरा निस्तार है। जाने रहो कुछ आश्चर्य नहीं जो काठकी तलवार को भगवत् ने फौलादी करदी, किस हेतु कि भगवद्भक्तों की इच्छा व वचन तलवार से अधिक है कि पापियों के पापकी सेना को बध करके दृढ़ राजभक्ति देश को कृपा करके दे देते हैं। जो उनके मुख से एक लकड़ी के निमित्त वचन फौलाद निकल गया और उसी प्रकार वह हो गया तो क्या आश्चर्य है ?

कथा रांका की ॥

ये रांका परमभक्त भगवत् के जाति के कुम्हार हुये, जो कुछ अपनी जातिवृत्ति से उत्पन्न करते सो सब हरिभक्तों की सेवा में लगा देते। एक बेर कच्चे बर्तनों का आँवाँ बनाकर तैयार किया और किसी कारण से दिन में आग न डाली। रात के समय एक बिलाई ने बच्चे दिये और एक कच्चे बर्तन में रखकर चली गई। रांकाजी को यह बात मालूम न हुई प्रभात को आग लगा दी, जब आग ने अच्छा प्रकाश व बल किया तब यह बात जानी विकल होकर बच्चोंके निकालनेके उपाय में लगे पर कुछ न होसका, अधिक दुःख व शोक हुआ। उस रोदन करने के समय सिवाय एक भगवत् के और कोई रक्षा करनेवाला न सूझा। जाने रहो कि जो रांकाजी का सब घर जल जाता अथवा उनके प्राणों को संकट कोई आता तो भगवत् से कभी न कुछ कहते, किस हेतु कि जब भगवद्भक्त अपने स्वामी से मुक्ति तक की याचना नहीं करते दूसरी बातें तुच्छकी कब चाहना करते हैं और बिना मांगे जांचे उनकी इच्छा सब पूर्ण हो जाती हैं। भगवत् से मांगने का प्रयोजन नहीं। इस लिखने का प्रयोजन यह है कि भगवद्भक्तों की दया और करुणा पर दृष्टि करना चाहिये कि एक तुच्छ जीव का दुःख नहीं सह सकते और विकलताई की अवस्था में जो काम कभी न किया सो भी कर बैठते हैं। जब भगवत् ने विकलदशा अपने भक्त की देखी तो यह चरित्र किया कि सब आँवाँ पक गया पर वह बर्तन जिसमें बच्चे थे कच्चा रख दिया। अग्नि की उष्णता भी न पहुँची। रांकाजी उन बच्चों को कुशल देखकर तनु में न समाये और भगवत् को अतिप्रेम से दण्डवत् प्रणाम किया तब से कुम्हारों में यह रीति है कि जब आँवाँ तैयार हो उसी दिन आग लगा देते हैं।

कथा केवलराम की ॥

केवलरामजी ऐसे परमभक्त और भागवतधर्म के प्रवृत्त करनेवाले हुये कि जिन लोगों ने कहीं भक्ति और भगवत् और गुरु और भक्तों के नाम को भी नहीं जाना था ऐसे लोगों को पवित्र करके भगवत् में लगा दिया। दुःख, सुख मित्र, शत्रु से अलग और तिलकमाला, नवधा भक्ति के वशीभूत बड़े दृढ़ थे। भगवत् के चरणों में प्रीति और भक्ति निष्काम हुई और लोगों पर दया और कृपा बिना कारण सबके घर पर जाकर किया करते थे कि श्रीकृष्णस्वामी की सेवा और नाम में मन लगाओ। यह दान हमको देव और भागवतधर्म उनको समझाया करते, जहां कहीं दश बीस साधु देखते उनको शालग्रामजी और भगवन्मूर्ति अपने पास से देकर पूजा और सेवा की रीति उपदेश किया करते। एक बेर बनजारे ने अपने बैल पर कोड़ा मारा, स्वामीजी बेसुध व विकल होकर धरती पर गिर पड़े। लोगों ने दौड़कर उठाया जो शरीर पर निगाह किया तो साठ कोड़े की मार का उपड़ा हुआ साफ दिखाई पड़ा सबको आश्चर्य हुआ कि यह रीति दया की जाने किसी ने सुनी होगी।

कथा हरिव्यास की ॥

हरिव्यासजी ऐसे भगवद्भक्त हुये के देवताओं को अपना चेला करके भगवत् का भक्त कर दिया। भगवद्भक्तों से ऐसी प्रीति थी कि कभी उनसे अलग नहीं होते और जिस प्रकार राजा जनक ऋषीश्वरों के सत्संग और जमावड़ी में रहा करते थे इसी प्रकार हरिव्यासजी रहा करते। साधुओं की सेवा करनेवाले ऐसे हुये कि संसार में कदाचित् कोई हुआ हो, सिवाय भगवत् और भक्तों के चरित्र से दूसरी ओर मन नहीं देते। एकबेर चरथावल ग्राम में हरा बाग देखके टिके और इच्छा थी कि भगवत् की सेवा-पूजा करके भगवत्प्रसाद बनावेंगे। उसी बाग में एक दुर्गा का मन्दिर था, किसी ने वहां बकरा मारा। हरिव्यासजी को दयालुता करके कि स्वभाव हरिभक्तों का है बहुत करुणा आई और मन को व्यथा हुई। भूखे प्यासे भजन करते रहे। दुर्गा महारानी भगवद्भक्तों के दुःख को न सह सकीं, साक्षात् होकर हरिव्यासजी से कहा कि भगवत्प्रसाद करें। हरिव्यासजी ने उत्तर दिया कि जहां ऐसा अन्याय होता है तहां रसोईं किस प्रकार हो सकती है? दुर्गा ने कहा कि मेरे ऊपर कृपा करके अपराध क्षमा करो और भगवन्मन्त्र उपदेश करके इस नगर को पवित्र कर देव। हरिव्यासजी ने देखा कि दुर्गा के चेले होने से सब लोग दुरुस्त होते हैं इस हेतु भगवन्मन्त्र का उपदेश किया। जब दुर्गा वैष्णव हुई तब नगर को वैष्णव करना उचित जाना। जो सरदार था उसको रात के समय पलँग में डाल दिया और कहा कि जो अपना भला चाहता है तो हरिव्यासजी का सेवक होकर भगवद्भक्ति अङ्गीकार कर नहीं तो सब नगर का नाश कर देऊँगी। तुरन्त सब लोग आये चेले होकर भगवद्भक्त हो गये और जो अपराध किये थे सबसे छुट्टी पाई। हरिव्यासजी कुछ दिन वहां रहे ऐसा उपदेश किया कि भङ्गी तक हरिभक्त हो गये।

ग्यारहवीं निष्ठा ॥

व्रत व उपवास के वर्णन में जिसमें कथा दो भक्तों की है ॥

अमृत कुलिशरेखा श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों को दण्डवत् करके नृसिंह अवतार को प्रणाम करता हूँ कि अपने परमभक्त प्रह्लाद के निमित्त मुल्ताननगर में नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु को परमधाम दिया। उपासक भगवत्प्राप्ति के निमित्त उपाय दृढ़ है कि सब कोई बिना अन्य परिश्रम भगवत् को पहुँच सकता है, दिखाना श्लोक श्रुति व पुराणों का कुछ प्रयोजन नहीं कि एकादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी आदि के माहात्म्य की पोथियां और अन्य व्रतों की विख्याति व सब कोई जानते हैं निश्चय निर्णय व्रत एकादशी का दशमी के ऊपर है। इस कारण से कि दशमीविद्धा व्रत सब स्मृति व पुराणों में वर्जित लिखा है और कारण वर्जने का यह है कि दशमी के दिन दैत्यों ने जन्म लिया। जो दशमीविद्धा व्रत हो तो दैत्य और राक्षसों की वृद्धि होकर धर्म का नाश हो जाय और एकादशी के दिन देवता उत्पन्न

हुये इसहेतु एकादशी व्रत से देवता प्रसन्न होते हैं और भगवत् प्रसन्न होकर व्रत करनेवाले के हृदय में प्रकाशित होते हैं। वेध मेल को कहते हैं अर्थात् पहले दिन आरम्भ में दशमी हो फिर एकादशी सो वेध के निर्णय में कई विरोध हुये। स्कन्धपुराण में चालीस घड़ी का वेध लिखा है अर्थात् जिसके आरम्भ में चालीस घड़ी दशमी होय तो उसके प्रभात व्रत करना चाहिये, जो चालीस घड़ी से अधिक दशमी होय तो दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी को व्रत होगा, सो इस वचन पर निश्चय कालीकण्ठीवाले रखते हैं। जाने रहो कि कालीकण्ठीवाले बहूजी के चेले कहलाते हैं, मत उनका वैष्णवी है, दुआबे यमुना व गङ्गा के सिवाय दूसरे देश में इस पन्थवाले नहीं हैं। मौजे रनदेवा सहारनपुर के इलाके में उनका गुरुद्वारा है। आचार्य इस पन्थ का योग्य व सिद्ध था, रीति उपासना की उचित व अंगीकार योग्य है व शास्त्राज्ञा के अनुसार है, पर इस समय इस पन्थ में कोई पण्डित योग्य व सिद्ध और जाननेवाला भेद उस उपासना का नहीं, इस कारण से प्रकाश कम है, बरु बहुत घराने से न जानने के कारण वह उपासना त्याज्य होगई है। अब स्कन्दपुराण में बीस प्रकार का निर्णय इस व्रत में आधा अर्थात् जो किसी ने इकतालीस घड़ी दशमी को उचित जाना तो वह एक प्रकार ठहरी और इसी भाँति जिसने पैंतालीस घड़ी को सिद्धान्त किया तो यह दूसरी प्रकार हुई। इसी क्रम से साठ घड़ी तक बीस प्रकार की होगई और नाम हरएक के व्याली व महाव्याली व भया व महाभया इत्यादि लिखे हैं, सो सिवाय कालीकण्ठीवालों के और कोई उस पन्थ का प्रवर्त्तक नहीं, इसहेतु विस्तार व वर्णन करना प्रयोजन नहीं समझा और चारों संप्रदाय के वेध का निर्णय यह है कि निम्बार्क संप्रदायवालों ने श्रुति व स्मृति की आज्ञा के अनुसार पैंतालीस घड़ी के वेध को अंगीकार किया, अर्थात् प्रारम्भ अगिले दिन का पिछली अर्द्धरात्रि से है। जो आधी-रात के उपरान्त दशमी होय तो अगिले दिन व्रत करना न चाहिये क्योंकि दशमी का वेध होगया और इस रीति को कापालिक वेध कहते हैं। विशेष करके सिद्धान्त जाननेवालों को उपासना का यह निश्चय है कि ग्रीष्मऋतु में सैंतालीस घड़ी पर आधी रात होती है और हेमन्तऋतु में तेंतालीस घड़ी पर सो जिस तिथि में जितनी रात गत होने पर आधीरात हो उसको मुख्य जानना चाहिये। पैंतालीस घड़ी के प्रबन्ध का प्रयोजन नहीं पर सामान्य विख्यात पैंतालीस घड़ी के वेध की है और रामानुज संप्रदाय में स्मृति व पुराण की आज्ञा के अनुसार पचपन घड़ी तिथि आजके बीतनेपर अगिले दिन को ग्रहण किया है, अर्थात् ब्राह्मीमुहूर्त का आठवां भाग रात का है जब से प्रारम्भ हो तब से तिथि का आरम्भ है व प्रमाण रात का भरतखण्ड में चालीस घड़ी तक है। इस हेतु आठवां भाग रात का पांच घड़ी हुआ सो इस संप्रदाय के अनुगामी पचपन घड़ी से अधिक होय तो अगिले दिन व्रत नहीं करते, जो कम होय तो करलेते हैं और रहीं दो संप्रदाय एक विष्णुस्वामी व दूसरी माध्वी सो

उनका निश्चय भी ऊपर की लिपि के अनुसार है, पर कोई कोई ने आठवांभाग रात का चार घड़ी भी अंगीकार किया है इस हेतु छप्पन घड़ी दशमी का वेध मानते हैं व स्मृति लोगों में न होने एक निश्चय व निष्ठा के कारण से कई मत हैं, अर्थात् कोई तो पैंतालीस घड़ी और कोई पचपन घड़ी कोई छप्पन घड़ी मानते हैं और कोई अरुणोदय वेध मानते हैं, अर्थात् अट्ठावन घड़ी से अधिक दशमी होय तो अगिले दिन व्रत नहीं करते और कोई तिथि का प्रारम्भ सूर्योदय से मानते हैं। उस समय दशमी हो तो व्रत नहीं करते नहीं तो साठ घड़ी दशमी तक वेध मानने का प्रयोजन नहीं और कोई ग्यारह का अङ्क मुख जानते हैं यह कि पत्रे में जिस दिन ग्यारह का अङ्क हो उसी दिन व्रत करते हैं और जो पन्द्रह दिन में एकादशी घटजाय और पत्रे में ग्यारह का अङ्क न हो तो व्रत नहीं करते। काशमीर इत्यादि देशों में पश्चिम पांच घड़ी दिन चढ़ेतक जो दशमी हो तो उसी दिन व्रत करते हैं। पश्चिम देशमें दशमी-विद्धा व्रत करने का कारण यह है कि शुक्राचार्य दैत्य अरु राक्षसों के गुरु थे उनको अपने शिष्यों की वृद्धि करनी थी, इसहेतु उस व्रत की प्रवृत्ति चला दी, पर विष्णु-नारायण ने दशमीविद्धा व्रत को त्याज्य किया और इसका निषेध आप वैकुण्ठ से आयकर ऋषीश्वरों से कहा कि यह वृत्तान्त पद्मपुराण इत्यादि में विस्तार करके लिखा है, सो उन शुक्राचार्य के मत को मूर्खों ने अब तक अंगीकार कर रक्खा है। कोईका यह मतहै कि एकादशी को नाज खाना वर्जित है सो जिस घड़ी एकादशी प्रारम्भ हो अन्नजल छोड़ देना चाहिये और जब द्वादशी प्रारम्भ हो पारण करना उचित है। इसके आचरण करनेवाले दक्षिण देशमें सुनेजाते हैं सो हरएक देशकी रीति व उपासना का विरुद्ध जो है सो लिखा गया पर शास्त्र के जाननेवालों से विशेष करके तीन प्रकार के वेध की रीति है एक पैंतालीस घड़ी, दूसरी पचपन घड़ी, तीसरी छप्पन घड़ी और यहभी जाने रहो कि शास्त्रों ने जो तृस्पर्शक व्रत का पुण्य बड़ा लिखा है उस तृस्पर्शक का है की जो प्रारम्भतिथि में घड़ी दो घड़ी एकादशी हो और फिर द्वादशी आरम्भ होकर तिथि के बीतनेके पहले त्रयोदशी आरम्भ होजाये और उस तृस्पर्शक का पुण्य नहीं लिखा है कि जिसके आरम्भ में दशमी हो पीछे एका-दशी उसी तिथि में भोग करके फिर द्वादशी प्रारम्भ करजाय, बरु दशमी के वेध के कारण से यह तृस्पर्शक त्याज और निषेध है। जन्माष्टमी व्रत में श्रीसंप्रदायवाले सिंह के सूर्य में जो अष्टमी हो उसको जन्माष्टमी मानते हैं और उस अष्टमी में कृत्तिका नक्षत्र अथवा सप्तमी का वेध एकादशी के वेध की रीति से मानना योग्य है। जाने रहो कि जन्मोत्सव व सालगिरह इत्यादि में जन्म के नक्षत्रपर दृष्टि होती है, सो भगवत् का आविर्भाव रोहिणीनक्षत्र में हुआ, इसहेतु कृत्तिका का वेध मानना योग्य है और जो सिंह का सूर्य भादों महीनेमें पांच दिन पीछेतक अष्टमी से न हो तो आश्विन में व्रत करते हैं और दूसरे संप्रदायवाले तीनों भादोंबदी अष्टमी को

मुख्य मानते हैं पर सप्तमी के वेध पर निश्चय करके दृष्टि जाती है, जो एकपल भी सप्तमी और सारा दिन और रात को अष्टमी हो तो उस दिन व्रत न होगा, अगिले दिन होगा। कृत्तिका के वेध पर निगाह नहीं विष्णुस्वामी संप्रदाय में वल्लभकुलवालों के भाव की बात निराली है कि नियमपर प्रेम प्रबल है। स्मार्तमतवाले चन्द्रोदय के समय अष्टमी का होना सिद्धान्त समझते हैं, सप्तमी के वेध पर कुछ दृष्टि नहीं। रघुनन्दन महाराज का अवतार चैत्रसुदी नवमी को और श्रीवामनजीका अवतार भादों सुदी द्वादशी को हुआ और नृसिंहजी का प्रादुर्भाव वैशाख सुदी चतुर्दशीको हुआ। उनव्रतों में भी वेध अष्टमी व एकादशी व त्रयोदशी का मानना चाहिये और इसीप्रकार चैत्रसुदी दूज को सीता महारानी का और भादोंसुदी अष्टमी को राधिका महारानी का जन्मोत्सव होताहै। उनके जन्मोत्सव व अनन्तचौदस आदि व्रतों में वेध की रीति है पर जाने रहो कि कोई तो भगवत् अवतार और महारानीजी के जन्म के दिन को व्रत मानते हैं और एकादशी की भांति निर्जल उपवास करते हैं और भगवत् उपासक उत्सव समझकर उत्साह जैसे भगवज्जन्म और सालगिरह को करते हैं और जन्मसमय के पीछे पञ्चामृत लेकर सब प्रकारके व्यञ्जन पक्वान्न अपनी सामर्थ्य के योग्य भगवत् को अर्पण करके भोजन करते हैं और जो लोग जन्माष्टमी के दिन यह वाद करते हैं कि अर्द्धरात्रि पीछे भोजन करना निषेध हैं उनको यह उत्तर देते हैं कि वह रात नहीं करोड़ों दिनसे अधिक प्रकाशित है और यह भाव उनका सत्य व सिद्धान्त है। जन्मोत्सव की उमंग जिस प्रकार भक्त और उपासक लोग करते हैं कोई लिख नहीं सकता अपने २ भाव और भक्ति के आधीन है। कितने लोगों का ऐसा भाव देखने में आया कि पुत्र अथवा पौत्र के जन्म अथवा विवाह में जो एक रुपया खर्च किया तो भगवज्जन्मोत्सव में उससे दशगुणा उत्सव किया और वह धूमधाम व आनन्द किया कि अनायास निश्चय करके भगवच्चरित्रों में मन लग जाय। जो लोग एकादशी नियम के साथ करते हैं उनकी यह रीति है कि नवमी के दिन एकभक्त हविष्यान्न जैसे चावल, मूंग, यव, गेहूँ, तिल व घी खाते हैं और दशमी के दिन एकभक्त फलाहार और एकादशी को निर्जल व्रत करते हैं। व्रत के दिन को प्रभात से भगवद्भजनमें व्यतीत करना उचित है दूसरी ओर चित्त न जाय। गवाही और मुन्सफी, राहचलना, शतरंज, गंजीफा यह सब खेलना, दिन का सोना, स्त्री व मित्र का देखना और दूसरी निषेध सब जैसे पान व अञ्जन इत्यादि जो कि विस्तार करके एकादशीमाहात्म्य में लिखा है यहां विस्तार करके लिखना व्यर्थ समझा। क्रोध व मिथ्या बोलना इत्यादि का तो लिखने का प्रयोजन नहीं कि वे सर्वथा वर्जितहैं। रात्रि को जागरण करना उचित है और जो किसी कारण से समाज भगवत्कीर्तन और भगवद्भक्तोंका प्राप्त न होसके तो आप अकेला भगवद्भजन में जागता रहे। द्वादशी के दिन भजनपूजन किये पीछे ब्राह्मणों को यथाशक्ति श्रद्धा

भगवत्प्रसाद भोजन कराकर और रुपया व बर्तन व अन्न व वस्त्र यथाश्रद्धा दान देकर और फल उस व्रत आदि का भगवत् अर्पण करके तब आप भोजन करे। पारण द्वादशी में उचित है और जिसदिन कि वेधके विचार से व्रत द्वादशी को होगा तो पारण त्रयोदशी के आपसे आप उचित होगा। जाने रहो कि द्वादशी शुक्लपक्ष आषाढ़ व भादों व कार्त्तिक में बीस २ घड़ी अनुराधा व श्रवण व रेवती नक्षत्रों की पारण के निमित्त त्याज्य हैं। जो उन बीस घड़ी में पारण करे। तो बारह एकादशी के व्रत का फल जाता रहता है, बीस २ घड़ी तीनों नक्षत्रों के निषेध का निर्णय कई प्रकार पर लिखा है, पर बहुत लोगों का सम्मत शास्त्र के प्रमाण से निश्चय इस बात पर है कि अनुराधा नक्षत्र की बीस घड़ी नक्षत्र के प्रारम्भसे पहली में व श्रवण नक्षत्र की बीसघड़ी बीचली में व रेवती की बीसघड़ी अन्तवालीमें पारण निषेध है उन बीसघड़ी के आगे पीछे किसी समय करलेवे और यह भी जाने रहो कि जो निर्जल व्रत न होसके व निर्बलता से भगवद्भजन में बाधा देखपड़े तो ऐसीदशा में इतना फलाहार और दूध अथवा जल का लेना उचित है कि सामर्थ्य जागरण और भगवद्भजन की बनी रहे और जो एकादशी व्रत के दिन शरीर ज्वरादिक करके क्लेशितहोजाय तो मूँग और गेहूँ का भोजन करना वर्जित नहीं है। ऐसी रीति और भगवत् प्रीति से जो कोई व्रत करते हैं उनके मुक्त व सद्गति में क्या संदेह है ? और एकादशीव्रत का जन्म व फल और व्रतों से सद्गति होने का हेतु व सब वृत्तान्त एकादशी माहात्म्य इत्यादि में लिखा है, इस कारण यहां नहीं लिखा और जितनी बातें प्रयोजन की हैं उनको लिखदिया। अब हमारे व्रत का वृत्तान्त सुनिये कि प्रीति तो ऐसी कि कभी याद नहीं रहती जो याद पड़गया तो दशमी से चिन्ता उपजी अर्थात् रात्रि के समय अच्छे प्रकार पेट भर के खाया और फिर विचार हुआ कि प्रभात को क्या क्या फलाहार होगा ? जब प्रभात हुआ तो बनाना फलाहार का प्रारम्भ हुआ और दोपहर के पहले खाने को बैठगये और इतना खाया कि दशमी के दिन भी कभी न खाया होगा, तिसके पीछे आतेही पलँग पर आराम किया और जो दही, कूटू, सिंघाड़ा, तरकारी अथवा पेड़ा, हलुआ भोजन उष्ण, गरिष्ठ व तीक्ष्ण खाया था इस हेतु कई बेर पानी पिया कि पेट फूल गया और चारपाई पर लोटते रहे व अभी भोजन पचा नहीं तब तक और उस ऋतु के मेवे तथा दवायें उसी समय मँगाकर खाये पीछे रात हुई दूध और पेड़ा खाये और ऐसी शीघ्रता से चारपाई पर गिरे कि एकक्षण न बैठसके। सारी रात गदहे की भांति लोटते रहे अगिले दिन चारघड़ी दिन चढ़े सुधि भई और भजन इत्यादि की बात क्या है यह भी न बना कि एकबार भी भगवत् का नाम मुख से निकला होवे। वाह वाह यह तो व्रत और भजन तिसपर चाहना सद्गति और भगवद्धाम की हजार धिक्कार ऐसे जन्म और समझ और वे विश्वासी पर। अरे मन पापी ! अबभी समझ और तनक विचार कर कि भगवच्च-

रणों से विमुख किसी ने भी सुखपाया है जो तू इस समाज में दृढ़ होजाय तो तेरे उद्धार में क्या संदेह है कि मौसम बरसात में जो सावन का महीना आया तो प्रिया-प्रियतम को उमंग झूला झूलने की हुई तो सब सखियों के सम्मत से बरसाने का पहाड़ इस समाज के निमित्त ठहरा जिसके चारों ओर वन की हरियाली और कल्पवृक्ष तमाल, कदम्ब, पाढ़ल, मौलसिरी व चम्पा आदि वृक्षों पर बेलि छाई हुई, सुगन्ध वाले फूल, मौसमी व बेमौसमी भगवत्‌सेवा के निमित्त फूलि रहे हैं और जहां तहां झरने झर रहे हैं, घटा उमड़ी हुई बादलों की मन्द मन्द गर्जन में कभी कभी बिजली की चमक, मयूर, सारस, कोकिला व चकोर इत्यादि पक्षियों का शब्द मनोहर शीतल मन्द सुगन्ध पवन अर्थात् किशोर-किशोरी के आनन्द व प्रसन्नता के निमित्त वह पहाड़ ऐसा शोभायमान व आनन्द बढ़ानेवाला हुआ कि बरबस स्नेह, शृङ्गार, प्रेम व प्रीति सब जगह से उत्पन्न होती थी। वहां एक कल्पवृक्ष के पेड़ में सखियों ने स्वर्णसूत्र आदि की डोर का झूला डाला और उसमें सिंहासन रत्नजटित डालकर जरी व मखमल व कीमखाब का बिछौना मोतियों की झालर लगाहुआ बिछायकेसँवारा। उसमें प्रिया प्रियतम विराजमान हुये और एकओर चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, श्यामला व श्रीमती और दूसरी ओर धन्या, रंगदेवी, पद्मा, भद्रा और अन्य सखी सब पखावज, वीणा, बांसुरी, सारंगी, सितार तम्बूरा व झांझ इत्यादि साज व सामान राग का दुरुस्त करके झुलाने और गाने के निमित्त खड़ी हुईं। राग मलार आरम्भ करके प्रिया-प्रियतम को झुलाने लगीं और वह सभा व समाज दर्शा कि ब्रह्माणी वा पार्वती व इन्द्राणी आदि सब भीत की चित्र होगईं और सब राग व रागिनी बेसुधि बुधि हो रहीं। उस समय की शोभा, शृङ्गार, सामान, बहार, हँसी-ठट्टा व आनन्द का किससे वर्णन होसकता है? सारा वन व पहाड़ परम आनन्द व मङ्गल का देनेवाला हो रहा था और हर एक सखी मोहि लेने के निमित्त उस मनमोहन के कि जिसकी माया के कटाक्ष में करोड़ों ब्रह्माण्ड नाचते हैं, मोहिनी रूप सबके गोरे मुख चन्द्रमा पर अलकों की लटैं छुटी हुईं माथे पर टीका व बेंदी, उसके ऊपर चन्द्रिका, कानों में कर्णफूल और झुमका, पँचलड़ी, चम्पकली व हैकल आदि गले में, हाथों में बाजूबन्द, चूड़ी, कंगन जड़ाऊ व अँगुलियों में अँगूठी, छल्ले, आरसी और डुपट्टे लहँगे सुरुख, सब्ज, गुलेनारी, धानी, बैंगनी व नारञ्जी आदि रङ्गों को अपने २ अङ्गों व रूपरङ्ग के जरी गोटे पठ्ठे से भरे पहिने हुये पांवों में पायजेब, झांझें, बिछुये सजिके पगफूल उन सब सखियों के समाज में नटनागर व्रजचन्द्र महाराज की कैसी शोभा है कि जिस प्रकार करोड़ों छवि मूर्तिमानों में शृङ्गार विराजमान हो। शोभा, सजावट, दमक, झमक, वस्त्र, अलंकार ऐसा मनोहर व चित्त को हरे है कि सब सखियाँ मुख चन्द्रमा की चकोर हो रही हैं। एक हाथ किशोरीजी के गले में और दूसरे हाथ से अलकें जो पवन के झोंके से उरझ गई थीं सुलझाते हैं।

कभी चन्द्रावली व ललिता आदि से ठट्टा व छेड़छाड़ है और कभी तिरछे नयनों से नयन मिलाकर सुन्दरता व विलास देखते हैं और कभी राग गाने व सुनने पर चित्त है और कभी वृषभानुनन्दिनी से हँसी, खेल व अङ्कमेल है इसके आगे इस रस का अन्त नहीं जो इतिश्री लिखूँ ।

कथा अम्बरीष की ।।

राजा अम्बरीष चक्रवर्ती परमभक्त हुये जिनके गुण, दान व यज्ञ का यश पुराणों में प्रसिद्ध है और सर्वसुख जो इन्द्रादिक को कठिनता से मिले सो सब प्राप्त था, पर कभी उनमें मन न लगाया । भगवत्सेवा में ऐसी प्रीति व निश्चय था कि सब कैंकर्यता भगवत् की अपने हाथ से करते थे । किसी सेवक को नहीं करने देते और एकादशी व्रत की जो आज्ञा शास्त्र की है तिसको राजा ने अत्यन्त पालन किया । नवमी व दशमी के नेम व संयम के पश्चात् एकादशी व्रत करके जागरण किया करते थे और द्वादशी के दिन सब प्रकार का द्रव्य व वस्त्रादि व कई करोड़ गऊदान करके और ब्राह्मणों को सब प्रकार के भोजन प्रसाद जिमा करके तब आप पारण करते । एक बेर दुर्वासा ऋषीश्वर आये, राजा ने सत्कार व दण्डवत् करके भोजन के निमित्त विनय किया । दुर्वासा ने कहा कि स्नान कर आवें सो स्नान करने गये । संयोगवश उस दिन द्वादशी दो दण्ड रही राजा को पारण की चिन्ता पड़ी व ब्राह्मणों के सम्मत व आज्ञा से नारायण का चरणामृत पान कर लिया । जब दुर्वासाजी आये और यह वृत्तान्त सुना तो क्रोधाग्नि से ज्वलित होकर राजा के मारने को उद्यत हुये और अपनी जटा से कालकृत्या नामी अग्नि की ज्वाला ऐसी उत्पन्न करी कि वह राजा के भस्म करने को दौड़ी । भगवत्, जो कि सर्वकाल अपने भक्तों की रक्षा की चिन्ता में रहते हैं, दुर्वासा के गर्व को न सह सके । चक्र सुदर्शन को आज्ञा दी उसने पहले तो कालकृत्या की ऐसी सुधि ली कि भस्म करदिया फिर दुर्वासा ऋषीश्वर की सेवा की सुधि लेने को चले । दुर्वासाजी अपने प्राण के भय से भाग निकले और चक्र सुदर्शनजी ने रगेद लिया । सारे संसार व ब्रह्मलोक व और कैलास आदि में सब लोकपाल व देवता आदि की विनय व प्रार्थना करते फिरे पर कोई उनकी रक्षा करने को समर्थ न हुये और निश्चय यह बात है कि ऐसा कौन है कि भगवद्भक्त के द्रोही को रखसके । जब कहीं शरण न पाई तब वैकुण्ठनिवासी विष्णु भगवान के पास गये और वहां से यह उत्तर पाया कि यद्यपि मैं तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ पर विचार करना चाहिये कि जो मेरे भक्त सब सुख छोड़कर मेरे शरण हुये हैं और मुझसे सिवाय और कुछ आश्रय उनको नहीं, तो किस प्रकार उनका अपमान हमसे सहा जाय कि तुम्हारी रक्षा करूँ, सो तुमको उचित यही है कि तुम राजा अम्बरीष की शरण जाकर अपना अपराध क्षमा कराओ । यह सुनकर दुर्वासा निराश हुये फिर राजा की शरणमें आये, दण्डवत् करके

त्राहि २ पुकारे, राजाने स्तुति व प्रार्थना से सुदर्शनचक्र को शीतल करके दुर्वासाजी का मान-सम्मान ऐसा किया कि सब दुःख भूल गये और यह जानिये कि दुर्वासाजी एक वर्ष तक व्याकुल भ्रमते रहे पर राजा ज्यों का त्यों दयाकरके युक्त एक स्थानपर खड़ा रहा और दुर्वासा के क्लेश का शोच करता रहा। सत्य है कि भगवद्भक्तों को किसी के साथ वैर नहीं होता क्योंकि उनकी दृष्टि में यह जगत् भगवद्रूप है, अथवा भगवद्भक्तरूप है। पीछे राजा ने दुर्वासाजी को भोजन कराया, आप भोजन किया, यह दयालुता भक्तों की देख यश गाते हुये अपने आश्रम को गये। इस कथा में एक संदेह उत्पन्न हुआ कि भगवत् का प्रण है कि कैसा ही पापी शरण आवे अभय करदेता हूँ। अब दुर्वासा शरण गये न रक्षा की तो प्रण में विरुद्धपड़ा, सो जाने रहो कि पहले तो भगवत् ने आप दुर्वासा को उत्तर देनेके समय संदेह यह दूर कर दिया सो ऊपर लिखआने के सिवाय इसके भगवत् का वचन है कि सब पाप क्षमा करता हूँ पर दो पापनहीं। एक यह कि मेरे भक्तों का जो अपराध करे जैसा दुर्वासा ने किया और दूसरा जो मेरे नाम का अपराध करे अर्थात् इस नियत से पाप करे कि पाप करने पीछे नाम अथवा मन्त्र जपकर शुद्ध व पवित्र होजायँगे। तो जब भगवत् का ऐसा वाचा प्रबन्ध है तो प्रण में विरुद्ध कहां हैं? जो यह कोई न माने तो भी अच्छे प्रकार विचार कर देखा जाता है तो शरणागत में भी कुछ विरुद्ध भगवत् के प्रण में नहीं हुआ, क्योंकि दुर्वासा अपने प्राण की रक्षा के हेतु भगवत्-शरण हुये सो उपाय भगवत् ने बतलाया व दुर्वासा का प्राण बचा तो संदेह को ठौर नहीं है और यह भी जाने रहो कि दुर्वासाजी पर राजा अम्बरीष को कुछ क्रोध नहीं आया था बरु भगवत् का क्रोध हुआ था कि चक्र सुदर्शन को आज्ञा दण्ड की दी थी। यह प्रताप शरणागत का हुआ कि दुर्वासा का प्राण बचा नहीं तो कहां उस प्रभु का क्रोध व कहां दुर्वासा विचारा और मुख्य कारण इस चरित्र का यह है कि भगवत् अपने भक्तों के सब अपराधों पर तनक अवलोकन नहीं करते, पर एक अहंकार पर तुरन्त दृष्टि होती है। किस हेतु कि गर्व व अहंकार से भजन व सेवा में बड़ा विघ्न होता है इस हेतु से अपने भक्त के गर्व को दूर करदेते हैं कि गरुड़, मार्कण्डेय व नारद आदि की कथा साक्षी इस बात की है। सो दुर्वासाजी को गर्व अपनी सिद्धता व बड़ाई का हुआथा कि राजाकी परीक्षा के हेतु गये थे, इस कारण भगवत् ने राजाही के शरण में भेजकर दुर्वासाजी का गर्व दूर कर दिया। इस चरित्र से एक उपदेश भगवत् का और भी है और वह यह है कि जब भगवत् ने दुर्वासाजी को शरण से निराश कर दिया तो दुर्वासाजी को क्रोध आया, भगवत् को शाप दिया और उसके कारण से दश बार भगवत् को अवतार धारण करना पड़ा। उपदेश इसमें यह हुआ कि जब हमारे ईश्वर को भी शरण नहीं देने से दश देह अंगीकार करनी पड़ीं तो दूसरे मनुष्य जो शरण आये की रक्षा न

करेंगे तो न जाने उनकी क्या गति होगी ? जब राजा की भक्ति और भाव विश्व में विख्यात हुआ तब एक कोई राजाकी लड़की ने कि भगवद्भक्त थी राजा अम्बरीष से अपने विवाह की बात चलाई राजा ने उत्तर दिया कि हमको भगवत्-सेवा से छुट्टी नहीं व न स्त्री की चाहना है। वह लड़की अधिक प्रेम युक्त होगई, बारम्बार हठ किया, राजा उसके प्रेम के वश होकर आप तो न गये पर अपनी तलवार भेजदी उसी से विवाह का नेगचार सब हुआ जब वह रानी आई तब एक महल अलग बना उसमें रहने लगी। एकदिन वह रानी पूजा का मन्दिर राजा का देखने को गई, राजा जगे नहीं थे रानी मन्दिर बहार लीपकर जलशुद्ध रखकर सब साज पूजा का तैयार करके चली आई। राजा जब पूजा करने आये तब सामग्री सजी देखी, बड़े आश्चर्य में हुये, जब कितने दिन ऐसेही वृत्तान्त देखा तो एकरात राजा जागते रहे और जब रानी आई तो पूछा कि तू कौन है, जो मेरी सेवा में चोरी करती है ? उसने उत्तर दिया कि नई दासी हूँ, राजा ने उसकी भक्ति देखकर आज्ञा की कि अलग सेवा किया करो। सो उसने ऐसे प्रेम से सेवा-पूजा को किया कि भगवत् व राजा दोनों प्रसन्न होगये। विस्तार करके कथा इस रानी की प्रेमनिष्ठा में लिखी जायगी, दूसरी रानियों ने भी राजा की प्रसन्नता देखकर सबने भगवत्-सेवा पधराई, सब कोई के प्रेम को देखकर राजा सबके महलों में जानेलगे। पुरवासियों ने भी ऐसेही प्रेम सेवा उठाई, वहां भी राजा जाते सब नगर भगवत्-परायण होगया अर्थात् जब राजा भगवद्धाम को जानेलगे तो सम्पूर्ण अयोध्यावासियों को अपने साथ लेते गये और सब उस पद को पहुँचे कि योगीजन अनेक जन्मतक परिश्रम व क्लेश करके नहीं पहुँचते हैं।

कथा रुक्मांगद की ॥

राजा रुक्मांगद की कथा एकादशीमाहात्म्य व पुराणों में प्रसिद्ध है। उनकी एक फुलवारी ऐसी सुगन्धित व शोभायमान थी कि देवताओं की स्त्रियां वहां के सुख लेने को उतरती थीं। एकदिन उनमें से किसीके बेर का कांटा लगगया। उसकी अशुद्धतासे उड़ न सकी माली की लड़की से कहा कि कोई एकादशी व्रत जो किया हो तो उसका पुण्य मुझको दिलादेव कि स्वर्ग जाऊँ। यह बात सुनकर राजा आया देवांगना से कहा यहां व्रत कोई जानता नहीं उसने बतलाया तब राजा ने एक साहूकार की लौंड़ी जो मारने से भूँखी प्यासी सारा दिन व रात जागती रही बुलवाकर पुण्य दिलादिया कि देवांगना स्वर्ग गई व राजाने सारे देश व नगर में डौंड़ी एकादशी की फेरवायदी। हाथी घोड़े तक उपास करते थे अन्त में सब समेत राजा वैकुण्ठ गया। राजा को लड़की भी एकादशी व्रत की निष्ठायुक्त ऐसी थी कि एकादशी के दिन उसका पति आया। देखादेखी व्रत रहा पीछे भूख से विकल होकर भोजन चाहा। वह माहात्म्य से प्रवीण थी न दिया दो चार घड़ी पीछे वह मरगया,

भगवद्धाम को गया। उसकी स्त्री ने बड़ा उत्साह माना स्तुति करते करते वह भी भगवद्धाम को चली गई। ऐसी ऐसी कथा एकादशीमाहात्म्य में बहुत हैं जिसकी इच्छा हो सो देख ले।

बारहवीं निष्ठा ॥

महिमा महाप्रसाद जिसमें चार भक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों के जम्बूफलरेखा को दण्डवत् करके हयग्रीव अवतार को दण्डवत् करता हूँ कि कामरू देश में देवताओं की सहायता व दुष्टों के नाश के हेतु अवतार धारण किया। गीताजी में भगवत् की आज्ञा है कि जो कुछ करे, जो भोजन करे, जो यज्ञ करे, जो देवे, जो तप करे सब मेरे अर्पण करके शुभ अशुभ कर्मों के बन्धन से छूट जावेगा। इस हेतु उचित है कि जो कुछ खाना, पीना व सामां नवीन तैयार हो सो सब पहले भगवत् अर्पण करे, तब अपने अर्थ लगावे कि भगवत् यह अर्पण किया हुआ भक्त का अंगीकार करते हैं, सो गीताजी में भगवत् ने कहा है कि पत्र, पुष्प, फल, जल जो वस्तु भक्ति से हमको निवेदन करते हैं प्रसन्न होकर खाताहूँ। भगवत्प्रसाद के भोजन से व शास्त्रोक्तकर्मों के करने से कितना गुण भारी है कि बहुत शीघ्र अन्तःकरण निर्मल होकर भगवच्चरणों में प्रीति होजाती है और पुराणों में लिखा है कि हजार एकादशी और सौ द्वादशी का फल भगवत्प्रसाद के एक कण के सोलहवें अंश के माहात्म्य को नहीं पहुँचता है। गरुड़पुराण में भगवत् की आज्ञा है कि जो भगवत्प्रसाद करके भोजन करते हैं उनके मन के सब रोगों का नाश होजाता है और पवित्र होते हैं, फिर लिखा है कि जो कोई सामग्री खाने पीने की मेरा प्रसाद करके खाते पीते हैं, वे मेरे समीप पहुँचते हैं। भगवत् की आज्ञा है कि जो कोई बिना भगवत् को भोग लगाये खाते पीते हैं तो भक्ष्य उनका शूकर के भक्ष्य सदृश व पानी रुधिर के सदृश है और ऐसाही वचन विष्णुपुराण का है, सो देखो भगवत्अर्पण करने से कुछ उस वस्तु में से घटती व हानि भी नहीं होती है, केवल इतनी ही बात है कि जब रसोईं खाने को बैठे तो भगवत् का ध्यान करके भगवत्अर्पण कर दिया और इतना और भी ध्यान कर लिया कि भगवत् ने इस भोज्य वस्तु व पानी को भोग लगाया पीछे भोजन करलिया। इसीप्रकार सम्पूर्ण सामां व वस्तु जब बनके व सज के आधी भगवद्भेंट किया करें, जो भगवन्मूर्ति न होय तो ध्यान में भगवत्अर्पण करके तब अपने अर्थ व काम में लगावें और जो ऐसा संयोग पड़े कि रसोईं की सामग्री को पहले कुछ किसीने खालिया हो तो ऐसा विचार कर लेना कि पहले भगवत्अर्पण होगया है उसमें का शेष यह है पर भगवद्ध्यान करके कुछ भोग लगाने का चिन्तवन कर लेना निश्चय चाहिये, क्योंकि बिना भोग लगाये भगवत्प्रसाद नहीं हो

सकता अर्थात् सर्वथा कोई वस्तु बिना भगवत्अर्पण किये ज्याज्य व महाहलाहल विष है। महाहलाहल इससे कि विष खाने से एकबेर मरता है व इस विष से चौरासीलाख बेर मरना पड़ता है। एक किसी को संदेह हुआ कि सैकड़ों हजारों लोग भगवत्प्रसाद व चरणामृत ठाकुरद्वारों में खाते, पीते हैं और बहुत लोग शालग्राममूर्ति अपने पास रखते हैं और बिना भोग लगाये कुछ नहीं खाते परन्तु हृदय की निर्मलता और भगवत् की प्राप्ति किसी किसी को होती है इसका कारण क्या है ? सो जाने रहो कि इसमें विश्वास कारण है, जैसे २ विश्वास की वृद्धि होगी तैसे २ हृदय भी निर्मल होता जायगा, अन्त को निर्मलता व भगवत्प्राप्ति हो जायगी। जैसे पारसमणि अर्थात् पारस व लोहे के बीच में एक महीन वस्त्र का भी अन्तर जबतक रहेगा तो लोहा सोना नहीं, होगा परन्तु लोहा व पारसमणि एकत्र रहेंगे तो वह वस्त्र थोड़े ही काल में रगड़ खाकर उड़ जायगा व लोहा सोना निश्चय करके होगा और यह भी जाने रहो कि भगवत्प्रसाद व चरणामृत खाने पीने वाला यद्यपि दृढ़ विश्वासयुक्त नहीं है तथापि यमयातना व नरकों का दुःख नहीं पावेगा। भगवच्चरणामृत व महाप्रसाद की महिमा को कौन वर्णन करसकता है भगवद्भक्तों का चरणामृत व जूंठन का यह प्रताप है कि जिसके प्रभाव करके हजारों परमपातकी व अधम शुद्ध हो भगवत्निकटनिवासी होगये । कथा नारदजी व नाभा जिसने भक्तमाल की रचना किया इसके निश्चय व साक्षी के निमित्त प्रत्यक्ष हैं। सिवाय इसके भगवत् अपने महाप्रसाद व चरणामृत की महिमा द्रौपदी व अम्बरीष आदि की कथा से प्रकट दिखाते हैं अर्थात् दुर्वासाजी ने चरणामृत के लेने के अपराध से अम्बरीष को दुःख दिया था उनकी क्या गति हुई ? और द्रौपदी की कथा में लिखा जावेगा कि वनवास के समय राजा युधिष्ठिर को सूर्य ने एक टोकनी दी, गुण उसमें यह था कि नित्य जबतक द्रौपदी भोजन न करती वाञ्छित भोजन अपार उसमें से निकलता जाता। एक दिन द्रौपदी के भोजन करलेने पीछे दुर्वासाजी दश हजार शिष्यों सहित आये। राजा चिन्ता में पड़े श्रीकृष्ण महाराज पधारे एक पत्ता शाक का टोकनी में से ढूंढ़के खागये, उसका यह प्रभाव हुआ कि दुर्वासाजी दशोंहजार अपने चेलों के समेत ऐसे अघाय गये कि बाहर भाग खड़े हुये। विचार करना चाहिये कि क्या भगवत् बिना शाक के खाये दुर्वासाजी को नहीं अघवा सकते थे ? अक्षय अघवा सकते पर हठ करके शाक खाने का अभिप्राय केवल यह था कि भगवत् अपने महाप्रसाद का प्रताप दिखाते हैं कि जो कुछ मेरे अर्पण होता है वह ऐसा अनन्त हो जाता है कि जैसा मैं हूँ और करोड़ों को अघवा सकता है। द्रौपदी ने पहले जन्म में थोड़ा सा कपड़ा एक ऋषीश्वर को भगवत् की राह पर दिया था वह ऐसा अनन्त हुआ कि दुःशासन खींचते-खींचते हारगया एक बुन्द जो सिंधु में डाले तो बुन्दभी सिन्धु होजाता है। इसी प्रकार जो पदार्थ अनन्त को अर्पण

किया जाय अनन्त होजाता है और जब ऐसा अनन्त हुआ तो उसके खाने पीनेसे हृदय निर्मल क्यों न होगा ? होवेहीगा विस्तार करके लिखा जाता है अर्थात् रीति है कि जो पवित्र वस्तु है सो अशुद्ध अपवित्रको शुद्ध व पवित्र करदेती है। यह बात अग्नि व जल व पवन के दृष्टान्त से अच्छे प्रकार निश्चय होती है। इसी प्रकार वह भोजन व जल जिस समय भगवत् परमशुद्ध व परमपावन को पहुँचा तो उसी समय शुद्ध व परमपावन होगया। उस शुद्ध और पावन भोजन व जल को जब भक्त ने सेवन किया तो उस भक्त को भी शुद्ध व विमल व अनन्त कर दिया। विश्वास मूल है, देखो प्रसिद्ध है कि महात्मा सिद्ध राह चलते बहुत आदमी पापी व अपावन को अपना जूँठन खिलाकर अथवा शरीर से शरीर मिलाकर एक क्षण में अपने ऐसा निर्मल व पापों से मुक्त कर दिया तो कारण इसका यही कि वह महात्मा सिद्ध पावन व निर्मल था अपनी विमलता से दूसरे के हृदय का मल क्षणमात्र में दूर कर दिया। तात्पर्य कहने का यह है कि कोई वस्तु बिना भगवत्अर्पण किये कदापि अपने अर्थ न लगावे और यह भी लिखा गया है कि कुछ बड़े क्लेश की बात नहीं, एकबात की बात है और केवल मन में ध्यान कर लेना है पर यह दुर्भाग्यता हम लोगों की और कलियुग का प्रताप है कि थोड़ीसी बात नहीं हो सकती हाय! अफसोस कि मन भाग्यहीन ने मुझको बहुत भ्रमाया और इसी दुष्ट के करने से इस दशा को पहुँचा हूँ कि जाने कबसे करोड़ों जन्म भांति २ के लेकर अनेक प्रकार कीपीड़ा में फँसा हूँ, पर अब मेरा भी अच्छा दांव लगा है कि श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की छांह मिलगई है। देखूँगा कि इस मन दुष्ट का बल चलता है कि मेरेस्वामी पतितपावन दीनवत्सल के विरद की। रे मन ! तेरे बुरे चलन पर जो दृष्टि करूँ तो तू कदापि इस योग्य नहीं कि तेरी भलाई के निमित्त परिश्रम किया जावे, परन्तु सदा मेरे पास रहता है इसहेतु शिक्षा करता हूँ कि इस रूप अनूप का चिन्तन किया करे कि तेरे दोनों लोक सुधर जावें। दशरथ महाराजाधिराज का परम सुन्दर मन्दिर है और दर दीवार, क्षिति व छत्र आदि सुवर्ण व रूपमयी तिसमें हीरा लाल पन्ना आदि रत्नों से जड़ाऊ शोभायमान, उसमें चारों भाई मानों चारों मुक्ति अथवा चारों फल अथवा चारों व्यूह अथवा चारों उपासना अर्थात् नाम १ धाम २ लीला ३ रूप ४ स्वरूपवान् अपने खेल व बालचरित्रों से सब माता व दशरथ महाराज को परम आनन्द से पूर्ण करते हैं। कभी तो माता के साथ कोई खिलौना मांगने की हठ है कभी दशरथ महाराज के साथ घोड़े पर चढ़ाने व तीर व कमान मँगा देने को हठ, कभी दीवार में चित्र व रंग-रंग के जड़ावो व बेल-बूटा सुनहरे देखकर प्रसन्न होते हैं और माता से पूछते हैं ? यह क्या है और कभी रत्नों में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर बूझते हैं कि यह किसके लड़के हैं ? कभी खाते खेलते फिरते हैं और पक्षियों को बटोर करके खिलाते हैं कभी उनके पकड़ने को दौड़ते हैं और उड़ जाने पर माता

से हठ है कि तू पकड़कर ला दे और कभी चारों भाई परस्पर हाथ पकड़कर नाचते हैं कभी रात के समय चन्द्रमा को देखकर माता से कहते हैं कि हमको भी ऐसाही मँगा दे अर्थात् वह लीला व चरित्र परम मनोहर हैं कि ब्रह्मा शिवादिक देखकर कभी तो परम आनन्द में मग्न होते हैं और कभी माया के जाल में फँस जाते हैं । चारों भाईयों के मुख की शोभा ऐसी है जिसको देखकर आनन्द को भी आनन्द होता है व सम्पूर्ण शोभा, शृंगार व दृष्टान्त भाल के श्रीपर निछावर होकर दर्शन में बेसुध हो जाते हैं । जरदोजीकाम व गोटेपट्ठे व जवाहिरात से भी हुई टोपी शिर पर, घूँघरवाली जुल्फें छुटी हुई, भाल पर गोरोचन का तिलक, कानों में छोटे-छोटे कुण्डल और झुमका, बुलाक जिसमें सब्जा पड़ाहुआ है पहिने हुये, झलकदार कपोलों पर डिठौला लगा हुआ, गले में कण्ठी, कठुला जड़ाऊ, बघनखा व जुगनू शोभित, हाथों में बाजूबन्द, पहुँची, कड़े व चरणकमलों में घुंघरू, झांझें व नाजुक अतिसुकुमार शरीरों में जर्द, सबुज, धानी, सुरुख कुरते महीन कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि माता बालचरित्रों को देखती हुई आनन्द में मग्न व बेसुधि अपने भाग्य की बड़ाई करती हुई चारों ओर विराजमान हैं ।

कथा अङ्गद की ॥

अंगदजी चचा राजे सिलहदीराय सेन किल्ले में जाति राजपूत परम भक्त भगवत् के हुये । प्रथम का वृत्तान्त यह है कि भगवत् से विमुख थे, स्त्री उनकी परमभक्त साधुसेविनी थी । एक समय उस स्त्री के गुरु आये, महल में भगवत् उपदेश व कथा कर रहे थे । अंगदजी आय गये बुरा माना गुरु चले गये, स्त्री भगवत् कथा व गुरु के दर्शन बन्द होनेपर खाना, पीना, कहना, सुनना त्यागकर दुःखित रहने लगी । अंगदजी उसके रूप में आसक्त थे, विकल हुये बहुत उपाय किया यहां तक कि शिर अपना उसके चरणों पर धर दियापरन्तु प्रसन्न न हुई । जब अंगदजी ने भी खाना पीना त्याग किया व वचन प्रबन्ध किया कि जो तू कहेगी सोई करूँगा तब राजी हुई और कहा कि भगवद्भक्ति अङ्गीकार करो और गुरुजी के चेले होकर उनकी सेवा किया करो । अंगदजी जाकर उस गुरु के चेले हुये, माला तिलक धारण किया फिर उनको अपने घर पर ले आये और भगवद्भजन व साधुसेवा ऐसी प्रारम्भ की कि थोड़े दिनों में हृदय विमल व भगवत् की सच्ची प्रीति होगई । एकबेर राजा किसी शत्रु से युद्ध करने को चढ़ा व विजय पाई । शहर लूटने के समय अंगदजी को एक ताज अर्थात् बादशाही टोपी ऐसी मिली कि उसमें एकसौ एक हीरे लगे थे । सौ हीरे तो बेच के साधुसेवा व भगवत् उत्साह में लगाये और एक हीरे को बहुत मूल्य व उसके सदृश मिलने योग्य दूसरा नहीं तिसको पगड़ी में अपने यत्न से बांध लिया । श्रीजगन्नाथराय की भेंट के निमित्त रक्खा । इस हीरे की ख्याति हुई राजा ने सब लूटको माफ किया उस हीरे को मांगा । अंदजीने लोगों के समझाने पर भी न माना

व उत्तर दिया कि यह हीरा श्रीजगन्नाथरायजी को भेंट होचुका है अब किसीको नहीं मिल सकता। अंगदजी की बहिन थी उसके हाथ की रसोईं भगवत् को भोग धरा करते थे और उसकी एक छोटी लड़की भोजन के समय साथ खाती था। राजा के लालच के फन्द में आय के उस स्त्री ने रसोई में विष डाला अंगदजी भगवत् को अर्पण करके प्रसाद भोजन करने बैठे, तब उस लड़की को बुलाया उसको उसकी मा ने छिपा रक्खा जब वह न आई तब अंगदजी ने भी भोजन न किया। तब उस लड़की की मा धिक्कार अपने को मानकर रोने लगी व अंगदजी से सब वृत्तान्त विष मिलाने व लड़की को छिपा रखने का कहकर मिलकर रोई। अंगदजी अपने को विष देने पर कुछ मन में न लाये पर भगवत् को अपर्ण होने का क्रोध हुआ, उसको निकाल दिया और आप उस प्रसाद को अमृत जानकर भोजन कर गये। प्रेम व आनन्द में मग्न होकर भगवद्भजन में लगे। राजा को यह सब समाचार पहुँचे इस अभिलाष में रहा कि अब अंगदजी के मरने की खबर आती है और अंगदजी को महाप्रसाद में अमृत का दृढ़ भाव रहा इस हेतु उसने अमृत का फल दिया और क्षण २ शोभा मुख की और हृदय को आनन्द अधिक होता गया और विष देने दिलानेवाले अभागों को लज्जा व शोक प्राप्त हुआ। पीछे अंगदजी उस हीरे को जगन्नाथरायजी की भेंट करने के निमित्त लेकर चले। राह में राजा के चाकरों ने घेर लिया कहा कि हीरा देव नहीं तो लड़ो हमारे साथ। अंगदजी ने कहा कि एक क्षणमात्र विलम्ब करो यह कहकर तालाब के किनारे पर गये और भगवत् से विनय किया कि महाराज ! यह आपकी अमानत मेरे पास थी सो आप सम्हाल लें यह कहकर और सबको दिखाकर उस हीरा को तालाब में डाल दिया। भगवत् अपने भक्त की विनती सुनकर सात सौ कोस आनकर पानी तक पहुँचने न दिया ले गये और अपनी भक्ति और भक्तों का प्रताप प्रकट किया, सो अबतक भुजा में शोभित है। दर्शन होते हैं और राजाके चाकर लोग व आप राजाने उस तालाब का पानी उलचवाय के तलाश किया कराया पर हाथ न लगा। लज्जित घर गये और अंगदजी अपने घर चले आये राजा अंगदजी को विश्वास करके मानने लगा और पुजारियों ने जगन्नाथरायजी की आज्ञा पाकर उस हीरे के पहुँचने का समाचार अंगदजी के पास भेज दिया। अंगदजी अति हर्षित होकर जगन्नाथपुरी को गये उस हीरे सहित दर्शन करके आनन्द में मग्न होगये। राजा अंगदजी के जाने से अति विकल हुआ ब्राह्मणों को वास्तेले आने अंगदजी के भेजा। अंगदजी ने न माना तब सब अन्न जल छोड़कर धरना बैठे तब अंगदजी आये व राजा ने आगमन सुनकर आगे जाकर लिया व देखकर चरणों से लिपट गया। अंगदजीने उठाकर छाती से लगा लिया। राजा को भगवद्भक्ति व साधुसेवा का उपदेश किया, राजाने धनसम्पति अंगदजीपर निछावरकिया और भगवत्शरण होकर कृतार्थ होगया।

कथा पुरुषोत्तमपुरी के राजा की ॥

पुरुषोत्तमपुरी के राजा परमभगवद्भक्त हुये और महाप्रसाद में ऐसी निष्ठा थी कि थोड़ी अवज्ञा से अपना हाथ कटवा डाला । वृत्तान्त यह है कि एक बेर चौसर खेलते थे पुजारी जगन्नाथरायजी का महाप्रसाद लेकर आया राजा ने दहिने हाथ में पांसा रहने से बांया हाथ फैलाया । पुजारी महाप्रसाद की अवज्ञा समझकर क्रोधयुक्त होकर महाप्रसाद फेर लेगया । राजा इस अपराध से लज्जित होकर दौड़े पुजारी से विनय प्रार्थना करके महाप्रसाद लिया, शिरपर धारण किया चूक के पश्चात्ताप में बहुत चिन्तायुक्त बिना खाये पिये त्राहि त्राहि करते घरमें जाकर पड़ रहे । इस उपाय में हुये कि किसी प्रकार से दाहिने हाथ को दूर करना चाहिये कि भगवत्प्रसाद से विमुख हुआ, फिर चिन्ता करें कि मेरे हाथ को कोई सब काट सकता है, इस शोच में मनमलिन चिन्तायुक्त रहते थे । एक दिन कारण इस मानसी व्यथा का मन्त्री ने राजा से पूछा । राजा ने कहा कि रात के समय एक भूत आता है झरोखे की राह हाथ डालकर शोर गुल किया करता है सो तुम रात को मेरे मकान में रहो जब वह प्रेत अपना हाथ झरोखे में डाले तब काट डालो कि उसी रात मन्त्री चौकी पर रहा । राजा ने झरोखे में हाथ डालकर शोर किया मन्त्री ने ऐसी तलवार मारी कि हाथ साफ अलग जापड़ा जब मन्त्री को मालूम हुआ कि राजा का हाथ है, बड़े शोच व लज्जा में पड़ा । राजा ने कहा कि भूत व प्रेत वही है जो भगवत् से विमुख है तुम चिन्ता मत करो हमको यह करना योग्य था । भगवत् करुणासिन्धुने अपने भक्त की ऐसी निष्ठा देखके आज्ञा की कि राजा को महाप्रसाद लेजाओ व कटा हाथ उठा लाओ । पुजारी लोग दौड़े व इधर से राजा दर्शन को चले राह में पुजारीलोग जब महाप्रसाद आगे लेकर देने लगे तो राजा ने बड़े भाव व भक्ति से लेने को दोनों हाथ उठाये । उस समय भगवत्कृपा से कटा हाथ भी नया निकल आया व राजा ने दोनों हाथों से महाप्रसाद लेकर अपनी छाती से लगाया और दर्शन करके प्रेम आनन्द में पूर्ण होकर भगद्भजन में रहने लगे । भगवत् ने कटा हुआ हाथ अपने बाग में लगवा दिया कि वह दौना का वृक्ष सुगन्धवान् फूलों का होगया कि अबतक उसके फूल जगन्नाथरायजी को चढ़ाये जाते हैं । एक पुराण में लिखा है कि भगवत् जगदीश का प्रसाद अन्न जलके सदृश नहीं भगवद्रूप है जो कोई और विचार करते हैं सो पापी हैं और उनका नाश हो जाता है ।

कथा सुरेश्वरानन्दजी की ॥

सुरेश्वरानन्दस्वामी चेले रामानन्दजी के परम भगवद्भक्त हुये और महाप्रसाद की महिमा ऐसी इस संसार में प्रकाशित की जिसके प्रभाव करके हजारों को दृढ़ विश्वास हो गया अर्थात् एकबेर राह चलते में किसी द्वेषी ने दारू व मांस का बरा बना हुआ आगे ले आकर कहा कि भगवत् का महाप्रसाद है । सुरेश्वरानन्दजी ने

भगवत्‌महाप्रसाद का नाम सुनते ही भोजन कर लिया और चल खड़े हुये पीछे से जो चेले आते थे उन लोगों ने भी देखादेखी वही आचरण किया। स्वामीजीने उनसे क्रोध करके आज्ञा की कि तुमने क्या खाया ? उत्तर दिया कि जो आपने। स्वामीजी बोले कि हमने महाप्रसाद का भोग लगाया है यह तो मांस निकला और स्वामीजी के उदर से तुलसी और गंगाजी की रेणुका निकली, तब चेले चरणों में पड़े और भगवद्भजन व महाप्रसाद का विश्वास हुआ। निश्चय करके समर्थ को विष भी अमृत है और असमर्थ को अमृत विष तुल्य है, सो शिवजी ने हलाहल पान कर लिया अब तक उनके कण्ठका आभूषण है और राहु ने अमृत पान किया कि उसका शिर काटा गया।

कथा श्वेतद्वीपनिवासी भक्तों की ॥

श्वेतद्वीप भगवत् का विहारस्थान है और जो भगवद्भक्त शास्त्रों में चिरंजीव लिखे हैं विशेष करके इसी द्वीप में रहते हैं। एकबेर नारदजी उस द्वीप में गये और ज्ञान उपदेश करने को चाहा भगवत्‌ने रोकदिया कि यहां के रहनेवाले मेरे प्रेम और भक्तिभाव में आनन्द रहते हैं उससे अलग नहीं हो सकते, तुम अपनी ज्ञानकहानी कहीं अन्यत्र आरम्भ करो। नारदजी उदासीन वैकुण्ठ में गये और वृत्तान्त कहा, नारायण ने आज्ञा की कि सत्य करके श्वेतद्वीप के रहनेवालों का यही वृत्तान्त है सो चलके अपनी आखों से देख लेव और भगवत् नारदसमेत वहां आये। सरोवर के किनारे एक पक्षी को देखा कि भगवद्ध्यान में था, नारायण ने नारदजी से कहा कि यह पखेरू ऐसा भक्त है कि हजारवर्ष से इसने जल पान नहीं किया इस हेतु कि भगवत् का भोग लगा हुआ जल नहीं मिला और बिना भगवत्‌प्रसाद के कुछ खाता पीता नहीं। परीक्षा निमित्त भगवत् ने थोड़ासा जल अपना प्रसादी करके सरोवर के किनारे डाल दिया कि उस भक्त ने तुरन्त उस जलको अपनी चोंच में उठाकर पान किया। नारदजी ने उस पक्षी की परिक्रमा करी और सेव्य व पूज्य समझकर प्रेम में पूर्ण हुये। फिर आगे चले और भगवत्‌मन्दिर देखा कि उस समय आरती होकर मन्दिर का द्वार ताला मङ्गल होगया था। एक जन को उस मन्दिर की ओर शीघ्रता से आते हुये देखा पूछा कहां जाता है ? उत्तर दिया कि भगवत् आरती के दर्शनों के लिये जाता हूँ। नारायण ने कहा कि आरती हो चुकी और द्वार मन्दिर का ताला मङ्गल हो गया। वह तुरन्त सुनते ही धरती पर गिर पड़ा और मर गया। तिसके पीछे उसकी स्त्री आई नारायण ने कहा कि तेरा पति मर गया उसका क्रियाकर्म करना चाहिये। स्त्री ने उत्तर दिया कि तू क्या भगवत् से विमुख है कि भगवत् के दर्शनों पर क्रियाकर्म को पति के विशेषताई बतलाता है। नारायण ने उत्तर दिया कि भगवत् आरती होचुकी वह स्त्री सुनतेही तुरन्त अपने पति के सदृश मरकर हो गई तिसके पीछे पुत्रादिक गृहके लोग आये

तौलकी बराबर वही बहुत है। जब उस सोने की बाली के साथ भगवत्मूर्ति को तौलने लगे तो बालीवाला पलरा धरती पर हो गया व भगवत्मूर्तिवाला पलरा स्वल्पता से ऊपर उठ गया। पुजारी सब लज्जित होकर अपने घर को चले गये। रामदासजी ने भगवत् को अपने घरपर लाकर विराजमान किया और सेवा भजन करने लगे। इस चरित्र से प्रकट है कि राजा बलि के यहां तो उसके बांधलेने के पीछे उसके यहां टिके और यहां तो रामदासजी के घायल होनेके पीछे टिके और सदा भगवत् के यहां रहनेका यह चिह्न है कि अब भी भगवत्मूर्ति किसी और आदमी से नहीं उठती, जब कोई रामदास के वंश में का उठाता है तो तुरन्त उठ आती है। मन्दिर की मरम्मत के समय इस बात की परीक्षा होचुकी है।

निष्ठा नवीं।

जिसमें महिमा लीलानुकरण अर्थात् रामलीला व रासलीला इत्यादि सब भक्तों की कथाएं हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की चक्ररेखा को दण्डवत् करके कमठ अवतार को दण्डवत् करता हूँ, कि समुद्र मथने के समय वह अवतार समुद्र में प्रकट करके मन्दराचल पहाड़ को अपनी पीठपर धारण किया और देवताओं के दुःख दूर किये। रासलीला, रामलीला व नृसिंहलीला बनाकर जो भगवत् का आराधन पूजन करते हैं उसका नाम लीलानुकरण है। यह निष्ठा परमपुनीत ऐसी है कि सैंकड़ों हजारों महापापी जिसके प्रभाव करके भगवत्-परायण हुये और भागवत से प्रसिद्ध है कि जब रासलीला के प्रारम्भ में भगवत् गोपियों से अन्तर्द्धान हो गये तो वे मतवारी विरह व बावरी रूप अनूप की होकर वन और कुञ्जन में सब द्रुम और लता गुल्म से पूछती हुई ढूँढ़ने लगीं और रोना, आंसू बहाना, विनय-प्रार्थना, गिड़गिड़ाना व स्तुति जो कुछ उपाय सूझ पड़ा सब करीं, पर भगवत् प्रकट न हुये। नितान्त सब गोपियां भगवत् के किये हुये चरित्रों को करने लगीं, अर्थात् कोई गोपी तो श्रीकृष्णरूप बनी और कोई बालक और कोई गऊ और कोई बछड़ा और जिस प्रकार जन्मोत्सव से लेकर जो जो लीला भगवत् ने करी थी सब करीं, भगवत् प्रसन्न होकर प्रकट हुये, तो सिद्धान्त यह बात होगई कि भगवत् अपने लीलानुकरण से ऐसे रीझते हैं कि आप प्रकट होआते हैं। किन्तु रासलीला भगवत ने आप आज्ञा देकर संसार में प्रकट करी कि यह वृत्तान्त नारायणभट्टजीकी कथा में लिखा गया, इससे भी निश्चय होता है कि भगवत् को अपनी लीलानुकरण अपने निज चरित्रों के सदृश प्यारा है और प्रसिद्ध है कि शास्त्रों में मूर्ति की उपासना व पूजन के निमित्त आज्ञा है और वह मूर्ति पाषाण, दारु व धातु इत्यादि की होती है और आदमी आप उनको बना लेते हैं और बहुत

गीताजी में लिखा है कि जहां जाय के फेर नहीं संसार में गिरता है वह धाम मेरा है। भागवत में लिखा है कि भगवद्धाम में पहुँचकर जीव निश्चल होजाता है और फिर जन्म नहीं होता। पद्मपुराण, स्कन्दपुराण व वाराहीसंहिता में लिखा है कि भगवद्धाम में पहुँचकर मुक्त होजाता है और दूसरे पुराण सब इसमें युक्त हैं और वेद की श्रुति और कितने ही उपनिषद् हैं वे ऐसी ही आज्ञा करते हैं, बहुत विस्तार का प्रयोजन नहीं जिस किसी ने एक पुराण भी सुना होगा उसको महिमा व बड़ाई भगवद्धाम की अच्छी प्रकार समझ में आगई होगी, सो वह परमधाम श्रीसंप्रदायवालों के निश्चय में वैकुण्ठ है व राम उपासकों के विश्वास में अयोध्या, साकेत, सांतानक व कृष्णउपासकों के विश्वास व सिद्धान्त में गोलोक। इसीप्रकार सब उपासक अपने अपने इष्ट का धाम उसी गुण व महिमा सहित वर्णन करते हैं और स्मार्तमतवालों का सिद्धान्त यह है कि वे लोग उस धाम को ब्रह्मलोक कहते हैं और उनका निज इष्ट जो देवता होता है उसका धाम सबसे अतिऊपर मानते हैं और दूसरे देवताओं का नीचे; जैसे मनुष्यशरीर में हाथ-पांव अर्थात् अङ्ग अंगी भाव रखते हैं और कोई कोई को यह निश्चय है कि वह धाम सच्चिदानन्दघन भगवद्रूप एक है कोई अन्यस्थान नहीं है, जिस प्रकार भगवत् अपने वाक्य के अनुसार कि जिस भावसे जो कोई उसका भजन सेवन करता है उसको उसी रूप से उसी प्रकार मिलता है, इसी भांति वह धाम भी जब भक्त उस धाम में पहुँचते हैं उनके भाव व विश्वास के अनुरूप दिखाई देता है। भगवत् ने गीताजी में कहा है कि जो जिसभाव से मेरे शरण होते हैं उनको उसी भाव से मिलता हूँ। नारायण उपनिषद् और कई उपनिषद् व सहस्रशीर्षा आदिसे भी यही बात प्रकट होती है, सो जब कि भगवत् अपने भक्तोंके भाव के अनुसार प्रकट होता है तो भगवत् का धाम भी कि भगवत् का रूप है वैसाही होना उचित है। भगवत् के प्राप्त होने में जो आनन्द है, वही इस धाम में सर्वकाल व सब घड़ी सबको प्राप्त रहता है कि जिसका वर्णन किसी प्रकार किसीसे नहीं होसकता। शास्त्रों में जो स्वर्ग व पृथ्वी पर धन व राज्यादिक हजारों सुख लिखे हैं वह सब उस धाम के करोड़वां अंश के सुख को नहीं तुलते। अब यह वर्णन विस्तारसहित व निश्चय करना उचित हुआ कि मधुपुरी व अवधपुरी काशी आदि जो धाम व पुरी धरती परहैं क्या हैं? सो जाने रहो ये धाम वही हैं जिनका वृत्तान्त ऊपर लिख आये, तनक बाल बराबर भी उस धाम और इन धामों में भेद नहीं बरु वैकुण्ठधाम से इन धामों की एक प्रकार से विशेषता है काहे से कि वह धाम तो ऐसा है कि जब मनुष्य अच्छे प्रकार विश्वास दृढ़ करके उपासना करे और सब ओर से मन को एकाग्र करके लगावे तब न जाने कितने जन्मों में मिलता है और यह धाम वह है कि कैसे ही पापी व अधम ने उनकी शरण को लिया वह

भगवत् को जा मिला और किसी जन्म में एक बेर भी उन धामों में रहा उसके प्रताप से संगति को पहुँचा और विचार करना चाहिये कि वह ईश्वर जिसको वेद "नेति-नेति" कहते हैं अपने निजधाम को छोड़कर इन धामों में आता है और अब भी विराजमान है, तो बड़ाई इन धामों की है कि उस धाम की ? जो यह कहो कि भला जो यह धाम भी उसी परमधाम के सदृश हैं तो जो आनन्द और सुख वहां है वह क्यों नहीं ? सो जाने रहो कि सम्पूर्ण सुख व शोभा इन धामों में सदा है और इन्हीं धामों के प्रभाव करके उस धाम का सुख व शोभा व आनन्द जीव को मिलता है, जितना आराधन व प्रीति उस धाम के प्राप्त निमित्त होती है उससे आधा व चौथाई भी इन धामों में विश्वास करके होय तो तुरन्त बेड़ा पार हो जावे। विश्वास और हृदय की आंखों को खोलकर देखना चाहिए कि तनकभी भेद नहीं है। जीवगोस्वामी की कथा में वर्णन होगा कि वृन्दावन की शोभा की तनक झलक बादशाह को दिखलाई और हरिदासजी का वर्णन है कि उस समय के बादशाह को उन्होंने भी व्रज की छवि और शोभा को दिखाया था और एक कोना सीढ़ी किसी घाट का टूटा था कि सातों बादशाहत के धन से भी उस सीढ़ी का बनना बादशाह ने कठिन समझा था, सो विश्वास और प्रीति दृढ़ यही मुख्य है और जैसे २ मन निर्मल और विश्वास की बढ़ती होती जाती है तैसे ही शोभा और सुख की बढ़ती होती है, अर्थात् हृदय के नयन से दिव्यरूप की शोभा धाम की देखने में आवेगी। यह कहो कि भला इन धामों को परमधाम के सदृश लिखते हो और यहाँ के रहनेवाले ऐसे शठ और धूर्त व कुचाली बहुत देखने में आते हैं कि सारे संसार के पापियों के शिरोमणि हैं और उचित यह था कि यह लोग ऐसे होते कि जिनके दर्शन करतेही पापीलोग पापों से छूटजाते, सो इसका क्या कारण है ? सो जाने रहो कि रहनेवालों के बुरे आचरण देखने से भक्तों को विश्वास से शिथिल होना उचित नहीं है, क्योंकि धामवासियों के अपकर्म से भी भगवद्रूप होना उन धामों का अच्छे प्रकार निश्चय होगया, अर्थात् भगवत् कल्पवृक्ष के सदृश हैं सबके भाव के अनुसार फल देते हैं, सो उन बसनेवालों की रुचि समय के कारण करके पाप में हुई तो भगवत् ने उनकी चाहना के अनुसार पापों की बढ़ती को करदिया और इस विवाद से निश्चय होगया कि यह धाम कल्पवृक्ष के सदृश भगवद्रूप है। अब यह शङ्का उचित आई कि जो इन लोगों के पापों की बढ़ती हुई तो ताड़न व शासन भी बहुत होगा और जब कि दूसरों से अधिक ताड़ना हुई, तो यह धाम ही दुःख-दायी हुआ, मुक्तिदायक प्रभाव क्या हुआ ? और जो दण्ड न होगा तो शास्त्रों में जो आज्ञा विधि-निषेध लिखी हैं वह सब व्यर्थ हो जावेंगी, सो जाने रहो कि रहनेवाले लोगों को पूर्ण फल भगवद्धाम सेवन का मिलेगा और शास्त्रों की मर्याद भी बनी रहेगी, किस प्रकार कि शास्त्रों के वचन से प्रसिद्ध है कि जो और

जगह के रहनेवाले पापी पातकी हैं वह लाखों करोड़ों वर्षों तक नरकों में रहेंगे और चौरासीलाख योनियों में न जाने कितने-कितने बेर जन्म पावेंगे और नाना प्रकार का दुःख भोगना होगा और इन रहनेवालों को एकही शरीर में थोड़े ही काल जोकि प्रमाण शास्त्र में लिखा है दण्ड घोर होकर उन पापों से छूट जावेंगे और भगवत् को प्राप्त होंगे। जाने रहो कि पहले चेष्टा उन लोगों के पापों की ओर युक्त हुई रही इस हेतु पापों की वृद्धि पहले हुई, पीछे उसको धाम से अपना यह प्रताप किया कि सब पापों से शुद्ध करके परमधाम को पहुँचाय दिया। विचार करना चाहिए कि जो कर्म भले होंगे और भगवद्धाम में विश्वास दृढ़ होगा तो क्यों बिना दण्ड के वह परमधाम को प्राप्त न होगा और बढ़ती विश्वास और पुण्यों की पहले क्यों न होगी। अब इस बात का उत्तर लिखना चाहिए कि बहुत यात्री ऐसे देखने में आये कि यात्रा करने पर आगे से और अधिक स्वभाव कठोर व पापोंकी चेष्टा करने वाले हो गये, सो जाने रहो कि कल्पवृक्ष का वृत्तान्त यहां भी समझ लेना चाहिये, जैसे विश्वास और मन से वे लोग यात्रा करते हैं वैसे ही कार्य में बढ़ती हो जाती है। रीति धामों की यात्रा और वहां के रहने की विधि थोड़े में यह है कि विश्वास शुद्ध उस धाम में होय और जिस दिन से यात्रा करे काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि मनसे दूर करे, मुख से भगवत् का नाम और हृदय से भगवच्चरित्रों का चिन्तवन होय और सत्संग हरिभक्तों का होवे। संयम, नियम, शम, दम, तितिक्षा, सत्य, दया, मैत्री व उदारता निश्चय चाहिए और जब वहां पहुँचे तो वहां के रहनेवालों और सब द्वार व दीवार को भगवन्मय समझ और जो कुछ दान, पूजा, स्थान, व्रत आदि कर्म करे, सब भगवत्अर्पण करके फल की चाहना न करे और ढूंढ़के भगवद्भक्तों का सत्संग करे कि तीर्थयात्रा में सत्संग सार है। जब इस प्रकार यात्रा और वहां वास करे तो पूर्ण फल मिलने में क्या संदेह है? और जो ऊपर लिखने के अनुसार न हो सके तो धाम में विश्वास, भजन व सत्संग में प्रीति और अपकर्मों से निवृत्त रहना उचित है कि भला कुछ ठिकाना लगे और उत्तम नति को पहुँचे। अब उन लोगों की यात्रा का वृत्तान्त सुनिये कि जो लोग साधारण व थोड़ी पूंजीवाले हैं उन्होंने तो जब समय यात्रा व पर्व की आई तो यह चर्चा आरम्भ की कि अबकी बेर बड़ा भारी मेला होगा और अच्छा नयन विश्राम होगा कि चारों ओर से सब भांति के लोग चले जाते हैं; यह मन करके दश पांच एकसंग के मिलकर चले, पन्थ में सिवाय व्यार्थालाप और हँसी व ठट्ठे व वाहियात बोलने व अनाप शनाप बकने व हुक्का पीने के और कुछ न किया। जब धाम में पहुँचे तो मेले के देखने में लगे और जब तीर्थस्नान को गये तो स्त्रियों के देखने व ताकने में मन लगाया और चले तब किसी स्त्री के पीछे पले कुत्ते के सदृश हो लिये और उसके टिकान्त तक पहुँचाय आये और जो भगवत्मन्दिर में दर्शन

को गये भजन ध्यान इत्यादि न बना, कोठा-अटारी और दूसरी २ लीला देखते फिरे फेर क्रय-विक्रय करने लगे और सत्संग न ढूंढ़ा। अपने मन की रुचि के अनुसार भँगेरे व चरसवाले व दूसरे कुसंगियों को ढूंढ़ने लगे व हरिभजन व कीर्तन को न किया, नाच राग लड़कों आदि के देखते फिरे। जब टिकान्त पर आये तो आपस में बैठकर जो स्त्रियां कि दिन में देखी थीं उनकी चर्चा करते रहे, अथवा वहां के रहने वालों की निन्दा व वणिक्लोगों के ठगपने के वर्णन करि फिरि सो रहे। जै दिन वहां रहे यही आचरण रक्खा और जो स्नान व यात्रा के फल को मांगा तो अपने भाग्य व कर्म के अनुसार और धनवान् यात्री ऐसे हैं कि जब यात्रा की मानस करी तो पहले ही उसके फल की चाहना कर ली कि अमुक कार्य हमारा होगा अथवा बेटा होगा व धन मिलेगा अथवा चाकरी व द्रव्य उत्पन्न की जगह मिलेगी और रास्ते में सिवाय वार्ता डिगरी, डिसमिस, मुकद्दमा अथवा जवाबदावा व रद्द जवाब का वर्णन अथवा स्तुति, निन्दा, मित्र, शत्रु व बादशाहों के व हाकिमों की करनी की कथन व रस की काव्य, विरह की जलन, खाने पहिरने की रचना व सुन्दरता की इसी प्रकार की बेठौर ठिकाने के और कुछ मुख से न निकला। जो हजार में एक दो को विष्णुसहस्रनाम या महिम्न कण्ठ हुआ तो नहाने के पीछे कभी पाठ करलिया नहीं तो कुशल क्षेम और जब धाम में पहुँचे तो घोड़े और बैल व दुशाले व सामग्री आदि का लेन देन प्रारम्भ किया, अथवा कोठा, अटारी, फुलवारी देखते फिरे या मित्र, हाकिम व ओहदेदार चाकर या बड़े लोग जो मेले में आये रहे उनको ढूंढ़ ढूंढ़ मिले या और लोग मिलने को आते रहे और जो स्नान को किसी तीर्थ पर गये तो मांगनेवालों के डर से शरीर को भिगोकर तुरन्त चल दिये। जो कुछ दान दिया तो हजार आदमियों को दिखलादिया और हजारों से वर्णन किया और यह चाहना की कि इस दान के प्रभाव से अमुक-अमुक कार्य सिद्ध होयँ और जो कोई साधु ब्राह्मण मांगने को आया तो रुपया पैसा देने की जगह गालियां दी और कहा कि देखो कैसा मोटा संडा है, घास खोदकर नहीं खाया जाता, संत के धन पर कमर बांध रक्खी है और जो मन्दिर व शिवालय में दर्शनों के निमित्त गये तो सब मनोरथ मांगे और शेष आचरण पहले लोगों की भांति। तात्पर्य कहने का यह कि जब ऐसे आचरण से यात्रा होवे तो यह फल जो शास्त्रों में लिखा है किस प्रकार इस जन्म में प्राप्त होय और क्यों न वे लोग कठोर हृदय होजावें ? अभिप्राय विस्तार करने का यह है कि भगवद्धाम अर्थात् मथुरा, अयोध्या आदि निज परमधाम के सदृश हैं। विश्वास और भगवद्भजन और धाम में प्रीति उचित है जो थोड़ासी प्रीति और भगवत् के मिलने की चिन्ता होगी तो निश्चय करके बहुत शीघ्र भगवद्भक्ति की बढ़ती होकर भगवत् की प्रीति सहज में होजा-वेगी। हे मन ! जो बात कि ऊपर लिख आया स्मरण रखना योग्य है, नहीं तो

सबसे अधिक तेरी दुर्दशा होगी। वह समाज जो ग्रन्थ के प्रथम भूमिका के अन्त में लिख आया जो अनुक्षण हृदय के नयनों के आगे रक्खेगा तो किसी यात्रा आदि के बिना किये ही सब कुछ तेरे आगे हाथ बांधे आज्ञा के अनुवर्त्ती हैं तेरे समान दूसरा कोई न होगा किस हेतु कि भगवद्धाम उसी का नाम है कि जहां भगवत् विराजमान हैं।

कवित्त ॥

श्यामघन तन पर विद्यु से दशन पर, माधुरी हँसन पर फँसन खगी रहै।
घुरवाले भालपर लोचन विशालपर, अरु वनमालपर जुगुत जगी रहै॥
जङ्घयुग जानुपर मञ्जुल मुखानपर, श्रीपतिसुजान मतिप्रेमसों पगी रहै।
नूपुर नगनपर कञ्जसे पगनपर, आनँद मगन मेरी लगन लगी रहै॥ १॥

कथा कागभुशुण्डिजी की ॥

महिमा और कथा कागभुशुण्डिजी की जितनी पुराणों में लिखी है उतनी थोड़े में लिखने की समवाई नहीं है, परन्तु प्रयोजनमात्र धामनिष्ठा के लिखता हूँ कि वे पूर्व शूद्रवर्ण अयोध्यावासी हुये, किसी दुःख पड़ने से उज्जयिती में जारहे। शिवमन्दिर में जप करते समय गुरु आये, दण्डवत् न किया। शिवजी ने शाप दिया कि दशहजार वर्ष सर्पादिक योनि में इसका जन्म होय। पीछे गुरु ने स्तुति बहुत करी शिवजी प्रसन्न हुये वाणी भई कि हे ब्राह्मण, परउपकारी! वर मांग। ब्राह्मण ने प्रथम भक्ति मांगी फिर उस शूद्र के कल्याण की विनय करी। आज्ञा हुई कि तथास्तु और शूद्र को आज्ञा हुई कि तेरा जन्म अयोध्यापुरी में हुआ है व अयोध्यापुरी का यह प्रताप है कि किसी जन्म में एकबेर अयोध्या बस जावे निश्चय रघुनन्दन स्वामी का भक्त होकर कृतार्थ और जन्म-मरण के दुःख से छूट जाता है, सो भगवत् का वचन है कि यद्यपि सबने वैंकुण्ठ का वर्णन किया है, परन्तु अयोध्या के बराबर प्यारा नहीं, सो उस अयोध्यापुरी के प्रताप और मेरी कृपा से वह परमगति तेरी होवेगी कि जिसका कभी क्षय न होवे। अर्थात् श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणकमलों में निश्चला भक्ति होगी, परन्तु आगे पर किसी साधु-ब्राह्मण का निरादर न करना, ये ईश्वर के तनु हैं, जो कोई इन्द्र के वज्र व हमारे त्रिशूल से भी न मरे सो ब्राह्मणों की क्रोधाग्नि से भस्म होजाता है। तिसके पश्चात् शिवजी की आज्ञाके अनुसार काग-भुशुण्डि ने वह देह पाई अन्तमें ब्राह्मण के वंश में जन्म हुआ। माता-पिता मरगये तब वन को गमन किया, जहां कोई ऋषीश्वर मिलता उनसे श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरित्रों को पूछते। फिर लोमश ऋषीश्वर के दर्शन हुये और उनसे वही अभिप्राय अपने मन का पूछा। ऋषीश्वर ने पहले कुछ सगुण उपासना का वर्णन करके निर्गुण ब्रह्म का वर्णन आरम्भ किया। कागभुशुण्डि ने कहा कि महाराज सगुण उपासक हूँ, रामचरित्ररूपी जल से मेरा मन मीन के सदृश अलग नहीं हो सकता। ऋषीश्वर ने थोड़ीसी सगुण उपासना वर्णन करके फिर निर्गुण ब्रह्म का वर्णन आरम्भ किया।

कागभुशुण्डि ने उस निर्गुण मत को खण्डन करके फिर सगुण उपासना को दृढ़ किया। इसी प्रकार से संयोग वादविवाद की पहुँच गई, तबतो ऋषीश्वर क्रोध करके बोले कि कौआ की भांति अपनी ही कांव,कांव करता है मेरी सांची बात को नहीं सुनता। इस हेतु तुरन्त काग की देह तेरी होजाय सो उसी घड़ी काग का शरीर होगया व भगवद्भक्तों को किसी के साथ वैर व शत्रुता नहीं इस हेतु कुछ सोच व चिन्ता को न किया और ऋषीश्वर को दण्डवत् करके अपनी राह ली। श्रीरघुनन्दन स्वामी ने इस परीक्षा में जब कागभुशुण्डिजी को सच्चा पाया तो लोमशऋषीश्वर के मन में दया को उपजाय दिया अर्थात् ऋषीश्वर यह सहिष्णुता व धीरता कागभुशुण्डिजी की देखकर लज्जित हुये और अपने पास बुलाकर आश्वासन किया। बालरूप भगवत् की उपासना व राममन्त्र का उपदेश किया व रामचरित्र सुनाकर यह आशीर्वाद दिया कि रामभक्ति दृढ़ तुम्हारे हृदय में बसी रहेगी व रघुनन्दन स्वामी के प्यारे होंगे व जो इच्छा करोगे सो सब पूर्ण हुआ करेगी व मृत्यु तुम्हारे आधीन रहेगी। ज्ञान वैराग्य सदा रहेगा और तुम्हारे स्थान के चार चार कोस तक माया नहीं व्यापेगी। रघुनन्दन स्वामी के गुप्त चरित्र हैं सो अनायास सब तुमको प्राप्त रहेंगे। जब यह आशीर्वाद ऋषीश्वर ने दिया तो आकाशवाणी हुई कि ऐसाही होगा कि यह मेरा अनन्य भक्त है। पीछे कागभुशुण्डिजी ने ऋषीश्वर के चरणों को दण्डवत् करके नीलाचल पर्वत पर, जो कि सुमेरु के निकट है, जाकर निवास किया और बहुत कल्प व्यतीत हुये अब तक वहां बने हैं। रघुनन्दन स्वामी के कीर्तन में सदा रहते हैं जिनके सत्संग से महाअधम जीव भी जीवन्मुक्ति की पदवी को पहुँच गये और शिवजी महाराज ने हंसरूप होकर रामचरित्र सुना और गरुड़जी भगवत् के नगीची होकर ऐसी माया में पड़गये थे कि शिवजी व ब्रह्मा भी उपदेश न कर सके परन्तु कागभुशुण्डिजी ने ऐसी कृपा करी कि माया दूर हो गई। एक बेर काग-भुशुण्डिजी को यद्यपि वरदान सब प्रकार का पाये रहे पर भगवत्माया ने ऐसा नचाया कि बुद्धिका दीपक ठण्ढा होगया और यह कथा सब पुराणों में लिखी है। परन्तु हरि की माया भगवद्भक्तों का कुछ बिगाड़ नहीं सकती काहे से कि भगवत् आप रक्षा करते हैं, इसी कारण उस माया से भी परम कल्याण कागजी का हुआ। जाने रहो कि जब भक्त को थोड़ा भी अभिमान उत्पन्न हो जाता है तब भगवत् अपनी माया से उस अहंकार को दूर कर देते हैं जो ऐसा न करें तो वह भक्त दोनों लोक से जाता रहे, जैसे बालक के गुमड़े को उसकी माता चिरवाती है और वह थोड़ीसी पीड़ा होने से सदा का दुःख दूर होजाता है, सो भक्तों को किसी प्रकार का कष्ट और दुःख होना कारण बढ़ती भक्ति और परमकल्याण का दायक है। भगवद्धाम की यह महिमा है कि जिस पद को ब्रह्मादिक भी नहीं पहुँचते सो पदवी सहज में प्राप्त होती है।

कथा भगवन्त की ।।

भगवन्तजी आगरे के सूबाके दीवान भगवद्भक्त ऐसे हुये कि कुन्जविहारीजी के चरित्र व उनका स्वरूप व प्रियाप्रियतम के आपस की प्रीति व प्रेम में दिनरात मग्न रहते थे और सिवाय प्रियाप्रियतम के दूसरी ओर भूल के भी चित्त नहीं जाता था, विधि-निषेध से न्यारे होकर युगलस्वरूपके माधुरी रस में छके रहते थे, वैष्णवीरूप धारण किये हुये भजन व भाव का मन में विश्राम रखते और श्रीवृन्दावन धाम में प्रिया-प्रियतमके तुल्यभाव था, जो कोई वहां का रहनेवाला उतरता तो उसको भगवद्रूप जानकर द्रव्य व अच्छे पदार्थ आगे धरते। एक बेर स्वामी हरिदासजी अधिकारी मन्दिर गोविन्ददेवजी के प्रेम व भक्ति में अद्वैत व भाव में अनन्य व भगवन्तजी के गुरु रहे व भगवत् ने आप जिनसे दूध व भात मांग करके भोग लगाया, आगरे की ओर आये। भगवन्त सुनकर बड़े आनन्दित हुये, अपनी स्त्री से मंत्रणा किया कि भेंट क्या दिया चाहिये। उस बड़भागिनी ने उत्तर दिया कि एक एक धोती शरीरपर रख लेव और सब घरबार, सम्पत्ति, हाथी, घोड़े भेंट करदेव। यह सुनकर भगवन्तजी स्त्री से बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि प्रेम और भक्ति का रस भगवत् ने तेरे ही भाग में दियाहै। यह विचार इन दोनों का स्वामी हरिदासजी ने भी सुना अति प्रसन्न हुये परन्तु उनका धन सम्पत्ति लेना अनुचित समझकर उनके यहां न गये, श्रीवृन्दावन को लौट आये। भगवन्तजी गुरु के नहीं आनेसे बड़े उदासीन व शोकयुक्त होकर सूबे से बिदा मांगि वृन्दावन को आये। यात्रा इत्यादि करके भांति भांति भगवद्भाव व चरित्रों के सुनने से आनन्दित हुये व आप भगवच्चरित्रों की रचना करके भगवत् भेंट किया। एक बेर व्रजवासी सब चोरी के कारण आगरे के कारागार में बद्ध रहे, भगवन्तजी ने जाकर छुड़ा दिया। एक बेर व्रजवासियों ने भगवन्तजी की सब वस्तु को चुरा लिया, बड़े आनन्द व प्रेम में मग्न होगये कि उस चित्तचोर मनमोहन नन्दकिशोर ने मेरे धन को गोपियों के माखन के सदृश समझा, ऐसा भाव भगवन्तजी का! अब उनके पिता माधवदासजी का वृत्तान्त सुनिये कि जब उनके देहान्त का समय आया, चेष्टा पहिचानकर लोग पालकी में डालकर वृन्दावन को ले चले, आधी दूर जब पहुँचे तब सुधि भई पूछा कहां लिये जाते हो? उत्तर दिया कि जिस धाम का रात दिन ध्यान करते रहे तहां ही लिये जाते हैं। माधवदासजी ने कहा कि शीघ्र लौट चलो, मेरा शरीर वृन्दावन के योग्य नहीं। विचार करो कि जब यह शरीर जलाया जायगा और दुर्गन्ध उठेगी, प्रियाप्रियतम के खेल और विहार में भंग होगा, कदापि इस शरीर को वृन्दावन में लेजाना उचित नहीं और वृन्दावन में जाना ही है तो आपसे आप जानेवाला युगलस्वरूप को पहुँच जावेगा। यह कहकर तन को छोड़ दिया व नित्य विहार में जा मिले।

कथा हरिदासजी की ।।

हरिदासजी जाति के बनिये रहनेवाले काशी के निकट के राधावल्लभी संप्रदाय में परमभक्त व अगणित गुण व गूढ़ भगवच्चरित्रों का सार जाननेवाले हुये, मानो पलरेसे मुख्य अभिप्राय शास्त्रोंकी घटती बढ़ती देखा करते रहे, जिन्होंने डङ्का देकर अपने प्रण को पूरा किया और राधावल्लभजी के भजन का प्रताप दिखाया। भगवद्भजन में दृढ़ व कलियुग में कामधेनु के सदृश रहे। हरिदासजी ने प्रण किया था कि वृन्दावन में देह त्याग करें। संयोगवश ज्वर हुआ और वैद्यलोगों ने औषध देने से हाथ खींचा, तब डोली में बैठकर भगवच्चरणारविन्द में मन लगाकर वृन्दावन चले। बीच में तन छूट गया परन्तु प्रण पूर्ण करने के निमित्त वैसाही शरीर बनाकर वृन्दावन में आये और श्रीराधावल्लभलालजी व गोसाईं सुन्दरदास अपने गुरु के प्रेम और भाव से दर्शन करके सत्संग और भगवच्चरित्रों के सुख लिये और चीरघाट पर स्नान करके उस देह को छोड़ दिया व साथी सब लाश को दग्ध करके रोते व शोकयुक्त वृन्दावन में आये। सब वृत्तान्त उनके गुरु और सबसे कहा, गोसाईंजी ने कहा कि तुम उनके प्रण की चिन्ता कदापि मत करो, कल्ह हरिदासजी हमारे पास आये बोल बतराय करके व भगवद्दर्शन करके स्नान यमुनाजी का किया व देहत्याग दिया, सबको भगवद्भजन का विश्वास हुआ। इस चरित्र में जो किसी को शङ्का होय कि जो हरिदासजी ऐसे समर्थ रहे कि दूसरा शरीर धारणकर लिया तो पहले शरीर से क्यों नहीं वृन्दावन में आये ? सो जाने रहो कि हरिदासजी को कुछ ऐसी लाग अपने प्रण पूरे होने की नहीं रही चाहे पूरा हो या न हो, परन्तु आप भगवत् को उनके प्रण पूर्ण होने की लाग पड़ी, क्योंकि पद्मपुराण आदिक में वचन भगवत् का है कि मेरे भक्त जो चाहना करते हैं सो पूर्ण किया करता हूँ। सिवाय इसके भगवत् को यह बात फैलानी जगत् में थी कि मेरे भक्तों का प्रण कभी नहीं विचलता है। एक तन छूटा तो क्या हुआ दूसरे तन से वृन्दावन में पहुँच गये।

कथा मधुगोसाईंजी की ।।

मधुगोसाईंजी मधु श्रीरंग विख्यात थे, परमरसिक प्रिया-प्रियतम व श्रीवृन्दावन के हुये, दर्शन की चाह व वृन्दावनवास के निमित्त घरबार छोड़कर बंगाले से वृन्दावन में आये। जब यात्रा व दर्शन कर चुके तब चाहना साक्षात् दर्शनों की हुई और व्रजकिशोर-किशोरी की परम मनोहर मूर्ति के ध्यान में छके हुये सब वन व कुञ्ज में ढूँढ़ने फिरने लगे, दिन-रात, खाना, सोना, शीत-उष्ण का विचार निर्मल मन से दूर किया। जब महाराज ने भक्तिभाव व प्रीति ऐसी अपने भक्त की देखी तो यमुना के किनारे वंशीवट के निकट इस स्वरूप से दर्शन दिया कि परम शोभायमान श्यामसुन्दर स्वरूप माथे पर मुकुट, कानों में कुण्डल, स्वर्णतारों

का बागा व घुटन्ना पहिने हुये व मणिगण के आभूषण सब अङ्गों पर शोभित, एक हाथ में मुरली और दूसरे में छड़ी, अपने सखाओं के संग हँसी खेल कर रहे हैं। गोसाईंजी को यह रूप अनूप देखकर कुछ सुधि न रही, ब्रह्मानन्द में मग्न होकर बेसुधि दौड़े व चरणारविन्द में लिपट गये। उनके भाग्य की बड़ाई किस प्रकार लिखी जावे कि जिस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन के चरणरज को ब्रह्मादिक वाञ्छा करते हैं सो उनके भक्ति व प्रेम के वश होकर आप प्रकट हुये।

कथा भूगर्भ की ॥

भूगर्भजी गोसाईं परम माधुर्य उपासक हुये, घरबार छोड़कर विरक्त हो गये और वृन्दावन में आयकर निश्चल व दृढ़ वास किया, अर्थात् सिवाय उस परमधाम के दूसरी किसी ओर चित्त व चाहना न हुई। किसी पुराण का वचन है कि वृन्दावन के बाहर जो करोड़ों चिन्तामणि मिलते हों अथवा आप भगवत् मिलता हो परन्तु वृन्दावन की रज व धूलि से यह शरीर कभी अलग न होय, सो ऐसे ही दृढ़भाव से गोविन्ददेवजी की कुञ्ज में वास करके मानसीभाव से रूपमाधुरी प्रिया-प्रियतम की तिसमें बेसुधि व मग्न रहा करते। खाने पीने की सुधि भी विशेष करके भूलि जाते मन, प्राण, बुद्धि, सुधि और जितनी चित्त की वृत्ति हैं सब रूप अनूप के चिन्तन में ऐसी लगी कि दूसरी ओर कदापि न चलायमान हुई।

कथा काशीश्वर की ॥

गोसाईं काशीश्वरजी परमभक्त हुये, पहिले अवधूत रहे, पुरुषोत्तमपुरी में आये व श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चेले हुये, फिर आज्ञा से गुरुके वृन्दावन में आय प्रेम व आनन्द में मग्न व कृतार्थ हो गये। थोड़े ही दिन में उनकी भावना व प्रीति ऐसी विख्यात हुई कि श्रीगोविन्ददेवजी महाराज की सेवा-पूजा उनको मिली। उसी सेवा में रातदिन रहने लगे।

कथा प्रबोधानन्द की ॥

प्रबोधानन्द सरस्वती संन्यासी, चेले श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के, परम रसिक भक्त हुये। प्रिया-प्रियतम का विहार व कुञ्जखेल के रस को अपनी काव्य-रचना में ऐसा वर्णन किया कि जिसको पढ़-सुनकर करोड़ों प्रेम व आनन्द में मग्न हुये व होते हैं। युगलस्वरूप मुखचन्द्र में मन को चकोर की भांति लगाया और वृन्दावनवास की दृढ़ शिक्षा जगत् को लखाई कि किसी प्रकार वृन्दावन के बाहर न जावे।

कथा लालमतीजी की ॥

मनुष्य तनु को पाकर जो लाभ होना चाहिये सो लालमतीजी को हुआ कि गौड़स्वामी के चरणकमलों से अन्यत्र किसी ओर चित्त की वृत्ति नहीं जाती रही और लालमतीजी वात्सल्य उपासक जान पड़ती हैं। इसी हेतु भक्तमाल में नाभाजी

ने गौड़स्वामी की प्रीति से यह पद धरा नहीं तो प्रिया-प्रियतम अथवा किशोर-किशोरी यह पद धरते । लालमतीजी को जैसी प्रीति युगलरूप में थी वैसेही यमुनाजी से व व्रज की कुन्जों से और वंशीवट इत्यादिक भगवत् के खेलस्थान व व्रजमण्डल से रही व अचलवास श्रीवृन्दावन में करके भक्तिभाव को दृढ़ किया व यद्यपि वात्सल्य उपासना लालमतीजी को रही और गोकुलस्थों की सेवक रहीं परन्तु धर्मनिष्ठा का विश्वास और जिस विधि से वहां वास चाहिये सो सब लालमतीजी में रहा इस हेतु धामनिष्ठा में लिखा गया।

चौदहवीं निष्ठा ॥

भगवन्नाम की महिमा जिसमें पांच भक्तों की कथा हैं ॥

श्रीकृष्णचन्द्र स्वामी महाराज के चरणकमलों के षट्कोण रेखा व परशुराम अवतार को दण्डवत् है कि पृथ्वी के भार दूर करने के हेतु इक्कीसबार क्षत्रियों का वध करके ब्राह्मणों को राज्य दिया और यह अवतार जमीना गांव में वैशाख शुक्ल-तृतीया को हुआ । यद्यपि भगवन्नाम का लेना कीर्तन में है परन्तु स्मरण से सम्बन्ध अधिक है इस हेतु अलग निष्ठा स्थापित हुई और जो चार प्रकार की उपासना अर्थात् नाम, धाम, लीला, रूप शास्त्रों में लिखी हैं तो नाम की उपासना प्रथम अग्रगामी है, इस हेतु नामनिष्ठा लिखना उचित समझा । महिमा भगवन्नाम की यद्यपि सब वेद व पुराणों में वर्णन की है परन्तु पार न पासके, जैसे भगवत् की महिमा व चरित्र अनन्त हैं उसी भांति नाम की महिमा व नाम भी अनन्त हैं । शेषजी जिस नाम को नित्य नवीन वर्णन करते हैं परन्तु पार नहीं पाते, शिवजी का प्राण आधार है व संसार से उद्धार के निमित्त भगवन्नाम ही बहुत है और साधन का प्रयोजन नहीं । विशेषता यह है कि कौन कौन भाव से नाम स्मरण करें निस्संदेह भगवत् प्राप्त होता है । स्कन्दपुराण में लिखा है कि भक्ति से अथवा बेभक्ति से भगवन्नाम का उच्चारण सब पापों को नाश कर देता है जिस प्रकार महाप्रलय की अग्नि सारे संसार को भस्म कर देती है। भागवत में लिखा है कि औषध जाने या बिन जाने जिस प्रकार अपना गुण करती है उसी प्रकार भगवन्नाम । नृसिंहपुराण में भगवत् का वचन है कि जो मेरे नाम का जप करते हैं सो अपने करोड़ों पुरुषों सहित मेरे धाम को पहुँचते हैं । विष्णुरहस्य में लिखा है कि वही परमज्ञानवाला है और वही परम-तपवाला है जो भगवत् का नाम लेवे । रामरक्षा में विश्वामित्रजी का वचन है कि राम राम अथवा रामचन्द्र रामभद्र जो कोई स्मरण करते हैं उनको कभी पाप स्पर्श नहीं करता, दोनों लोक की कामना सिद्ध होती है । स्कन्दपुराण का वचन है कि राजसूय यज्ञ व अश्वमेध और अध्यात्मज्ञान इत्यादि का सारांश श्रीकृष्णस्वामी ने अपने नाम में रखदिया है अर्थात् सबका फल नाम से होजाता है। जो यह शङ्का

कोई करे कि जिस आदमी का नाम लेकर पुकारते हैं तो तुरन्त आ जाता है और ईश्वर का नाम हजारों लोग लेते हैं ईश्वर नहीं आता है इसका क्या कारण है ? सो यह हेतु कि जिस मनुष्य को पुकारा जाता है किसी प्रकार की बेविश्वासी उसके जान लेने और पहिचानने में नहीं होती है, इसी प्रकार जब नाम व नामी में दृढ़ विश्वास होगा तो निस्संदेह तुरन्त भगवत्साक्षात्कार होजायगा और एक दृष्टान्त भी है कि धर्मात्मा व न्यायकर्ता राजा की सभामें हजारों दुःख कहने को व न्याय के निमित्त जाते हैं, उसमें बहुतलोग ऐसे हैं कि न न्याय करवाने की रीति जानते हैं और न राजसभा में जाने की रीति जानते व न कोई पक्ष उनका है और न राजा का स्वभाव पहिचानते, केवल अपनी दुहाई तिहाई शोरगुल से काम है सो यद्यपि राजा के न्याय व धर्मशील स्वभाव से अपने न्याय को पहुँचते हैं परन्तु जो विलम्ब होता है सो उनलोगों की अज्ञानता से राजा का कुछ दोष नहीं । कितने लोग ऐसे हैं कि राजसभा की रीति-व्यवहार जानते हैं और राजसेवकों से पहिचान है। ऐसे लोग जब सभा में गये उसी घड़ी अपने परिश्रम व राजसेवकों की कृपा से अपना अर्थ सिद्ध कर लाये और केवल राजा की प्रसन्नता के हेतु सभा में जाते हैं व किसी प्रकार की कुछ याचना नहीं करते, ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं सो ऐसे लोगों का अर्थ राजा आप सिद्ध करदेता है, उनकी विनय व प्रार्थना का प्रयोजन नहीं होता । तैसे ही यह नाम भी है, जापक के विश्वासके अनुकूल अर्थ को सिद्ध कर देता है । यद्यपि तलवार में यह शक्ति है कि लोहे के तवे को दो टुकड़े करदे परन्तु निर्बल के हाथ से चिह्न भी नहीं उखड़ती और बली के हाथ से तुरंत दो टुकड़े हो जाते हैं, यही वृत्तान्त नाम के विश्वास का है । अब यह शङ्का उत्पन्न हुई कि बिना मन के लगाये नाम के लेने से भगवत् कैसे मिल जायगा ? सो जाने रहो कि किसी प्रकार नाम लिया जावे निश्चय करके भगवत् प्राप्त होजायगा किस हेतु कि नाम और नामी भिन्न नहीं हैं और रीति है कि नाम के पुकारने से नामी पहुँच जाता है, सो भगवत् सब जगह प्राप्त रहनेवाला नाम के पुकारने से क्यों न आवेगा ? प्रेम से पुकारे या बिना प्रेम पुकारे सो श्लोक सब इसके साक्षी ही हैं पर अजामिल की बात इस निष्ठा में लिखी जायगी कि धोखे से भगवत् का नाम लिया था सो परमधाम को गया और वाल्मीकिजी की कथा का कीर्तननिष्ठा में वर्णन हुआ है कि उनको भगवत् की महिमा का निर्मल ज्ञान नहीं रहा और न नाम की महिमा जानते रहे । जो किसी को हठ इस बातका हो कि जब प्रीति दृढ़ व एकाग्रचित्त लगेगा तभी भगवत् प्राप्त होगा तो जाने रहो कि परम्परा की रीति के अनुसार प्रारम्भ में रीति व एकाग्रचित्त की वृत्ति किसीको नहीं होती और जो होती है तो बहुत कम, पर नाम ही वह विश्वास व मन की लगन को दिन-दिन अधिक करके भगवत्पद को पहुँचाय देता है । जैसे बालपन की विद्या के अभ्यास में प्रथम न मन लगे व न प्रीति, उपाध्याय के भय

से अक्षर घोखते घोखते पण्डित होजाता है। इसी प्रकार भगवन्नाम की रटना व विश्वास कर मन की लगन बढ़ायके पद को पहुँचाय देती है। इस समय में बहुत लोग प्रकट भजन और नाम लेने को अच्छा नहीं कहते हैं व यह बात बनाते हैं कि बिना मन लगे क्या होता है ? सो वे लोग कभी किसी मनोरथ की सिद्धता को नहीं प्राप्त होते न उनके संदेह निवृत्त होते हैं, निश्चय करके बौरहे कुत्ते के सदृश हैं भूँक भूँक के मरजावेंगे। प्रथम तो उनके नाश करने को अपराध शास्त्र की आज्ञा का नहीं अङ्गीकार करना यही प्रबल है अर्थात् शास्त्रों में तो यह आज्ञा हो चुकी कि बिना मन ऊपर ही से नाम लेने से उद्धार होता है और वे लोग उसके प्रतिकूल वर्णन करें तो निश्चय करके असुर व अपराधी हुये। ऊपर ही के भजन से मन भी लगने लगता है सो जब कि उन असुरबुद्धियों को पहले ही पद से अरुचि भई तो उनको दूसरा पद कब प्राप्त होगा ? और इसी से सदा जन्म-मरण के दुःख में बँधे रहेंगे और बौरहे कुत्ते के दृष्टान्त से यह अभिप्राय है कि पापकर्मों के मद से उनकी बुद्धि जाती रही। सूक्ष्म अर्थ समझना तो अलग रहा मोटी बातों पर भी उनका विचार नहीं पहुँचता अर्थात् शीतल जल का स्नान और अग्नि का सेवन अथवा ऊपर की सुन्दर-ताई या किसी की बात अथवा सुगन्ध व ठंढी पवन व दुर्गन्ध इत्यादि तो ऊपर से हृदय के भीतर भी न जावे और भगवन्नाम ऐसा हुआ कि वह ऊपर से कहा हुआ कभी गुण न करे। धन्य उनकी समझ व बुद्धि और शोच की बात है कि प्रकट विख्यात बात पर दृष्टि नहीं होती कि पारस पाषाण को लोहा जानिके लगि जावे अथवा बिना जाने पर भी निश्चय सोना कर देता है और आग में कोई वस्तु जानिके डाले अथवा बेजाने निश्चय करके भस्म हो जाती है। अमृत को कोई जानि के पीवे अथवा बेजाने निश्चय अमर होजायगा। इसी प्रकार भगवन्नाम को कोई मनुष्य बिना जाने ऊपरसे लेवे अथवा जानिके हृदयसे, परन्तु निश्चय भगवद्रूप होजायगा। तात्पर्य यह कि चारों फल के देने को और संसारसागर से उद्धार के निमित्त मेरे स्वामीका नाम समर्थ है और किसी साधन का प्रयोजन नहीं और इससे अच्छा कोई शरण या अवलम्ब दिखाई नहीं देता है। सतयुग में भांति भांति के कर्म व त्रेता में यज्ञ आदिक और द्वापर में भगवत्पूजन इत्यादि व्यवस्थित रहा और कलियुग में कि पापरूप है बिना कृष्ण नाम के कोई उपाय अच्छा व सुखसाध्य भगवत् और शास्त्रों ने नहीं ठहराया। भगवत् का वचन है कि जब महापापी धोखे से नाम लेकर संसार-समुद्र को उतर गये तो जानिके नाम लेवेंगे उनका क्या कहना है। रामस्तवराज में लिखा है कि रामनामब्रह्महत्या को दूर करने वाला है। भगवत् का वचन है कि कैसाही किसी को दुःख हो और कैसाही विषयी और पापी हो भगवन्नाम के प्रभाव से सब पापों व दुःखों से छूटकर परम आनन्द को प्राप्त होता है, सो दोनों लोक का साधन भगवन्नाम से अधिक दूसरा दृष्टि में नहीं आता और यह बात विख्यात है

कि जब किसी को कुछ दुःख होता है अथवा कुछ कामना होती है तो वरण बिठलाते हैं और मनोरथ को प्राप्त होते हैं तो जाने रहो कि अभ्यास और जप भगवन्नाम का सर्वदा व सब घड़ी अत्यन्त प्रयोजन है व अवश्य करणीय है, परन्तु अत्यन्त आवश्यक से आवश्यक यह है कि शरीर पर साढ़े तीन करोड़ रोम हैं सो अपने जीवते भर में एकबेर प्रतिरोम एकनाम की गणना से साढ़े तीन करोड़ नाम पूरा करदेना उचित है और इक्कीसहजार छः सौ श्वासा रात दिन में चलती हैं सो इतना ही नाम नित्य जप लेना चाहिये। इस हेतु कि कोई श्वासा नाम व्यतिरिक्त गणना में न आवै। इक्कीसहजार छः सौ नाम तीन सवातीन घड़ी में पूरे होजाते हैं अर्थात् सवा घण्टे में और यह कुछ प्रयोजन नहीं कि एक जगह बैठकर लिये जावें। चलते फिरते बात करते जिस प्रकार होसके पूरे करदेने चाहिये, सो यह दोनों प्रकार का कर्तव्य उनलोगों के निमित्त लिखा गया कि जिनको नाम लेनेमें प्रीति नहीं और जिनको भगवन्नाम में प्रीति है और अनुक्षण नाम को रटते हैं उनको एकपल नाम बिना नहीं जाता, उनके हेतु कोई रीति लिखनी क्या प्रयोजन कि उनका जीवनधन भगवन्नाम है। अरे मन! तनक तू समझ और चेतकर कि तू भगवत् अंश से हुआ सदा एकरस प्रकाशमान और ज्ञानानन्दस्वरूप है कभी ऐसा नहीं हुआ कि तू न रहा हो व आगे न होगा न कभी तुझको मृत्यु है और न कभी जन्मता है परन्तु श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों से विमुख होकर इस गति को पहुँचा है कि भांति-भांति के दुःख नरक व स्वर्ग नाना प्रकार की पीड़ा चौरासी लाख योनि की तेरे मुण्ड पड़ी है। स्त्री, लड़के, धन व गृह, मित्र आदि इनको तू अपना और नित्य समझकर उनकी चिन्ता व शोच में दुःखित व मग्न रहता है सो अब तू अपने ऊपर दया और उस स्वरूप के चिन्तन में रहा कर जो कि ग्रन्थारम्भ में लिखा है कि जिस करके माया के जाल से तेरी छुट्टी होकर परमानन्द को प्राप्ति होय।

कथा अजामिल की ॥

अजामिल पूर्वजन्म का ब्राह्मण था और वन में तप किया करता था। मरती समय एक चाण्डाली में उसका ध्यान गया और मर गया। इस जन्म में भी कान्यकुब्जनगर में ब्राह्मण के घर जन्म पाया परन्तु पहले ही से पापकर्म में रत रहा। एक पुंश्चली स्त्री को देखकर आसक्त हो गया उसके साथ रहने लगा व पक्षी-मृग मारना, मद्यपान, चोरी व जुआ खेलना ऐसा ही पापकर्म जीविका थी कि वर्णन उन कर्मों का अच्छा नहीं। एक बेर भगवद्भक्त लोग बिना जाने उसके घर आये, उसने प्रेम से सब सेवा रसोईं इत्यादि की अच्छे प्रकार से करी और दीन होकर अपना सब वृत्तान्त कहकर चरण पकड़ लिये। हरिभक्तों को दया आई चलती बेर उपदेश कर गये कि अबकी लड़का उत्पन्न होय तो नारायण नाम धरना। अजामिल ने वैसा ही किया और नारायण नाम लड़के को प्यार बड़ा करता था, जब मरण समय

यमदूतों करके पीड़ित हुआ तब पुकारा हे नारायण ! तब तक नारायण के पार्षद पहुँचे, यमदूतों को मारकर निकाल दिया, अजामिल को वैकुण्ठ में ले गये । यमदूतों ने जाकर यमराज के पास दुहाई दी कि ऐसा पापी सो अपने बेटे को पुकारा कुछ भगवत् को जानकर नहीं सो पार्षद लोगों ने मारकर निकाल दिया, उसको वैकुण्ठ में ले गये । यमराज ने कहा कि जब मरने के समय किसी प्रकार भगवन्नाम लिया तो अब कौन धर्म कर्म करने को शेष रह गया तुमको इतना ज्ञान नहीं ? अच्छा हुआ जो तुम्हारा दण्ड हुआ । आगे पर जाने रहो कि जहां भगवन्नाम का उच्चारण किसी प्रकार हो वहां न जाना, क्योंकि जहां भगवन्नाम है वहां यमदूतों का क्या काम है ? अजामिल जब परमधाम को गया तब उसकी पुंश्चली स्त्री भी मन को लगाकर उसी गति को पहुँची । धन्य है भगवन्नाम की महिमा व प्रताप को, कहां अजामिल के घोर पाप व क्या पदवी केवल धोखे से नाम लेने के प्रभाव से मिली तो जानकर नाम लेने से कैसी गति मिलेगी । इस चरित्र में महिमा सत्सङ्ग और नवें अध्याय गीताजी में जो दृढ़ निश्चय करके कहा है कि मेरे भक्त का नाश नहीं सो भी प्रकट है ।

कथा एकराजा की ॥

एक राजा अन्तर्निष्ठ परमभागवत ऐसे हुये कि भगवत् का स्मरण भजन इत्यादि सर्वकाल मन ही में किया करते और बाहर की वृत्ति ऐसी थी कि सब लोग महाविषयी व संसारी जानते थे और रानी हरिभक्त रही उसको भी राजा के अन्तर्निष्ठा का वृत्तान्त ज्ञात न था, इस शोच में रहा करती थी कि राजा को किसी प्रकार भगवत् में प्रीति होती । एक दिन निद्रा में राजा के मुख से भगवन्नाम निकल गया, रानी ने उस दिन नौबत बजवाई दान पुण्य बड़ा उत्साह किया । राजा ने उत्साह का हेतु पूछा । रानी ने विनय किया कि रात आपके मुखसे भगवन्नाम निकला इसी हेतु उत्साह किया । राजा ने कहा कि मूलप्राण का तो भगवन्नाम शरीर में था जो वह ही निकल गया तो तन किस काम का है । यह कहकर तन छोड़ दिया, तुरन्त परमपद को जा पहुँचा । रानी ने जो यह गति गुप्तभक्ति और भाव राजा का देखा तो ऐसे परमपद परमभक्त के वियोग और अपने अज्ञानता के शोक से अत्यन्त विकल व बेसुध हुई कि राजा के प्रेम व भगवद्भाव में मग्न होकर प्राण त्याग के जिस परमधाम को राजा पहुँचे वहांही पहुँची । निश्चय करके जिसको भगवन्नाम से प्रीति नहीं सो मृतप्राय है और जिसको उस नाम से प्रीति है सो सदा अमर है ।

कथा एक ब्राह्मण की ॥

एक ब्राह्मण भगवद्भक्त अपनी स्त्री को मैके से लिये आता था । राह में ठगों से भेंट हुई और ठगों ने पूछने पर कहा कि जहां तुम जाते हो तहाँही हम भी जाते

हैं, सो हम सीधी राह देखे हैं तुम भी इसी राह चलो। ब्राह्मण को विश्वास न आया तब उनसे चोरों ने रामचन्द्र के नाम को बीच दिया, तब उस स्त्री ने ब्राह्मण को समझाया कि अब न मानना अयोग्य है। तब दोनों उन ठगों के साथ चले जब महाघन वन में गये ठगों ने ब्राह्मण को मारकर वस्तु सब और स्त्री को ले चले। वह स्त्री पीछे फिर फिर देखती जाय, ठगों ने पूछा कि अब पीछे कौन को देखती हो ? खसम तेरा तो मारा गया। उसने उत्तर दिया कि जो हमारे तुम्हारे बीच में है उसको देखती हूँ व सबों ने कहा कि कहने की बात है कहां अब रामचन्द्र हैं ? परन्तु उस स्त्री को दृढ़ विश्वास था तबतक धनुषधारी महाराज धनुष-बाण लिये घोड़े पर सवार पीठ ठोंक आन पहुँच व ठगों को मार व ब्राह्मण को जिलाय उन दोनों को घर के समीप पहुँचाय आप अन्तर्धान हो गये।

कथा कबीरजी की ॥

कबीरजी काशी में भगवद्भक्त ऐसे हुये कि जिनकी भक्ति और प्रताप जगत् में विख्यात है। जिन्होंने भगवद्भक्ति से व्यतिरिक्त कर्म को अधर्म जाना अर्थात् योग, यज्ञ, दान व व्रत इत्यादि बिना भगवद्भजन व भाव के वृथा समझा और निश्चय करके शास्त्रों का भी यह ही अभिप्राय व सिद्धान्त है कि और साधन शून्य के सदृश हैं और कृष्ण नाम अङ्क के सदृश है जो कृष्ण नाम अङ्क प्राप्त है तो योग, यज्ञ, दान इत्यादि शून्य, कृष्ण नाम अङ्क पर अधिक होकर सब दशगुने हो जाते हैं और जो कृष्णनामरूपी अङ्क नहीं तो सब शून्य व व्यर्थ व रिक्त किसी प्रयोजन के नहीं रहते। इस लिखने का तात्पर्य यह है कि जो साधन कर्म हो सो भगवद्भक्ति प्राप्ति के अर्थ व कृष्णनाम की प्रीति के निमित्त हो, संसार के कार्य व स्वर्गादि के निमित्त न होय। कबीरजी ने एक ऐसा ग्रन्थ बनाया जिसको सब मतवादी अङ्गीकार करें और सबके उद्धार के निमित्त काम आवे। भगवद्भजन में ऐसे दृढ़ थे कि भजन के आगे वर्णाश्रम के धर्म को सब वृथा जाना और उनकी कथा यद्यपि बहुत जगत् में लोग कहते हैं। परन्तु जो कुछ भक्तमाल के तिलक से ज्ञात हुआ सो लिखी जाती है। प्रारम्भ ही से अपनी जाति व मत की रीति को छोड़कर भगवद्भजन में रहा करते थे, आकाशवाणी हुई कि माला तिलक धारण करो व रामानन्दजी के चेले हो। कबीरजी ने विनय किया कि रामानन्दजी मुसलमानों की परछाहीं भी नहीं देखते, हमको चेला किस प्रकार करेंगे ? तब उसका भी उपाय भगवत् ने बतला दिया, तब कबीरजी उसी प्रकार कुछ रात बाकी रहते राह में पड़े रहे। रामानन्दजी स्नान को जाते थे उनका चरण कबीरजी पर पड़ा और रामराम मुख से निकला। कबीर ने उसीको उपदेश समझा और तिलक माला इत्यादि धारण करके उस महामन्त्र का जप और भजन करने लगे। कबीरजी की माता ने जो अपने मत के विरुद्ध आचरण देखा तो शोर व चिल्लाहट

किया व समझाया। कबीरजी ने कुछ न सुना अपने स्मरण भजन में रहते रहे। नितान्त इस बात की पुकार रामानन्दजी तक पहुँची। रामानन्दजी ने आज्ञा दी कि कबीर को पकड़ लावो, हमने कब उसको चेला किया है। कबीरजी गये रामानन्दजी ने परदा डलवाकर वृत्तान्त पूछा। कबीरजी ने सब वृत्तान्त उपदेश का वर्णन किया और यह भी विनय किया कि सब शास्त्रों का मत युक्त इस बातपर है कि रामनाम महामन्त्र है। तन्त्रशास्त्र रामस्तवराज में लिखा है कि श्रीरामनाम परम जाप्य है, महामन्त्र ब्रह्मस्वरूप है और शिवजी ने पार्वती को रामनाम परम मन्त्र सहस्रनाम के तुल्य उपदेश किया है सो उस नाम से कि जिसका उपदेश आपके श्रीमुख से मुझको हुआ दूसरा बड़ा मन्त्र कौन है? कि जिसका उपदेश आप करते, तब चेला कहवावते और जब कि उस नाम का उपदेश आपके मुख से हुआ तो आपको गुरु और मुझको चेले होने में क्या संदेह अब रहा? रामानन्दजी ने प्रसन्न होकर परदा उठाके कबीरजी को छाती से लगाया व भगवद्भजन स्मरण व साधुसेवा का उपदेश किया व बिदा करदिया। कबीरजी प्रयोजनमात्र को उद्यम कपड़ा बुनने का करते थे व मन अनुक्षण रामनाम में रहता था। एक दिन कपड़ा लेकर बाजार में बेचने गये किसी साधु ने जांचा वह कपड़ा दे दिया और खाली हाथ के कारण से घर न गये छिप रहे। घर के सब चिन्ता में पड़े, भगवत् उनके घरवालों के दुःख न सह सके, तीन दिन बीते बनजारे का रूप धर बैलों पर सब प्रकार के अन्न लादे आये, कबीरजी के घर डालकर चले गये। पीछे लोग कबीरजी को ढूँढ़कर घर लाये, जो नाज जमा देखा भगवच्चरित्र समझकर आनन्दित हुये, साधुओं को बुलाकर बांट दिया। पीछे अपना उद्यम भी छोड़ दिया। ब्राह्मणों ने अन्न में कुछ न पाया तिस करके बटुर के कबीर के घर आये और कहने लगे कि सुन रे जुलाहे! तुझको धन का बड़ा गर्व हो गया है कि बिना हमको जनाये वैरागियों को, कि छोटी जाति और शूद्र थे, नाज बांट दिया! तू इस नगर को छोड़कर दूसरी जगह जाकर वासकर कबीरजी ने कहा क्यों दूसरी जगह छोड़जावें, किसी के घर चोरी करी है कि राह लूटी है। ब्राह्मणों ने कहा कि भला इसी में है कि या तो तू कुछ हमारी भेंटकर नहीं काशी से बाहर जा। कबीरजी उनको अपने घर में बैठालकर आप कहीं जा छिपे। भगवत् को अपने भक्त का प्रताप सारे काशी में विख्यात करना था, इसहेतु कबीरजी का रूप बनाकर घर आये और रुपया व नाज ब्राह्मणों को इतना बांटा कि सारी काशी में यश कबीरजी का हुआ और भगवत् ने ब्राह्मण के रूपसे कबीर से जाकर कहा कि वन में क्यों दिनभर रहता है? कबीर के घर जा न, रुपया सबको बँटता है। कबीरजी ने अपने घर आये देखकर भगवत्कृपा के प्रेम से आनन्द हुये। जब यह भगवत्कृपा की सिद्धता सारी काशी में फैली तो लोगों की भीड़ होने लगी, तब यह उपाय किया कि एक हाथ वेश्या के

गले में डालकर और दूसरे हाथ में शीशी गङ्गाजल की मदिरा का भ्रम करावते उन्मत्त की भांति काशीमें फिरने लगे। भगवद्भक्तों ने देखा तो कुसंगसे भय माना व कहने लगे कि कबीरजी परमभागवत हैं, वेश्या के साथ लेने से उनको लोगोंने विषयी समझ लिया, तो दूसरे लोगों को यह वेश्याओं का कुसंग क्यों न रसातल को पहुँचावेगा और विमुख देखकर हँसे व कबीरजी की निन्दा करने लगे। तब वह भीड़ तो आनेजाने लोगों की सम न हुई पर निन्दा करने के अपराध में बहुत-लोग बध होने लगे तब कबीरजी ने यह उपाय किया कि उसी प्रकार वेश्या व शीशी लिये राजदरबार में पहुँचे। सभा में बैठ गये पर राजा व सभा के लोग किसी ने आदर-सत्कार जैसा करते थे न किया बेविश्वास होगये। कबीरजी ने उठकर थोड़ा सा गङ्गाजल धरती पर डाला व राम राम कहकर शोच किया। राजाने कारण डालने व शोच करने का पूछा। कबीरजी ने उत्तर दिया कि इस समय रसोइया श्रीजगन्नाथजी का आग में जलने लगा था मैंने यह पानी डालकर आगको बुझाके रसोइया को बचाया है। राजा को आश्चर्य हुआ हलकारा भेजकर समाचार मँगाया तो सत्य ठहरा। राजा बहुत लज्जित हुआ कि ऊपर के आचरण देखकर ऐसे परमभागवत का आदर-सत्कार न किया। नितान्त लकड़ियों का भार शिर पर धरे रानीसहित नंगे पाँयन आय कै अतिदीन होकर कबीरजी के चरणों में पड़ा। कबीरजी ने अपराध क्षमा करके भक्ति का उपदेश किया। उस समय का बादशाह सिकन्दर नामी था, काशीजी में आया और ब्राह्मणों और मुसलमानों के लगाने से कबीरजी पर क्रोध करके तलबी की, कबीरजी गये लोगोंने बादशाह को सलाम करने को कहा। कबीरजीने कहा कि हमको न सलाम करना आता है न बादशाह से कुछ काम है, एक रामनाम को जानताहूँ वही मेरा सब कुछ है और मेरे प्राण का वही आधार है। बादशाह ने सुनकर क्रोध करके जंजीर से बँधवाकर गङ्गाजी में डलवा दिया, न डूबे तब आग में डलवा दिया, न जले तब मतवाला हाथी उन पर छोड़ा। हाथी भी भाग गया यह सब प्रभाव कबीरजी का देखकर बादशाह चरणों में गिरा अपराध क्षमा कराया और कहा कि मैं आपका किंकर हूँ धन, सम्पत्ति, राज्य जो आज्ञा हो सो भेंट करूँ। कबीरजीने कहा कि हमको एक रामनाम छोड़ और किसी से कुछ काम नहीं यह कहकर अपने घर चले आये, भक्तोंको आनन्द दिया। काशी के ब्राह्मणों ने जो यह वृत्तान्त सुना तो लज्जित होकर कबीरजी के दुःख देनेके उपाय में हुये। बहुत आदमियों को साधुवेष बनाकर सारे मुल्क में कबीरजी की ओर से नेवता फेरदिया कि फलाने दिन कबीरजी के यहां भण्डारा है और उसी दिनपर साधुओंकी जमात आन पहुँची। कबीरजी को जब समाचार मालूम हुआ तो छिप रहे। भगवत् आप कबीरजी के रूप से आये और ऐसी धूमधाम आदर-सत्कार से भण्डारा पूर्ण किया

कि वैसा भण्डारा भगवत् से बनिआवे, फिर पीछे साधुरूप से कबीरजी के पास गये सब वृत्तान्त भण्डारे का वर्णन किया। कबीरजी भगवत्कृपा के आनन्द में मग्न होगये। एक अप्सरा स्वर्ग की कबीरजी की परीक्षा के हेतु मोहनीरूप बनाकर आई। कबीरजी ने तनक उसकी ओर निगाह को भी न किया, ऐसे भगवद्रूपमें छकेथे, नितान्त चली गई। भगवत् ने प्रसन्न होकर चतुर्भुज रूप प्रकट होकर दर्शन दिया और हस्तकमल उनके मस्तक पर रखकर आज्ञा की कि शरीर-समेत परमधाम को चलो। कबीरजी भगवद्रूप की माधुरी देखकर आनन्द होगये और जाने को तैयार हुये परन्तु भगवद्भक्त का प्रभाव प्रकट करने हेतु एक आश्चर्य चरित्र किया, अर्थात् काशी के उस पार मगहर देश है वहां जो कोई मरता है उसको गदहे का तन मिलता है सो कबीरजी परमधाम के जाने के समय उसी देश अर्थात् गङ्गापार गये और वहां जाकर शरीर सहित परमधाम की यात्रा की। इस चरित्र से यह दिखाया कि जो कोई केवल कर्मशास्त्रनिष्ठ है मगहरदेश में मरने से गदहे का शरीर उसको मिलता है और जोकि भगवद्भक्त हैं उनको सब देश व सब स्थान हजारों काशीके समान हैं। भक्ति की यह पदवी व प्रभाव है कि मगहरदेश में मरकर भगवद्भक्त शरीरसहित परमधाम को जाता है तिसके पीछे मुसलमानों ने चाहा कि लाश की कबर दें क्योंकि कबीरजी मुसलमान थे और हिन्दू लोगों ने कहा कि कबीरजी साधु थे हम उनकी लाश जलावेंगे। इसपर तकरार हुई चादरा उठाकर देखें तो लाश के स्थान सुगन्धवान् फूल मिले, भगवद्भक्ति का विश्वास हुआ।

कथा पद्मनाभजी की ॥

इस संसार में भगवत् का नाम महामन्त्र व महाधन और सेवा, पूजा, जप, तप, योग, ज्ञान व वैराग्य का सार और भगवद्रूप है। नाम से सिवाय और कोई दूसरा नहीं, नाम ही से दोस्ती और नाम ही से नेह और नाम ही से नाता व नाम ही से विश्वास चाहिये कि यह ही भक्ति है और यही ज्ञान और नाम ही नामी है और नाम ही नाम है। आप श्रीकृष्ण महाराज अपने नाम की बड़ाई नहीं कह सकते इसबात पर सबका मत युक्त है। पद्मनाभजी का वृत्तान्त सुनिये कि उनकी कबीरजी अपने गुरु की कृपा से रामनाम की अच्छे प्रकार परीक्षा हुई। काशीजी में एक साहूकार को कुष्ठ का रोग था और कृमि शरीर में उसके पड़ गये थे, गंगा में डूबने को चला। संयोगवश पद्मनाभजी भी वहां आ गये उसका कष्ट देखकर दया आई कहा कि तीनबेर रामनाम लेकर गंगा में स्नान कर कि अच्छा होजावेगा। वैसाही उसने किया कि तीनबेर रामराम कहकर डुबकी लगाई अच्छा होगया। पद्मनाभजी ने उसको भक्ति का उपदेश किया और वृत्तान्त अपने गुरु कबीरजी को सुनाया। कबीरजी ने क्रोधयुक्त होकर कहा कि तुमको अभी तक रामनाम की महिमा मालूम

नहीं हुई कि एक तुच्छ रोग के दूर करने को तीन बेर रामनाम कहलाया। रामनाम ऐसा महामन्त्र है कि उसके शब्द एक बार भी कान में पड़ जावें तो करोड़ों जन्म के महापातक दूर होजाते हैं, एक कुष्ठी का कुष्ठ रोग कौन बड़ी बात है। पद्मनाभजी को यह महिमा सुनकर और विशेष विश्वास दृढ़ हुआ दिनरात उसी नाम के स्मरण भजन में रहने लगे।

पन्द्रहवीं निष्ठा ॥

ज्ञान ध्यान की महिमा जिसमें बारह भक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्ण स्वामी के चरणकमलों की मीनरेखा को और सनत्कुमार अवतार को कोटानुकोटि दण्डवत् है यह अवतार भगवत् ने ब्रह्मपुरी में धारण किया व ब्रह्मज्ञान की विशेष प्रवृत्ति इसी अवतार से हुई। वेद, श्रुति, सब स्मृति व पुराण इस बात में युक्त हैं कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं तो वेदान्त १ सांख्य २ पातञ्जल ३ मीमांसा ४ तर्क ५ वैशेषिक ६ शास्त्रों ने जो वेद के अर्थ के कथन करने वाले व वेद के अङ्ग कहलाते हैं और जहांतक जो कोई मार्ग मतमतान्तर किसी के ध्यान में आवें और जो प्रवर्त्तमान हैं उन सबका मूल कारण किसी न किसी एक शास्त्र में निश्चय करके मिलता है, यह बात कदापि नहीं कि किसी मत व पन्थ का मूल शास्त्र से बाहर हो। उसके निश्चय के निमित्त सबने मथन व परिश्रम किया तो सबने ज्ञानही को मुख्यतर जाना, परन्तु सब शास्त्र अपने अपने मत व रीति से मुक्ति का वर्णन करते हैं। इस हेतु उस ज्ञान का स्वरूप देखने में छःप्रकार पर दिखाई देनेलगा अर्थात् हरएक शास्त्रों के आचार्य ने अपने मूलमत के अनुसार अर्थ ज्ञान शब्द का लिखा व अभिप्राय अपने ज्ञान का ठहराया, परन्तु परिणाम व फल सबका विचार करके देखा जावे तो एकही निकल आता है। जो सब शास्त्र के मिलाने से थोड़ा भी अर्थ व वृत्तान्त ज्ञान शब्द का लिखा जावे तो भी बात बहुत बढ़जाय और देखने में कुछ विशेषभी फल लाभ नहीं होता। इसहेतु सब शास्त्रों के मतवाद से किनारा करके जो मुख्य अर्थ व अभिप्राय वेद व बहुत से शास्त्रों के मतयुक्त हैं वह लिखता हूँ। जाने रहो कि ईश्वर, माया, जीव इन तीनों का स्वरूप यथार्थ जानकर और ईश्वर की अद्वैतता पर मन को दृढ़ करके उसी को देखना और जानना यह ज्ञान का स्वरूप है अर्थात् ईश्वर एक असहाय सबसे असंग और जो गुण वेद व शास्त्रों ने कि सत्‌चित्‌आनन्दघन, अच्युत, अनन्त, नित्य, निर्विकार, व्यापक व अविनाशी इत्यादि वर्णन किये हैं तिन गुणों से युक्त और सब गुणों से न्यारे हैं। भक्तजन उसकी उपासना पांच स्वरूप से करते हैं प्रथम परम अर्थात् श्रीविष्णु-नारायण वैकुण्ठनिवासी का उस स्वरूप व सामा व समाज से कि जो वेद व शास्त्रों ने भगवद्ध्यान के वर्णन में लिखा है ध्यान व आराधन करना परन्तु यह जाने रहो

कि जो श्रीरघुनन्दन व श्रीकृष्णस्वामी के उपासक हैं वह श्रीरघुनन्दन स्वामी को परम व अयोध्या निवासी और श्रीकृष्णस्वामी गोलोकनिवासी को परम अर्थात् परमात्मा मानते हैं। अभिप्राय यह कि जो जिस स्वरूप अर्थात् राम, कृष्ण, विष्णु अथवा नृसिंह के उपासक हैं वह अपने इष्ट को परम मानते हैं। मालूम रहे कि यह वह सगुण रूप है कि जिसको शिव व ब्रह्मा इत्यादि सब योगीजन भांति भांति की समाधि लगाकर ध्यान करते हैं और भेद नहीं पाते। वेद और शास्त्र, पुराण व स्मृति इत्यादि में हजारहों उपाय धर्म, कर्म, ज्ञान व वैराग्य आदि लिखे हैं सो इसी स्वरूप की प्राप्ति के हेतु हैं, इसी स्वरूप के प्राप्त होने से मुक्त, निश्चल, कृतार्थ व कृतकृत्य कहलाते हैं। दूसरा व्यूह २ स्वरूप इस संसार को पालन करता है और फिर नाश कर देता है अर्थात् वासदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तीसरे विभूति अर्थात् अवतार सो अधर्म के दूर करने और वेद, मर्याद के दृढ़ करने और अपने भक्तों की रक्षा करने के निमित्त होता है सो दो प्रकार का है एक मुख्य अवतार राम कृष्ण इत्यादि हैं जिनका शरीर माया का रचा हुआ नहीं, वे माया के अधीश हैं और पांच उपनिषद वेद के उनके उपासना में गोपालतापिनी व रामतापिनी इत्यादि विख्यात हैं, परन्तु यह सिद्धान्त श्रीसंप्रदायवालों का लिखा है। जो लोग राम, कृष्ण, नृसिंह आदि के उपासक हैं वे अपने इष्ट को अवतारी मानते हैं व विष्णु व दूसरे लोगों को अवतार। दूसरा गौण अवतार उसमें दो भांति हैं एक तो संसारी लोगों के अज्ञान दूर करने के निमित्त व धर्म की प्रवृत्ति करने को होता है जैसे व्यास, बलि व पृथु इत्यादि। दूसरे परशुराम, शिव व गणेश इत्यादि और कुछ वर्णन अवतारों का दूसरी निष्ठा में किनारे लिखा गया है और चौथा अन्तर्यामी उसके दो प्रकार हैं, एक निरूप अर्थात् ज्ञानानन्द, अलख, अविनाशी, निरीह, निरञ्जन, निर्गुणब्रह्म व सर्वव्यापक हैं, जिस प्रकार तिल व काष्ठ के सब अङ्ग में तेल व अग्नि प्राप्त है परन्तु दिखाई नहीं देते इसी प्रकार वह सब जगह प्राप्त व व्यापक है और जिसकी सत्ता व प्रेरणा से माया अनन्त ब्रह्माण्डों को रचती है। दूसरा रूपवान् अर्थात् सगुणस्वरूप शंखचक्रधारी माया से निर्लेप वासुदेव स्वरूप है और यह ही भगवद्विग्रह संकर्षण आदि व्यूहस्वरूप के साथ कि जिनका वर्णन दूसरे स्वरूप में हुआ गिनती होता है अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पांचवां अर्चास्वरूप है कि जिसका वर्णन आठवीं निष्ठा प्रतिमा व अर्चा में लिखा गया। इतना भगवत्-स्वरूप का वर्णन होचुका माया का स्वरूप यह है कि जड़ अर्थात् अचल है स्वतन्त्र किसी प्रकार का कुछ पराक्रम नहीं रखती, भगवत् की प्रेरणा से सब कार्य करती है। कोई का यह वचन है कि वह माया अनादि शान्त है अर्थात् यह मालूम नहीं हो सकता कि कब से है और कब उत्पन्न हुई परन्तु अन्त उसका होजाता है। जब वेद व शास्त्र सिद्धान्त के अनुसार छूटने के निमित्त उपाय किया जाता है तो वह

माया दूर होजाती है और कोई यह कहते हैं कि माया नित्य है व सदा रहेगी कि भगवत् की शक्ति है दूर होना उसका असंभव है परन्तु जब वेद के अनुसार यह जीव भगवत् आराधन करता है तो भगवत् की कृपासे वह माया उस जीव पर अपना बल जैसा औरों पर करती है नहीं कर सकती, इस बात में मूल अर्थ दोनों का एक है केवल बोलनमात्र है। वह माया दो प्रकार की है एक विद्या कि जिससे अनन्त ब्रह्माण्ड व ब्रह्माण्डों के स्वामी उत्पन्न होते हैं दूसरी अविद्या कि जिसके जाल में यह जीव फँसा हुआ है। जीव का स्वरूप कि जिसको आत्मा भी कहते हैं कुछ नामनिष्ठा के अन्त में वर्णन हुआ अर्थात् भगवत् अंश, निर्विकार प्रकाशमान, ज्ञाना-नन्दस्वरूप व तीनों काल भूत-भविष्य-वर्तमान में प्राप्त है, परन्तु भगवत् के सदृश अनन्त नहीं, भगवत् शेष हैं और जीव शेषी है, शेष पद का वर्णन विस्तार से सेवानिष्ठा में होगा सो जीव पांच प्रकार के हैं। पहले नित्य हैं कि उनका जन्म दूसरे जीवों की भांत संसार में नहीं होता, जैसे विष्वक्सेन व गरुड़ आदि। दूसरे मुक्त हैं कि भगवत्-आराधन व ज्ञान के अवलम्ब से मुक्त हुये। तीसरे केवल हैं कि मुक्त होने के किनारे अपने तप व परिश्रम से पहुँच गये अर्थात् जीवन्मुक्त। चौथे मुमुक्ष कि जो मुक्ति चाहते हैं उनके दो प्रकार हैं, पहले वह कि जिन्होंने नवधाभक्ति करके भगवच्चरणों में चित्त लगाया है। दूसरे शरणागत की भक्ति इत्यादि से कुछ सम्बन्ध नहीं सब प्रकार से केवल भगवच्चरणों की शरण ली है और अपने को सब कार्य व साधन में निराला परतन्त्र समझकर सब बोझ व भार भगवत् पर डाल दिया है उनके दो प्रकार हैं एक तृप्त कि जो चाहना भगवत्सेवाभजन इत्यादि की रखते हैं। दूसरे आर्त्त कि जो भगवत् की सेवा भजन इत्यादि में रत हैं। पांचवें बद्ध हैं कि जो संसार के विषय भोग के स्वाद में भ्रमित व लीन रहकर सदा आवागमन की फांसी में फँसे रहते हैं और यही दशा रहेगी यद्यपि कोई पांचों प्रकार जो लिख आये तिसको तीन प्रकार वर्णन करते हैं। पहले विमुक्त जोकि संसार से छूट गये, दूसरे मुमुक्ष अर्थात् साधक जोकि छूटने के हेतु उपाय करते हैं, तीसरे विषयी जो कि संसार के सुखस्वाद में भूल रहे हैं परन्तु जो विचार किया जाता है तो अभिप्राय दोनों का एक है जीवका वर्णन होचुका। इस ज्ञान के निर्णय में कोई यह कहते हैं कि ईश्वर, माया व जीव के स्वरूप जान लेने के पीछे ईश्वर जीव को एक समझ के अभ्यास व वैराग्य केवल चित्तकी वृत्ति से दृढ़ होय और हृदय से द्वैत का भाव मिट जाय उसका नाम ज्ञान है और उसीको विज्ञान कहते हैं, तात्पर्य उनका यह है कि भीतर बाहर व मन जहां तक पहुँचे सो सब भगवत् निर्विकार ज्ञानानन्दस्वरूप है सिवाय भगवत् के न कभी कुछ हुआ, न है, न होगा और यह जो संसार दृष्टि में आता है सो स्वप्नप्राय है वास्तव में सब ईश्वर है और कोई का यह वचन है कि निश्चय करके जहां तक मन व इन्द्रियों करके देखने में आता है वह सब भगवद्रूप है और

यह जीव उस भगवत् का दास है और कोई ऐसे हैं कि उनको न पहले वचन से कुछ प्रयोजन है न दूसरे से वे यह कहते हैं कि अपने सच्चे प्यारे के ध्यान में चित्त की वृत्ति ऐसी मग्न होजाय कि सिवाय उस रूप अनूप के और कुछ तनक भी भीतर बाहर शरीर में बाकी न रहे वही ज्ञान है और वही वैराग्य है और वही भक्ति है और वही शरणागति सो जाने रहो। इसी प्रकार के वचन थोड़े थोड़े अन्तर से उनके मतान्तर के विचारने से बहुत हैं परन्तु परिणाम सब सिद्धान्त व वर्णन का एक होजाता है काहे से कि जिसने जीव ईश्वर को एक जाना तो उसकी दृष्टि में सिवाय एक ईश्वर के दूसरा न रहा और जिसने अपने आपको दास और भगवत् को स्वामी विचार किया तो वह भी भगवद्रूप की माधुरी में मग्न होजाने के समय अपने को भूल जायगा, सिवाय उस रूपके और कुछ दृष्टिमें न आवेगा सो सबको परीक्षा मिली होगी कि कोई समय किसी काम में चित्तकी वृत्ति ऐसी एकाग्र लग जाती है कि तनिक सुध-बुध अपने-बिराने व तन-बदन की नहीं रहती तो भगवत् के चिन्तवन व रूप माधुरी का सुख व आनन्द जब लाभ होगा तो कब दूसरा कोई और सिवाय इस रूप के शेष रह सकता है। अब तात्पर्य व मूल अभिप्राय सब शास्त्रों का लिखता हूँ कि जिस प्रकार होसके यह जीव भगवच्चरणों में लगे सब मनोरथ इस लोक व परलोक का और सब ज्ञान व वैराग्य इत्यादि आपसे आप प्राप्त हो जावेंगे, सो भगवत् ने गीताजी में आप श्रीमुख से कहा है कि हमको एक जानकर अथवा पृथक् जानकर अथवा बहुत प्रकार का जानकर जो भजन सेवन करते हैं उनको निश्चय करके मिलता हूँ, काहे से कि सब ओर मैं प्राप्त हूँ सो जाने रहो कि जबतक भगवच्चरणों में मन नहीं लगता तबतक सब बुद्धिमानी मूर्खता है और सब जानकारी पर धूलि क्या अच्छी बात हो कि मेरा मन सब भ्रमना को छोड़कर श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों में मग्न होजावे और क्या सुन्दर भाग्य खुले कि उस समाज को जो कि ग्रन्थारम्भ में नीचे लिखा है रात दिन चिन्तन करता रहे कि यह संसार समुद्र गोपद जल से भी तुच्छ हो जाय।

कथा वशिष्ठजी की ।।

वशिष्ठजी ब्रह्माजी के दशों पुत्रों में भगवद्भक्त और सब विद्या के आचार्य हुये। ज्योतिषविद्या, चिकित्सा व संगीत इत्यादि में संहिता उनकी बनाई विख्यात है पिछले लोगों ने उनकी संहिता को प्रमाण करके नई परिपाटी रचना की, परन्तु विशेष करके उनका अधिकार धर्मशास्त्र, भक्ति व ज्ञानशास्त्र में अधिक है, जिन्होंने अन्तरिक्ष में निरवलम्ब स्थिति करके भगवद्भजन व ध्यान किया और फिर दूसरे ब्रह्माण्ड में जाकर वहां की ब्रह्माणी की सहाय के निमित्त ब्रह्मा से विज्ञापन किया और धर्म की प्रवृत्ति की सहाय के हेतु अबतक यह विचार है कि तीन स्वरूप धारण करके तीन जगह एक ब्रह्मलोक, दूसरे धर्मराज की सभा में, तीसरे सप्त